अथर्व वेद

(द्वितीय खण्ड)

(सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी के भावार्थ सहित)

सम्पादक

वेदानुरागी आचार्य गोपाल प्रसाद "कौशिक"

गोवर्द्धन ।

प्रकाशक

गंगा बुकडिपो,

घीयामण्डी, मथुरा ।

प्रथम बार } १९६९ { मू० ८)

दोनो खंड १६)

प्रकाशकीय

अपौरुषेय महाग्रन्थ अथर्व वेद का द्वितीय खण्ड सुविज्ञ पाठको के कर कमलो मे समर्पित करते हुए परम आनन्द लाभ होता है। वेद विश्व के प्रथम आदि ग्रन्थ और ज्ञान-स्रोत हैं। वेदो को जन-सुलभ करना हमारा परम लक्ष्य है। अभी तक वेदो के जितने सस्करण दृष्टि मे आए है, वे सभी या तो केवल अत्यधिक पढे-लिखे विद्वानो के मनन योग्य है अथवा उनका मूल्य इतना अधिक है कि जन साधारण उनके दर्शन तक भी नही कर सकता। अत हमने इन ग्रन्थो मे वेदो की गहन वाणी का मर्म सरल हिन्दी भाषा मे दिया है जिसे कम से कम पढा लिखा व्यक्ति भी रामायण की भाति समझ सके और मूल्य भी इतना अल्प रखा है कि प्रत्येक साधारण गृहस्थ भी खरीदकर परम पुण्य का भागी बन सके। अथर्व वेद के इस द्वितीय खण्ड मे एकादश काण्ड से मन्त्र प्रारम्भ होते हैं। इससे पूर्व के मन्त्र प्रथम खण्ड मे दिए हैं। आशा है सुविज्ञजन समुचित लाभ उठायेंगे।

विनीत

प्रकाशक

अथर्व वेद द्वितीय खण्ड

एकादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

ऋषि—ब्रह्मा ।
देवता—ब्रह्मौदन ।
छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, उष्णिक्, गायत्री ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥
कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥
अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥
समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयञ्जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥
त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशाञ्जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥ ५ ॥
अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६ ॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥७॥
इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम् ॥ ८ ॥
एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमा पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥९॥
गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥१०॥

अदिति पुत्र की अभिलाषा करने वाली देवमाता ब्रम्हो-दन करना चाहती है। हे अग्ने! मथन क्रिया द्वारा उत्पन्न हो। मरीचि आदि जो सप्त ऋषि भूतो को पैदा करने वाले माने जाते है वे इस यज्ञ रूपी विधान मे यजमान के पुत्र पौत्रादिक मथन द्वारा प्रकट करें ॥ १ ॥

हे सप्तर्षियो! तुम ससार के मित्र रूप एवम् अभीष्टक माने जाते हो। धूमको मथन द्वारा पुष्ट करो। यह अग्नि उपासकों और यजमानो की रक्षक है। यह ऋचा रूप स्तुतियों से वैरियों की सेना को वश में करने वाली है। इन्ही के द्वारा देव लोगो ने भी अपने शत्रुओ पर विजय प्राप्त की है ॥ २ ॥

हे! अग्ने तुम समस्त उत्पन्न प्राणियो के ज्ञाता हो। तुम मथन क्रिया से उत्पन्न होते हो। तुम दाह पाक मे समर्थ कहलाते हो। तुम मन्त्रशक्ति से प्रदीप्त होकर मुझे अनन्त शक्ति प्रदान करते हो। तुम को सप्तर्षियो द्वारा ब्रम्हौदन के लिये उत्पन्न किया गया है। अतः इस पत्नी के लिये तुम पुत्र पौत्रादिक प्रदान करो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम समिधाओ से प्रदीप्त होते हो अतः यज्ञ में देवताओ को लाओ। उन देव लोगो को हवि पकाकर तैयार करो। इन यजमानो के मर जाने पर इन्हे स्वर्ग मे पहुँचाओ ॥ ४ ॥

हे देवताओ ! अग्नि आदि, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि और ब्रह्मादि को जो भाग तीन भागो में बाट कर रखा था उसे अपने अपने अंश को पहिचान लो। इनमे देव भाग अग्नि में जाकर यजमान की इस पत्नि को अभीष्ट फल प्रदान करे ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुम शत्रुओ को वश मे करने योग्य हो। अत तुम हमारे वैरि वर्ग को नीचा दिखाओ। हे यजमान ! तू वृद्धि को पाकर पुत्र पोत्रादि से युक्त हो ॥ ६ ॥

हे यजमान तू वृद्धि को पा ! पराक्रम को पाने के लिए उन्नति कर और देह को छोडने के बाद स्वर्ग मे आरोह कर ॥ ७ ॥

यह यज्ञ स्थली सम्मुख होकर चर्म को स्वीकार करे। अजिन के फैलने पर यह पृथ्वी हम पर दयावान हो। इसकी दया दृष्टि से हम यज्ञादि से मिले पुण्य फल द्वारा स्वग आदि लोक को प्राप्त कर सके ॥ ८ ॥

हे ऋत्विक ! तुम इन मूसल उलूखल (ओखली) आदि इस फैले हुये अजिन में एकत्रित कर रखो और यजमान के लिये बढिया धान बनाओ। हे पत्नि ! हमारे प्रजा विनाशक शत्रुओ को नष्ट करो और हमारी सन्तान को श्रेष्ठ फलो से युक्त करो ॥ ९ ॥

हे अध्वर्यो ! तुम ओखली और मूसल को उत्तम हाथो मे ग्रहण करो। देव गण तुम्हारे इस यज्ञ मे आज पधारे है

हे यजमान ! तू जिन वरों का इच्छुक है वे इस यज्ञ से प्राप्त कर। कर्म की समृद्धि ,फल की समृद्धि और परलोक समृद्धि ये तीनों यज्ञ से ही सिद्ध होती है ।। १० ।।

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ।। ११ ।।

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ।। १२ ।।

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय ।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ।। १३ ।।

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ।। १४ ।।

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ।। १५ ।।

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ।।१६।।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा अपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलां पशून नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ।।१७।।

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ।। १८ ।।

उरुःप्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठ सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ।। १९ ।।

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥

हे सूप ! चावलों से तुषो को अलग करना ही तेरा मुख्य कार्य है। तुझे मित्र,वरुण, धाता, आदि की माता अदिति हाथ में ले। इस स्त्री की हत्या के लिये जो भी शत्रु सैन्य सग्रह करना चाहते हैं उनके नाश के लिये तू धानो से उसी को अलग कर। इस स्त्री को पुत्र पौत्रादि के सहित धन प्रदान करो ॥ ११ ॥

हे चावलो ! तुम्हारे लिये मैं सत्य ,फल रूप कर्म के लिये प्रभूत करता हूँ। अत। तुम सूप में विराजमान होकर तुषों से अलग हो जाओ। तुम्हारे द्वारा दी गई शक्ति से हम शत्रुओ को कुचल डाले ॥ १२ ॥

हे स्त्री ! तुम जलाशय से शीघ्र जल लेकर लौटे। गोऐ के जल पीने वाले गोष्ठ को तुम अपने शिर पर रखो। उस जल में से यज्ञ योग्य जलो को ही ग्रहण करना इससे भिन्न अयज्ञिय जल को ग्रहण मत करना ॥ १३ ।

हे अलकाओ से युक्त पत्नि ! ये जल लाने वाली स्त्रिया जल लेकर आ गई है। तू आसन से उठकर इसे ग्रहण कर। तू पुत्र पौत्रादिक वाली होती हुई जल कलशो को ग्रहण कर। यह यज्ञ तुझे जल रूप से प्राप्त होवे ॥ १४ ॥

हे जलो ! ब्रह्मा ने जिस सारभूत भाग की कल्पना की है वही यहाँ पर लाया जावेगा। हे सौभाग्यवति ! तुम इन जलो को चर्म पर स्थापित करो। यह ब्रह्मौदन, पुत्र पौत्रादिक, बल, और यज्ञ-मार्ग को देने वाला हैं। यजमान की पत्नि आदि सभी को यज्ञ शुभ फलो को प्रदान करे ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! तुम पर हवि पकाने के लिये चरुस्थाली रखी जाती है और तुम इसको अपने तेज से तपाओ। गोत्र के प्रवर्तक ऋषियो के ज्ञाता आर्षेय ब्राह्मण तथा इन्द्र आदि देवताओं के सहित सभी देव अपने २ भाग को पाकर इसे तपायें ॥१६॥

यह यज्ञ योग्य निर्मल जल चरुस्थाली मे प्रविष्ट होवें। यज्ञ जल पुत्रादिक तथा पशु आदि पदार्थों को हमे प्रदान करे। ब्रह्मौदन करने वाला ब्राह्मण और यजमान सुख के साथ स्वर्ग को प्राप्त करें ॥ १७ ॥

ये चावल मन्त्र और घी से पक कर दोष रहित होवें। हे चावलो ! तुम यज्ञ योग्य हो इसलिये चरुस्थाली मे रखे जाते हुये जलो मे प्रविष्ट करो। जो यजमान इस ब्रह्मौदन को पकाता है वह पुण्य लोक अर्थात् स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है। १८ ॥

हे ओदन ! तुम सहस्त्रो (असंख्य) अवयव वाला बन। पिता, पितामह आदि सात पूर्वज तेरे से तृप्ति को प्राप्त करते है। पुत्र और पुत्रो की सात पीढी तक की सन्तान भी तेरे द्वारा ही तृप्त होती है। इन सभी के अतिरिक्त पकाने वाला मैं भी तृप्ति को प्राप्त करू ॥ १९ ॥

हे यजमान ! तेरा यज्ञ सैकडो धाराओ और हजारो पृष्ठो वाला होवें। इसके द्वारा यजमान इन्द्रादि देवताओ को प्राप्त करते हैं और यह कभी भी क्षय को नही पाता है। हे यज्ञ ! मैं इन सजातियो को तेरे लिये उपस्थित करता हूँ। तुम इनको पुत्र और पौत्रादिक प्रदान करते हुये मुझे दिव्य सुख प्रदान करो ॥ २० ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम्।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥ २१ ॥

अस्यावर्तव पशुभिः सहेनां प्रत्ङ्ङेनां देवतासि, सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचार, स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि
राज ॥ २२ ॥
ऋतेन तष्टा तनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥ २३ ॥
अदितेहस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥
शृत त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्रसीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्राह्मणामार्षेयस्ते मा रिषन् प्राशि-
तारः ॥ २५ ॥
सोम राजन्त्संज्ञानमा वपेभ्यः सुब्रह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषिनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥२६॥
शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणा हस्तेषु प्रपृथक्
सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं
मे ॥ २७ ॥
इद मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एष ।
इद धन नि दधे ब्रह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्ग ॥ २८ ॥
अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकां अप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥
श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वत पन्थां स्वर्गं अधि रोहयैनम् ।
येन रोहात् परमापद्य तद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥ ३० ॥

हे पके ओदन ! तू वेदी मे हवि के रूप में स्थित होने के
लिये, जा । इस पत्नि को सन्तानादि की वृद्धि द्वारा सुख
प्रदान कर । यज्ञ हिंसक असुर को यहाँ से भगा । समान पुरुषो

से हमें अधिक शक्तिशाली बना। वैरियो को मारने की शक्ति मुझे प्रदान करा ॥ २१ ॥

हे ब्रह्मौदन। तू यजमान आदि के सामने पशुवान होकर देवताओ के सहित आ। हे यजमान दम्पत्ति! तुम कभी दुःख के भागी न होओ। तुम रोग रहित होकर दिव्य सुखो के अधिकारी बनो ॥ २२ ॥

ब्रह्मा ने इस वेदी की रचना की और हिरण्यगर्भ ने इसको स्थापित किया। ऋषियो ने ब्रह्मौदन के निमित्त इस वेदी की कल्पना की थी। हे पत्नि! तुम देवता मनुष्य और पितर को आश्रय देने वाली इस वेदी के निकट आओ। इस पर ओदन को रखो ॥ २३ ॥

अदिति देवमाता के द्वितीय हाथ रूप स्रुवे को सप्त ऋषियो द्वारा बनाया गया। ओदन के पक्के हुये शरीरो को पहचानती हुई यह दुर्वा वेदी पर ब्रह्मौदन को चढावे ॥ २४ ॥

हे ओदन! पूज्य देवता तेरे समीप आए। अग्नि से निकल कर तू उनको तुम प्राप्त होवो। दूध, दही आदि सोम रसो द्वारा शुद्ध हुआ तू ब्राह्मण के उदर में जाओ। अपने-अपने गोत्र प्रवर के ज्ञाता ये लोग भोजन करके हिंसा को प्राप्त न होवें ॥ २५ ॥

हे ब्रह्मौदन! तू सोम से युक्त है। तुम इन ब्राह्मणो को मोह से बचाकर ज्ञान प्रदान करो। तेरे समीप जो ब्राह्मण स्थित है मैं तपोत्पन्न सुन्दर और निराले आह्वान वाली पत्नी ब्रह्मौदन के लिये आहुति देती हूँ ॥ २६ ॥

मै यज्ञ के उपयुक्त, पवित्र, पाप रहित जलो को ब्राह्मणो के हाथ पर डालता हूँ। हे जलो! मैं जिस अभीष्ट के

लिये तुम्हारा अभिसिंचन करता हूँ, मेरे उस अभीष्ट को मरुद्गणो सहित इन्द्र पूरा करें ॥ २७ ॥

यह शुद्ध जाय आदि औदनधान योग्य क्षेत्र से प्राप्त कामधेनु है और स्वर्ण मेरे स्वर्ग मार्ग में कभी न बुझने वाला दीपक है। इस धन को मैं दक्षिणा स्वरूप ब्राह्मणो को प्रदान करता हूँ, यह धन स्वर्ग मे करोड गुण होवे। पितरो के लिये इच्छित स्वर्ग के लिये यह मार्ग हो ॥ २८ ॥

हे ऋत्विक्! ब्रह्मौदन से अलग हुये चावलो के गुणो को अग्नि मे डालो। फलीकरणो को पैर से पृथक करो। यह फलीकरण वास्तु नाग का भाग और पाप निर्ऋति देवताका भाग माना जाता है ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मौदन! तुम तप कर्त्ता हो अतः यजमानों को स्वर्ग के मार्ग पर चढ़ाओ। यह श्येन पक्षी वत जसे भी स्वर्ग को पा सकें, वैसा ही कार्य करो ॥ ३० ॥

बभ्रे रध्वर्यो मुखमेतद् वि मृड्ढ्याज्याय लोकं कृणहि प्रविद्वान्।
घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु य स्वर्गः ॥३१॥
बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितार ॥ ३२ ॥
आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥ ३३ ॥
यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥
वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥३७॥

हे ऋत्विक्! इस ओदन के मुख को पवित्र बनाओ। फिर इसको घृत से सींचो। ओदन के द्वारा उसी मार्ग का अनुसरण करता हूँ जो कि पितरो को स्वर्ग की प्राप्ति करावे ॥ ३१ ॥

हे ब्रह्मौदन! ब्राह्मण से भिन्न, प्राशन हेतु जो क्षत्रिय तेरे समीप बैठे, उन्हे युद्ध रूपी कलह दो। गोत्र प्रवर आदि के ज्ञाता ऋषियो के बैठने पर उन्हे पशु आदि धन से युक्त कर। ये प्राशन करने वाले ब्राह्मण नाश को न पावें ॥ ३२ ॥

हे ओदन! तुमको मैं आर्षेय ब्राह्मणो मे विद्यमान करता हूँ। अनार्षेय की इस ब्रह्मौदन मे सम्भावना नही होती है। अग्नि, मरुद्गण, अर्यमा आदि सभी देवगण इस ब्रह्मौदन की सभी ओर से रक्षा करें ॥ ३३ ॥

यज्ञ का उत्पन्न करने वाला यह ब्रह्मौदन है। यह धनो की वृद्धि करता है। हे ब्रह्मौदन! हम तेरे से धन पुत्र पौत्र, धन पुष्टि आदि की प्राप्ति करें ॥ ३४ ॥

हे काम्य वर्षक ब्रह्मौदन! तू स्वर्ग देने वाला है। अतः तू आर्षेय ब्राम्हणो को मेरे द्वारा प्राप्त हो। पुण्यात्मा जीवो के लिये स्वर्ग मे वास कर, वहीं तेरा हमारा संस्कार पूर्ण होगा ॥ ३५ ॥

हे ओदन! तुम समाचयन करते हुए गन्तव्यो को मिलो। हे अग्ने! देव मार्ग गामी यानो को इस ओदन गमन को तैयार करो। हम भी इन यानों के द्वारा स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग चुने ॥ ३६ ॥

ब्रह्मौदन से ही इन्द्रादि देवगण देवयान मार्ग को पाकर स्वर्ग मे पहुँचे। देवयान वाले मार्ग पर हम भी अपने पुण्य कर्म से उस लोक को प्राप्त होवे। पहिले तो हम स्वर्ग मे वास करें तथा फिर नाकपृष्ठ नामक स्थान को प्राप्त होवे ॥ ३७ ॥

२ सूक्त

(ऋषि–अथर्वा। देवता–भवादयो मन्त्रोक्ताः। छन्द–जगतीः उष्णिक् अनुष्टुप, बृहती, गायत्री, त्रिष्टुप, शक्वरी)

भवाशर्वो मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥
शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥ २ ॥
क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥
पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥
मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥
अङ्गेभ्यस्त उदराय उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥
अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥
स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आपइवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।

मा नोऽभि प्रांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥
चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥
तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥

हे भव, शर्व देवगणो ! तुम हमको सुख प्रदान करो। रक्षा हेतु मेरे आगे चलो। हे भूतेश्वरो ! तुम गौ आदि पशुओ के पालन करने वाले हो। मैं तुम्हें नमन करता हूँ। मेरे इस नमन से प्रसन्न होकर तुम मेरी ओर अपने शर को न छोडो तथा हमारी सन्तति और पशुओं का सहार न करो ॥ १ ॥

हे भव शर्व ! हमारे शरीरो को मांस भोजी गृद्धो श्वानों एवं गीदडो के लिए मत फेंको। तुम्हारी मक्षिकाऐं तथा अन्य पक्षी भक्षण के निमित्त हमे प्राप्त न करें ॥ २ ॥

हे भव, 'शर्व ! तुम्हारे प्राण वायु और क्रदन ध्वनि को हमारा नमन स्वीकार हो। तुम्हारे मायावी शरीरों को हम प्रणाम करते है। हे ससार के साथी देव ! तुम अमर को हमारा नमन ग्रहण हो ॥ ३ ॥

हे रुद्र ! पूर्व उत्तर और दक्षिण दिशाओ में हम तुम्हे प्रणाम करते है। अन्तरिक्ष मे सब के नियता रूप से प्रतिष्ठित देव तुम्हे हमारा नमस्कार है ॥ ४ ॥

हे भवदेव ! तुम्हारे मुख, चक्षु, त्वचा और नील पीत-वर्ण को हमारा नमस्कार है। तुम्हारी सम दृष्टि को नमन है। मेरा नमस्कार स्वीकार करो ॥ ५ ॥

तुम्हारे उदर, जिह्वा, दांत, नाक तथा अन्य अवयवो को हम नमन करते हैं ॥ ६ ॥

नीले केश, सहस्राक्ष, अश्वगामी, अर्ध वाहिनी का क्षण मात्र मे विनाश करने वाले रुद्र के द्वारा हम कभी प्रहारित न हो ।। ७ ।।

जिन भव देव की महिमा स्पष्ट है वे हमें सब उपद्रवों से दूर रखें। अग्नि जैसे जल को छोड़ता है उसी भाँति रुद्र देव हमको छोड़ दें, उन्हें हमारा नमन स्वीकार हो। वे हमें दुख न दें ।। ८ ।।

शर्व देव को पुन· पुनः नमन है, भवदेव को आठ बार नमस्कार है ? हे पशुपते ! तुम्हे दस बार नमन करता हूँ। विभिन्न जाति के पशु जीवो और पुरुषों का रक्षण करो ।। ९ ।।

हे रुद्र ! तुम महान शक्तिशाली हो, तुम्हीं चारों दिशाओ के स्वामी हो । यह द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष तथा समस्त दिशाऐं तुम्हारा शरीर रूप ही हैं। तुम सब पर अनुग्रह करने वाले स्तुत्य हो ।। १० ।।

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः
परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ।। ११ ।।
धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ।। १२ ।।
योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ।। १३ ।।
भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीत· ।। १४ ।।
नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नम ।। १५ ।।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥
सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेय मानम् ॥ १७ ॥
श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥
मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्या शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥
मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुध।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥

हे पशुपते! निवास के कारण रूप कर्म जहाँ किये जाते हैं, वह अण्डकटाहात्मक कोष तुम्हारा ही है। सब भूतो का यही निवास स्थान है तुम हमको सुख प्रदान करो। हम तुम्हे नमस्कार करते हैं। मांस भोजी गीदड़ कुत्ते आदि को हमसे पृथक करो। राक्षसिनी भी कही दूसरी जगह जाँय॥११॥

हे रुद्र! तुम प्रलय काल में जिस विनाशात्मक धनुष को धारण करते हो वह हरित सुवर्ण निर्मित् धनुष सहस्रो का एक बार मे ही सहार कर डालता है। हम तुम्हारे उस धनुष को नमस्कार करते हैं। तुम्हारा वह वाण विना किसी वाधा के सर्वत्र जाता है वह वाण जिस दिशा मे भी हो, हम उसे प्रणाम करते हैं ॥ १२ ॥

हे रुद्र! अपने सामने से भागने वाले अपराधी पुरुष को दण्डित करने मे तुम समर्थ हो। जैसे चोट खाया हुआ गुह्य पुरुष के पद चिन्हो को देखता हुआ उसे पाकर दण्डित करता है, उसी भाँति तुम भी करते हो ॥ १३ ॥

भव और रुद्र मित्रवत है तथा अपना महान पराक्रम प्रकट करते हुए विचरण करते हैं। वे जिस दिशा मे भी हो, हम उन्हे नमस्कार करते हैं ।। १४ ।।

हे रुद्र ! हमारे समाने आते हुए, हम से लौटकर जाते हुए, बैठे हुए अथवा खडे हुए तुम्हे हम नमस्कार करते हैं ।। १५ ।।

हे रुद्र ! हम तुम्हे, सन्ध्या प्रातः काल, रात्रि और दिन मे नमस्कार करते हैं ! भव और शर्व दोनो देवो को हमारा नमस्कार प्राप्त हो ।। १६ ।।

सहस्राक्ष महान मेधावी, सहस्त्रो वाण चलाने वाले और संसार व्यापी रुद्र के निकट हम न जावें ।। १७ ।।

हम उन रुद्र को अन्य स्तोताओ से पूर्व अपने रक्षक के रूप मे जान कर प्रणाम करते है जिन्होने केशी नामक दैत्य के रथ को फेंक दिया था तथा जिनसे स सार डरता है ।। १८ ।।

हे देव ! हम ससारी जीवो पर कोधित न हो और न हम पर अपने वाणो से प्रहार ही करो। अपने दिव्य अस्त्र को हमसे अन्यत्र छोड़ो। हम तुम्हे नमन करते हैं ।। १९ ।।

हे रुद्र ! हम पर क्रोध न करो और न हमारे प्रति हिंसात्मक भाव अपनाओ। हम पर कृपा करो तथा अपना शस्त्र हमसे अलग रखो। हम आपके कोधित भाव से अलग ही रहे ।। २० ।।

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वतय पियारूणां प्रजां जहि ।। २१ ।।
यस्य तक्मा कासिका हेतरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ।। २२ ।।
योन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।

तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः ॥ २३ ॥
तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥२४॥
शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥
मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥
भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥
भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥ २९ ॥
रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥
नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः सम्भुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥ ३१ ॥

हे रुद्र ! हमारे गौ तुल्य सेवकादि को मारने की इच्छा न करो। हमारे भेड़ बकरो को भी मारने की इच्छा न करो।

तुम अपने अस्त्र शस्त्रो को देव द्वेषियो पर चला कर उनकी सन्तति को नष्ट करो ॥ २१ ॥

हम उन रुद्र देव का अभिवन्दन करते हैं जिनके शस्त्र खांसी ज्वरादि व्याधियाँ हैं जिन्हें वे अपराधियो के ऊपर घाड़े को हुंकार के समान छोड़ते हैं ॥ २२ ॥

अन्तरिक्ष मे स्थित रहते हुए जो रुद्र देव द्वेषियो अयाज्ञिको का संहार करते हैं, हम उन देव को करबद्ध प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥

हे पशुपते ! विधाता ने तुम्हारे निमित्त वन मे शेर मृग, बाज हंस आदि वनचर तथा पक्षियो को उत्पन्न किया है, उनको अपनी इच्छानुसार ग्रहण करो एवं इस ग्राम के पशुओ का संहार न करो। तुम्हारा श्रेष्ठ रूप जल मे स्थित है, तुम्हारे अभिषेक निमित्त दिव्य जल प्रवाहमान रहते हैं ॥ २४ ॥

हे रुद्र ! शिशुमार अजगर पुरीकय जष मत्स्य आदि जलचर भी तुम्हारे लिए ही उत्पन्न हुए हैं, उनके लिये तुम अपने तीक्ष्ण शस्त्र को चलाते हो। हे भव ! तुमसे दूर कुछ नही हैं अर्थात् तुम सर्वत्र वर्तमान हो। सम्पूर्ण पृथ्वी को तुम क्षण मात्र में ही निहार लेते हो तथा पूर्व से उत्तर जा पहुँचते हो ॥ २५ ॥

हे रुद्र ! तुम हमे ज्वरादि रोग रूप अपने अस्त्र से दूर ही रखो। तथा चर अचर के विष से भी दूर ही रखो। आकाश स्थित विद्युत रूप अग्नि से हमारा सामना न कराओ। इस विद्युत रूप अग्नि को जंगली पशु आदि पर हमसे दूर फेंको ॥ २६ ॥

भवदेव, द्यावा पृथ्वी के स्वामी हैं तथा अन्तरिक्ष को तेजयुक्त भी वही करते हैं। हे भवदेव ! तुम जहा कही भी हो, हम तुम्हे नमस्कार करते हैं ॥ २७ ॥

हे भव ! तुम पाच प्रकार के पशुओ के स्वामी हो अपने यजन कर्ता को सुख प्रदान करो। जो व्यक्ति इन्द्र आदि देवगणों को अपना रक्षक समझता हैं उसके पशुओ को सुख प्रदान करो ॥ २८ ॥

हे रुद्र ! हमारे वयस्क वीच के और अल्प वयस्को का सहार न करो। हमारे माता पिता को भी न मारो। हमारे पोषण करने वाले लोगो की भी हत्या न करो तथा हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ॥ २९ ॥

रुद्र के प्रेरणायुक्त कर्म वाले प्रथम गणो को तथा कटु भाषी गणो को नमस्कार करता हूँ। भव के श्वानो को भी नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥

हे रुद्र तुम्हारी प्रभूत घोषयुक्त, केशिनी, चण्डेश्वर आदि वाहनियो को नमस्कार करता हूँ सहभोजी तथा अन्य वाहनियो को भी नमस्कार है। तुम्हारे अनुग्रह से हम कुशल से रहें तथा भय रहित हो। ३१ ॥

३ सूक्त (१) (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्योदन। छन्द—गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, वृहती, त्रिष्टुप्,)

तस्यौदनस्य वृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥
द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषय प्राणापाना ॥ २ ॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दिति शूर्पं मदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥
अश्वा कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषा ॥ ५ ॥
कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ।
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्रा ॥ १० ॥

इस ओदन के सिर बृहस्पति तथा मुख ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी इसके कान सूय चन्द्र नेत्र तथा सप्त ऋषि प्राण अपान वायु हैं ॥ २ ॥

मूसल इसका नेत्र है उलूखल इसकी कामना है ॥ ३ ॥

दिति ही सूप है, और जो सूप से भरती है, वही अदिति है तथा वायु धान और चावलो का विवेचन करने वाला है ॥ ४ ॥

ओदन के कण अश्व हैं तण्डुल गौ है और अलग की हुई भुसी मच्छर रूप है ॥ ५ ॥

फली करणो का शिर जिसकी भ्रू है, वह कब्रू है मेघ सिर हैं ॥ ६ ॥

काले रंग का लोह इस ओदन का मांस तथा लाल वर्ण का ताम इसका रक्त है ॥ ७ ॥

ओदन पकने के बाद जो राख होती हैं वह सीमा है जो ओदन का वर्ण है वह सुवर्ण है तथा ओदन की गन्ध कमल हैं ॥ ८ ॥

सूप इसका पात्र है, गाडी के भाग इसके अंस है एवं ईशाऐ अनूक्य हैं ॥ ९ ॥

भवदेव, द्यावा पृथ्वी के स्वामी हैं तथा अन्तरिक्ष को तेजयुक्त भी वही करते हैं। हे भवदेव ! तुम जहा कही भी हो, हम तुम्हे नमस्कार करते हैं ।। २७ ।।

हे भव ! तुम पाच प्रकार के पशुओ के स्वामी हो अपने यजन कर्ता को सुख प्रदान करो। जो व्यक्ति इन्द्र आदि देवगणो को अपना रक्षक समझता हैं उसके पशुओ को सुख प्रदान करो ।। २८ ।।

हे रुद्र ! हमारे वयस्क बीच के और अल्प वयस्को का सहार न करो। हमारे माता पिता को भी न मारो। हमारे पोषण करने वाले लोगो की भी हत्या न करो तथा हमारे शरीर की भी हिंसा न करो ।। २६ ।।

रुद्र के प्रेरणायुक्त कर्म वाले प्रथम गणो को तथा कटु भाषी गणो को नमस्कार करता हूँ। भव के श्वानो को भी नमस्कार करता हूँ ।। ३० ।।

हे रुद्र तुम्हारी प्रभूत घोषयुक्त, केशिनी, चण्डेश्वर आदि वाहनियो को नमस्कार करता हूँ सहभोजी तथा अन्य वाहनियो को भी नमस्कार है। तुम्हारे अनुग्रह से हम कुशल से रहें तथा भय रहित हो। ३१ ।।

३ सूक्त (१) (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—बार्हस्पत्योदन। छन्द— गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, वृहती, त्रिष्टुप्,)

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ।। १ ।।

द्यावापृथिवी श्रोत्रं सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापाना ।। २ ।।

चक्षुर्मुसल काम उलूखलम् ॥ ३ ॥
दितिः शूर्प मदितिः शूर्प ग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥
अश्वा कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषा ॥ ५ ॥
कब्रु फल करणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥
त्रपु भस्म हरित वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥
खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥
आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्रा ॥ १० ॥

इस ओदन के सिर वृहस्पति तथा मुख ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी इसके कान सूय चन्द्र नेत्र तथा सप्त ऋषि प्र.ण अपान वायु हैं ॥ २ ॥

मूसल इसका नेत्र है उलूखल इसकी कामना है ॥ ३ ॥

दिति ही सूप है, और जो सूप से भरती है, वही अदिति है तथा वायु धान और चावलो का विवेचन करने वाला है ॥ ४ ॥

ओदन के कण अश्व हैं तण्डुल गौ है और अलग की हुई भुसी मच्छर रूप है ॥ ५ ॥

फन्नी करणो का शिर जिसकी भ्रू है, वह कब्रू है मेघ सिर हैं ॥ ६ ॥

काले रंग का लोह इस ओदन का मांस तथा लाल वर्ण का ताम इसका रक्त है ॥ ७ ॥

ओदन पकने के ब.द जो राख होती है वह सीमा है जो ओदन का वर्ण है वह सुवर्ण है तथा ओदन की गन्ध कमल है ॥ ८ ॥

सूप इसका पात्र है, गाडी के भाग इसके अस है एवं ईशाए अनूक्य हैं ॥ ९ ॥

बैलों के कन्ठ में बँधी रस्सियां इसकी आते है तथा घर्म बन्धन गुहा है ॥ १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋत हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

ओदन पाक के लिए यह पृथ्वी कुम्भी तथा आकाश इसका ढकना है ॥ ११ ॥

सागल पद्धतियाँ उसकी पसली तथा नदी की जो रज है, वह अवध्य है ॥ १२ ॥

संसार संपूर्ण जल जिसमे हाथ धोने का जल और लघु नदियाँ इस उपसेचन रूप हैं ॥ १३ ॥

उक्त चिन्हो वाली कुंभी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढी है । १४ ॥

अथर्ववेद द्वारा इसकी स्थापना की गई है तथा साम वेद अंगार इस के चारो ओर लगे हैं ॥ १५ ॥

जल मे मिश्रित चावलो मिलाने का कष्ट बृहत्साम और करछुली रथन्तर साम है ॥ १६ ॥

ऋतुऐं इस ओदन को पकाती हैं, ओदन का पकाना समयाधीन है उसके अतिरिक्त इसे कोई नही पका सकता। समयही इसे प्रतिक्षण प्रज्वलित करने मे समर्थ हैं ॥ १७ ॥

चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है ॥ १८ ॥

यज्ञो द्वारा प्राप्त होने वाले सभी लोक इस पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथ्वी समुद्र आकाश स्थित हैं यह वही है ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
स्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
य वद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी. प्रत्यञ्चामिति ॥ २६ ॥
त्वमोदनं प्राशीस्त्वामोदना इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैनं प्राशी प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

जिस ओदन यज्ञ से बचे अंश मे चार सौ अस्सी देवता समर्थ हुए उस ओदन द्वारा सभी लोको की प्राप्ति संभव है ॥ २१ ॥

इस ओदन की महान महिमा को मैं तुमसे पूछता हूँ ॥ २२ ॥

इसकी महिमा को जानने वाला गुरु इसकी महत्ता को कम करके न बतावे ॥ २३ ॥

बैलो के कन्ठ में बँधी रस्सिया इसकी आते हैं तथा घर्म बन्धन गुहा है ॥ १० ॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋत हस्तावनेजनं कुल्यो पसेचनम् ॥ १३ ॥
ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥१५॥
बृहवायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥
ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥
यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिता ॥ २० ॥

ओदन पाक के लिए यह पृथ्वी कुभी तथा आकाश इसका ढकना है ॥ ११ ॥

सागल पद्धतियां उसकी पसली तथा नदी की जो रज है, वह अवध्य है ॥ १२ ॥

ससार सपूर्ण जल जिसमे हाथ धोने का जल और लघु नदियाँ इस उपसेचन रूप हैं ॥ १३ ॥

उक्त चिन्हो वाली कुभी ऋग्वेद रूप अग्नि पर चढी है । १४ ॥

अथर्ववेद द्वारा इसकी स्थापना की गई है तथा साम वेद अ गार इस के चारो ओर लगे हैं ॥ १५ ॥

जल मे मिश्रित चावलो मिलाने का कष्ट बृहत्साम और करछुली रथन्तर साम है ॥ १६ ॥

ऋतुऐं इस ओदन को पकाती हैं, ओदन का पकाना समयाधीन है उसके अतिरिक्त उसे कोई नही पका सकता। समयही इसे प्रतिक्षण प्रज्वलित करने मे समर्थ हैं ॥ १७ ॥

चरु को तेजस्वी सूर्य तपाता है॥ १८ ॥

यज्ञो द्वारा प्राप्त होने वाले सभी लोक इस पके हुए ओदन के द्वारा प्राप्त होते हैं॥ १९ ॥

जिस ओदन के नीचे ऊपर पृथ्वी समुद्र आकाश स्थित हैं, यह वही है ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
एवौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥
स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ ३२ ॥
नाल्प इति ब्रूयान्ननुपमेन इति नेदं च किं चेति ॥ २४ ॥
य.वद् दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदन प्राशीः प्रत्यञ्चामिति ॥ २५ ॥
त्वमोदन प्राशीस्त्वामोदना इति ॥ २७ ॥
पराञ्चं चैन प्राशी' प्र णास्त्वा हास्य'तीत्येनमाह ॥ २८ ॥
प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥
नैवाहमोदन न मामोदन ॥ ३० ॥
ओदन ऐवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥

जिस ओदन यज्ञ से बचे अंश मे चार सौ अस्सी देवता समर्थ हुए उस ओदन द्वारा सभी लोको की प्राप्ति संभव है ॥ २१ ।

इस ओदन की महान महिमा को मैं तुमसे पूछता हूँ ॥ २२ ॥

इसकी महिमा को जानने वाला गुरु इसकी महत्ता को कम करके न बतावे ॥ २३ ॥

और न यह भी न कहे कि इसमे दूध घृत आदि की आवश्यकता नही है। केवल उसकी महत्ता का ही बखान करे ॥ २४ ।

'वसयज्ञ' का अनुष्ठान कर्ता अपने हृदय मे जितने फल की कामना करे, उससे अधिक न कहे ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादी महर्षि परस्पर कहते हैं कि तू इस आत्म विमुख ओदन का प्राशन कर चुका है । २६ ॥

तूने ओदन को खाया है या ओदन ने तेरा प्राशन कर लिया है ॥ २७ ॥

यदि तूने पीछे स्थित ओदन को खाया है तो प्राणवायु तुझसे पृथक हो जायेगा । इस तरह प्राशिता से कहना चाहिए । २८ ॥

यदि तूने प्रतिमुख ओदन को खाया है तो अपान वायु तेरा त्याग करेगा ऐसा प्राशिता से कहना चाहिए ॥ २९ ॥

ओदन का मैंने प्राशन नही किया और न ओदन ने ही मेरा प्राशन किया है ॥ ३० ॥

यह ओदन प्रपंचात्मक है। ओदन करने वाले ने इसका प्राशन स्वात्मरूप से किया। ३१ ॥

सूक्त(२) ३

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती अनुष्टुप्, पंक्ति-बृहती, उष्णिक्)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैत पूर्व ऋषय. प्राश्नन्
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।

एषा वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनूः सं भवति य एव वेद ॥ ३६ ॥
ततस्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैत पूर्व ऋषयः प्राशनन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वाङ्ग सर्वपरु सर्वतनू ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु. सर्वतन् सं भवति य एवं वेद ॥ ३३ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
त वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिष ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग सर्वपरुः सर्वतनू ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनू. स भवति य एव वेद ॥ ३४ ॥
ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
त वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मण मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वाङ्गः सर्वपरु सर्वनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः तर्वतनूः सं भवति य एव वेद ॥ ३५ ॥
ततश्चैनमन्यया जिह्वाया प्राशीर्यया चैतं ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरीष्यतीत्येनमाह ।

तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्
अग्नेर्जिह्वया । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥
ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतुभिर्दन्तै तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३७ ॥
ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सप्तऋषिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३८ ॥
ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३९ ॥
ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चम् न प्रत्यञ्चम् ।

दिवा पृष्ठेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ।४०॥

पूर्व अनुष्ठान कर्ताओ ने जिस शिर से ओदन का प्राशन किया था, उसके विपरीत तूने अन्य शिर सेप्राशन किया है अतः तेरी सन्तति विनाश को प्राप्त होने लगेगी। अनजान व्यक्ति प्राशिता से ऐसा कहे। मैंने इस ओदन को अभिमुख और असमभिमुख होने पर भी भक्षण नहीं किया। ऋषियो ने वृहस्पति से समन्वित शिर से इसका प्राशन किया था मैंने भी ओदन सबकी शिर से उसी भांति प्राशन किया है। मुझे ओदन ने ही ओदन का भक्षण किया है। इस तरह प्राशित यह ओदन सब अंगो से पूर्ण शरीर वाला होकर सर्वांग फल को कहता है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदिलोको को प्राप्त होता है॥३२॥

पूर्व अनुष्ठाताओ की विधि के विपरीत अन्य सुनी हुई विधियो मे प्राशन किया है तो तू बधिर होगा ! 'मैंने आकाश पृथ्वी रूप श्रोत्रो से इस ओदन का प्राशन किया है, सांसारिक श्रोत्रो से नहीं। इस भांति से प्राशित ओदन सर्वांग पूर्ण होता हुआ फल देता है। इस प्रकार ओदन प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्गादि मे स्थित होता है॥ ३३॥

'पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिन नेत्रो से प्राशन किया था, तूने उसके विपरीत सासारिक नेत्रो से इसका प्राशन किया है तो तू नेत्र विहीन हो जायेगा। मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रो से ओदन का प्राशन किया है इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वांग फल को देता है इस प्रकार का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि में स्थित होता है॥ ३४ ।

"पूर्व ऋषियो ने जिस ब्रह्मात्मक मुख से ओदन प्राशन किया था तूने उसके विपरीत सांसरिक नेत्रो से इसका प्राशन किया है तो तू नेत्रविहीन हो जायेगा।" मैंने सूर्य चन्द्र रूपी नेत्रो से ओदन का प्राशन किया है इस प्रकार किया हुआ प्राशन सर्वांग फल को देता है। इस प्रकार का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को प्राप्त करता स्वर्गादि मे स्थित होता है ॥ ३४ ॥

'पूर्व ऋषियो ने जिस ब्रह्मात्मक मुख से ओदन प्राशन किया था, यदि तूने उसके विपरीत लौकिक मुख से इसका प्राशन किया है, तो तेरी सन्तति तेरे सम्मुख ही नाश को प्राप्त हो।" मैंने ब्रह्मात्मक मुख से ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल को देने वाला है। इस प्रकार ओदन के प्राशन का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्गादि लोको मे पहुँचता है ॥ ३५ ॥

'अनुष्ठाता ऋषियो ने जिस जिह्वा से प्राशन किया था, उसके अतिरिक्त सांसारिक जिह्वा से यदि तूने प्राशन किया था, तो तेरी जिह्वा निरर्थक हो जायेगी। इस ओदन की अवयव भूत अग्नि रूप जिह्वा से मैंने ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। इस का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फल को पाता हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ की विधि के विपरीत यदि तूने लौकिक दांतो से प्राशनकिया है तो तेरे दांत नष्ट होगे। मैंने ऋतु रूप दांतो से ओदन का भक्षण किया हैं। इस प्रकार प्राशन किया हुआ ओदन सर्वांग फल प्रदाता होता हैं। जो प्राशन

की इस विधि से परिचित हैं वह सर्वांग फल की प्राप्ति करता हुआ स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होता हैं ॥ ३७ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं की विधि के विपरीत यदि तूने लौकिक प्राण पानों से ओदन का प्राशन किया हैं तो प्राण अपान वायु तेरा त्याग कर देंगे । मैंने सप्तऋषि रूप प्राण पानों से इस ओदन का भक्षण किया हैं जो सर्वांग फल का देने वाला हैं इस भांति ओदन प्राशन विधि का ज्ञाता सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वग आदि लोकों को प्राप्त होता हैं ॥ ३८ ॥

पूर्व ऋषयों की विधि के विपरीत यदि तूने इस ओदन का लौकिक विधि से प्राशन किया है तो तुझे यक्ष्मादि रोग नष्ट कर देंगे । मैंने उसी अन्तरिक्षात्मक विधि से उसका भक्षण किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है । जो व्यक्ति ओदन प्राशन की इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदिलोकों को प्राप्त करता है ॥ ३९ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिस पृष्ठ से प्राशन किया था यदि तूने उसके विपरीत अन्य पृष्ठ से प्राशन किया है तो विद्युत तुझे नष्ट करेगी । मैंने द्यौ रूप पृष्ठ से इसका प्राशन किया है जो सर्वांग फल देने वाला है । जो व्यक्ति प्राशन की इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदि लोकों में स्थित होता है ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांग सर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४२ ॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
समुद्रेण वस्तिना । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वांग सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यमेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांगः सर्वपरुः सर्वतनूः।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४४ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वांग. सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एवं वेद ॥ ४५ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैत पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
त वा अह नार्वाञ्चं न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ।
अश्विनो पादाभ्यां । ताभ्यामेन प्राशिष ताभ्यामेनमजीगमम्
एष वा ओदन सर्वांगः सर्वपरु सर्वतनू ।
सर्वांग एव सर्वपरुः सर्वतनूः स भवति य एव वेद ॥ ४६ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
त वा अह नार्वाञ्च न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितु प्रपदाभ्यां । ताभ्यामेन प्राशिष ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदन सर्वांग सर्वपरुः सर्वतनू ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनू स भवति य एवं वेद ॥ ४७ ॥
ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मण हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेन प्राशिषं ताभ्यामेनतजीगसम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्ग मर्वपरु सर्वतनूः ।
सर्वांग एव सर्वपरु सर्वतनूः स भवति य एव वेद ॥ ४८ ॥
ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैत पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानो ऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वाह नार्वाञ्च न पराञ्च न प्रत्यञ्चं सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैन प्राशिष तयैनमजीगमम् ।

एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरु सर्वतनू ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरु सर्वतनू स भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस वक्ष से इस ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने इनके विपरीत वक्ष से किया है तो तुझे कृषिकार्य मे सफलता प्राप्त नही होगी। मैंने पृथ्वी रूप वक्ष से इस ओदन का प्राशन किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। जो पुरुष प्राशन की इस विधि को जानता है वह सर्वांग फल प्राप्त करता हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस उदर से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उसके विपरीत ढग से प्राशन किया है तो उदर रोगो से पीडित हो मृत्यु को प्राप्त होगा। मैंने सत्य रूप उदर से इस ओदन का भक्षण किया है जो सर्वांग फल का देने वाला है। जो इस विधि से परिचित है सर्वांग फल से सपन्न हो स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ की विधि विपरीत यदि तूने अन्य वस्ति से प्राशन किया है तो तू जल मे मृत्यु को प्राप्त होगा। मैंने समुद्र रूप वस्ति से इस ओदन का प्राशन किया है तथा उसी से इसे यथा स्थान पहुँचाया है। इस प्रकार का ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है। जो ओदन-प्राशन की इस विधि का ज्ञाता है वह सर्वांग फल पाता हुआ स्वर्ग आदि लोको मे स्थित होता हैं ॥ ४३ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओं ने जिन उरुओ से प्राशन किया था, यदि तूने उस विधि के प्रतिकूल किसी अन्य विधि से प्राशन किया है तो तेरी उरु नष्ट हो जायेगी। मैंने मित्रावरुण रूप

उरुओ से प्राशन करके उसे यथोचित जगह पहुँचाया है जो इस विधि को जानता है, वह सर्वांग फल से युक्त हो स्वर्ग आदि लोको प्राप्त होता है ।४४।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिन अस्थियुक्त जांघो से इस ओदन का प्राशन किया था यदि तूने उस विधि के प्रतिकूल किया है तो तेरी जाँघें सूख जायेगी। मैंने त्वष्टा की जाघों से इस ओदन का प्राशन किया है और यथोचित स्थान पर पहुँचाया है। इस विधि से किया प्राशन सर्वांग फल युक्त होता है। जो इस विधि का ज्ञाता है, वह सर्वांग फल युक्त हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त करता है ।। ४५ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस विधि से ओदन का प्राशन *किया था यदि तूने उससे भिन्न किया है तो तू बहुचारी हो* जायेगा। मैंने अश्विद्वय के पैरो से प्राशन किया है और उन्ही के द्वारा यथोचित स्थान पहुँचाया है। इस विधि से किया प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है। जो इस विधि से परिचित है वह सर्वांग फलो से युक्त हुआ स्वर्ग आदि लोको को प्राप्त करता है ।। ४६ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ ने इस ओदन का जिन पदार्थों से प्राशन किया था तूने यदि उसके प्रतिकूल किया है तो तुझे सर्प काट खायेगा। मैंने सविता देव के पादाग्रो से इस ओदन का प्राशन किया है तथा उन्हीं के द्वारा इसे यथास्थान पहुँचाया है। इस भाँति किया गया ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला होता है जो व्यक्ति प्राशन के इस ढंग से परिचित है, वह सर्वांग फल युक्त हो स्वर्ग आदि लोको मे स्थित होता है ।। ४७ ।।

पूर्व अनुष्ठाताओ जिन करो से ओदन का प्राशन किया था, यदि तूने उससे भिन्न किया है तो ब्रह्महत्या के प.प का भागी होगा। मैंने ब्रह्म के करो द्वारा प्राशन किया हैं तथा उसे यथास्थान पहुँचाया है। इस भांति विया ओदन प्राशन सर्वांग फल देने वाला है। इस विधि का ज्ञात सव ग फलो से युक्त स्वर्ग आ द लोको में स्थित होती है ॥ ४८ ॥

पूर्व अनुष्ठाताओ ने जिस ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था तूने यदि विपरीत किया है तो तू ऐश्वर्य रहित हो जायगा। मैंने ब्रह्मात्मिका प्रतिष्ठा से इस ओदन का प्राशन किया है और उसे स्वर्ग पहुँचाया है। इस भांति किया गया प्राशन सर्वांग पूर्ण होता है। इस विधि का ज्ञाता पुरुष सर्वांग फलो से युक्त स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥

३ (३) सूक्त

(ऋषि-अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्, त्रिष्टुप, बृहती,)

एतत् वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥ ५० ॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एव वेद ॥ ५१ ॥

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशत लोकान् ।

निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ।

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत । ५३ ॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राण रुणद्धि ॥ ५४ ॥

न च प्राण रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥

न च सर्वज्यानि जीयते पुरैनं जरस प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥

उपरोक्त महिमा से युक्त यह ओदन, अपनी महिमा से सृष्टि के रचयिता एव सूर्य मडल मे स्थित ईश्वर का मण्डल रूप ही है ॥ ५० ॥

जो व्यक्ति सूर्य मड ा त्मक रूप को जानता है वह सूर्य लोक को प्राप्त होता है ।। ५१ ।।

प्रजापति ने इस सूर्यात्मक ओदन द्वारा अष्टावसु, एकादश, रुद्र द्वादश आदित्य प्रजापति और वषटकार इन तेंतीस देवताओ की सृष्टि करते हुए उनके लोको का भी निर्माण किया ।। ५२ ।।

उन लोको के सुखो का ज्ञान कराने के लिए ही इस यज्ञ को रचा गया ।। ५३ ।।

इसके ज्ञाता उपासक का जो व्यक्ति उपद्रष्टा होता है, वह उपरोधक अपने शरीर मे स्थित अपने प्राण की गति को रोक देता है क्योकि वह उपासक की कामना के प्रतिकूल आचरण करता है ।। ५४ ।।

उसके प्राण की ही गति नही रुकती, अपितु सतान पशु आदि से विहीन हो वह पतित हो जाता है ।। ५५ ।।

उसकी सर्वस्व हानि के साथ ही उसके प्राण उसे जरावस्था से पूर्व ही छोड देते है । ५६ ।।

४ सूक्त

(ऋषि—भार्गवो वैदर्भि । देवता—प्राण । छन्द-अनुष्टुप, पक्ति, त्रिष्टुप, जगती)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिद वशे ।
यो भूत सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।। १ ।।
नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते प्राण वर्षते ।। २ ।।
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधी ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ।। ३ ।।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
अयुर्वै न प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरक ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥८॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥

समस्त प्राणियो के शरीर में व्याप्त प्राण को नमस्कार है जिसके अधीन यह समस्त विश्व है। वह भूतकाल से ही अविच्छिन्न है। वह प्राणियो का ईश्वर है तथा उसीमे समस्त संसार व्याप्त है। ऐसे महिमा शाली प्राण के निमित्त नमस्कार है। १ ॥

हे प्राण ! तुम ध्वनिशील हो। तुम मेघ जल में युक्त एव गर्जनशील हो। तुमको नमस्कार है। तुम ही विद्युत रूप से प्रकाशित होते हो एव वृष्टि वर्षक हो ॥ २ ॥

सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि क परिलक्षित करता हुआ गर्जन ध्वनि करता है तब वे औषधि आदि गर्भ धारण करती है ॥ ३ ॥

वर्षाऋतु की समाप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन ध्वनि करता है, तब सब प्रसन्न होते हैं। पृथ्वी के सभी प्राणी आनन्द विभोर हो उठते है ॥ ४ ॥

जब प्राण विस्तृत पृथ्वी को चहुँ ओर से वर्षा द्वारा सिंचित करता है तथा गौ आदि पशु हर्षोन्मत्त हो उठते हैं ॥ ५ ॥

प्राण द्वारा सिंचित औषधियां उसी से कहती हैं कि हे प्राण ! तू हमको सुन्दर गन्ध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ॥ ६ ॥

हे प्राण ! तुम सामने आते तथा लौटकर जाते हुए को प्रणाम है। तू जहाँ कहीं भी हो वहीं तुझे नमस्कार है ॥ ७ ॥

हे प्राण ! तुम प्राणन कर्म वाले और अपानन ने कर्म वाले को नमस्कार है। परागमन स्वभाव से स्थित प्रतीचीन गमन वाले और सब व्यापारों के कर्ता तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥

हे प्राण ! इस शरीर से तुम्हे प्रेम है। तुम्हारी अग्नि-षोमात्मक प्रेयसी और अमरत्व से युक्त जो औषधि हैं, उन सबके पास से अमृत गुण देने वाली औषधि प्रदान कर ॥ ९ ॥

जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है उसी भाँति प्राण मनुष्यादि को ढकते है। जो जगमात्मक वस्तु प्राणन व्यापार वाली हैं और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है परन्तु प्राण उनमे विरुद्धगति स वास करता है। इन सब जगम स्थावर जीवों सहित विश्व का स्वामी प्राण ही ह ॥ १० ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥
नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥
नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥८॥
या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥
प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥

समस्त प्राणियो के शरीर में व्याप्त प्राण को नमस्कार है जिसके अधीन यह समस्त विश्व है। वह भूतकाल से ही अविच्छिन्न है। वह प्राणियों का ईश्वर है तथा उसीमे समस्त संसार व्याप्त है। ऐसे महिमा शाली प्राण के निमित्त नमस्कार है। १ ॥

हे प्राण ! तुम ध्वनिशील हो। तुम मेघ जल में युक्त एवं गर्जनशील हो। तुमको नमस्कार है। तुम ही विद्युत रूप से प्रकाशित होते हो एवं वृष्टि वर्षक हो ॥ २ ॥

सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि को परिलक्षित करता हुआ गर्जन ध्वनि करता है तब वे औषधि आदि गर्भ धारण करती है ॥ ३ ॥

वर्षाऋतु की समाप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन ध्वनि करता है, तब सब प्रसन्न होते हैं। पृथ्वी के सभी प्राणी आनन्द विभोर हो उठते है ॥ ४ ॥

जब प्राण विस्तृत पृथ्वी को चहुँ ओर से वर्षा द्वारा सिंचित करता है तथा गौ आदि पशु हर्षोन्मत्त हो उठते हैं ॥ ५ ॥

प्राण द्वारा सिंचित औषधियां उसी से कहती हैं कि हे प्राण! तू हमको सुन्दर गन्ध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ॥ ६ ॥

हे प्राण! तुम सामने आते तथा लौटकर जाते हुए को प्रणाम है। तू जहां कहीं भी हो वहीं तुझे नमस्कार है ॥ ७ ॥

हे प्राण! तुम प्राणन कर्म वाले और अपानन ने कर्म वाले को नमस्कार है। परागमन स्वभाव से स्थित प्रतीचीन गमन वाले और सब व्यापारों के कर्ता तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥

हे प्राण! इस शरीर से तुम्हे प्रेम है। तुम्हारी अग्नि-षोमात्मक प्रेयसी और अमरत्व से युक्त जो औषधि हैं, उन सबके पास से अमृत गुण देने वाली औषधि प्रदान कर ॥ ९ ॥

जैसे पिता अपने पुत्र को ढकता है उसी भांति प्राण मनुष्यादि को ढकते है। जो जंगमात्मक वस्तु प्राणन व्यापार वाली हैं और जो स्थावरात्मक वस्तु प्राणन व्यापार से रहित है परन्तु प्राण उनमे विरुद्धगति से वास करता है। इन सब जंगम स्थावर जीवों सहित विश्व का स्वामी प्राण ही है ॥ १० ॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्वं उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥
अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥ १६ ॥
यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥
यस्ते प्राणेद वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥
यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥
अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥

प्राण ही मृत्यु है तथा प्राण ही कष्ट दायी ज्वरादि रूप तक्मा है इन्द्रियां प्राण की आराधना करती है तथा वही प्राण सत्यशील को श्रेष्ठ लोक की प्राप्ति कराता है ॥ ११ ।

प्राण ही विराट है प्राण ही देष्ट्री है । सभी प्राण की उपासना करते है । प्राण ही सूर्य चन्द्रमा है तथा प्राण ही प्रजापति है ॥ १२ ॥

प्रणायान प्राण की ही वृत्ति है वही व्रीहि और यव है। वृत्तिमान प्राण अनड्वान कहलाता है। विधाता ने जौ मे प्राणवृत्ति और व्रीहि मे अपानवृत्ति वाला प्राण स्थापित किया है। इन दोनो के द्वारा ही प्राणियो के समस्त कार्य व्यापार चलते हैं। अत. व्रीहि यव और अनड्वान रूप से प्राण को ही कहते हैं॥ १३॥

हे प्राण! शरीर धारी मनुष्य स्त्री के गर्भ मे तुम्हारे प्रवेश से ही प्राण और अपान व्यापार को करता है। तुम गर्भ स्थित बच्चे को माता द्वारा भोजन किए आहार से ही पोषित करते हो। फिर वह पुरुष पुण्य पाप का फल भोगने के लिए भूमि पर जन्म लेता है।' १४॥

मातारिश्वा वायु ही प्राण है। ससार का आधारभूत वायु ही प्राण है। ससार के आधार भूत प्राण मे भूतकाल मे उत्पन्न ससारऔर भविष्य में उत्पन्न होने वाला ससार आश्रम रूप मे रहता है। सपूर्ण विश्व ही इस प्राण मे स्थित है॥ १५॥

हे प्राण! जब तुम वर्षा द्वारा तृप्त करते हो, तब अथर्वा, अ गरा गोत्री और देवगणों द्वारा रचीगई तथा मनुष्यो द्वारा प्रकट की गई सब औषधियाँ उत्पन्न होती हैं॥ १६॥

जब प्राण वर्षा केरूप में पृथ्वी पर बरसात है उसके बाद ही व्रीहि जौ, तथा लता रूप औषधियाँ उत्पन्न होती है॥१७॥

हे प्राण! तू जिस विद्वान में प्रविष्ट होता है और जो तेरी उक्त महिमा से परिचित है सब देवता उस विद्वान को श्रेष्ठ लोक मे अमरता पदान करते हैं।' १८॥

हे प्राण! देवता मनुष्यादि जैसे तुम्हारे उपभोग के योग्य अन्न लाते हैं वैसे ही तुम्हारी महिमा से परिचित, विद्वान के लिए भी लावें॥ १९॥

मनुष्यों में ही नहीं, देवताओं में भी प्राण रूप गर्भ से घूमता है। सब ओर व्याप्त होकर प्राण ही उत्पन्न होता है। इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल की और भविष्य की वस्तुओं में भी पिता का पुत्र में अपने अवयवों से प्रविष्ट होने के समान अपनी सामर्थ्य से प्राप्त कर लिया है॥ २०॥

एक पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥
अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥
यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टत ॥
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥
यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥
प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥

शरीर में स्थित प्राण ही हंस है। वह इस शरीर से प्राणवृत्ति द्वारा ऊपर की ओर जाता हुआ अपानवृत्ति वाले एक पाँव को नहीं उठाता। यदि वह ऐसा करे तो शरीर से प्राण निकल जाने पर शरीर का काल विभाग न हो और न अन्धकार ही दूर हो। अतः संसार को प्राणयुक्त रखने के लिए वे अपने एक पाद को स्थिर रखते हैं ॥ २१ ॥

अष्ट चक्र युक्त शरीर प्राण रूप एक नेमि वाला कहा जाता है। यह चक्र अनेक अक्षों से मिला हुआ है। ऐसे रक्षा-

त्मक शरीर को पहले पूर्वभाग में तदुपरान्त अपर भाग मे व्याप्त होकर भोगता है । वह प्राण आधे अंश से प्राणियो को उत्पन्न करता है और उसके दूसरे भाग का रूप निर्धारण शक्ति से परे है ॥ २२ ॥

वह प्राण जो विश्व का स्वामी है, वह शरीर धारियो के शरीर में शीघ्रता से प्रतिष्ठित होता है । हे प्राण! तुम्हे नमस्कार है ॥ २३ ॥

जो प्राण संसार का स्वामी है, वह सर्वत्र प्रतिक्षण सचेष्ट रहता है । वह प्राण अविच्छिन्न रूप से मेरे शरीर मे वर्तमान रहे ॥ २४ ॥

हे प्राण ! सोते हुए प्राणियो की रक्षा की निमित्त तुम सचेष्ट रहो । प्राणी सोता है, परन्तु प्राण को सोते हुए किसी ने नही सुना ॥ २५ ॥

हे प्राण ! तुम मुझसे विमुख न हो । मैं जीवन धारण के लिये तुम्हें अपने शरीर मे रोकता हूँ । वैश्वाना अग्नि को जिस प्रकार देह मे धारण किया जाता है उसी प्रकार मैं तुम्हें शरीर में धारण करता हूँ ॥ २६ ॥

५ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–ब्रह्मा देवता–ब्रह्मचारी । छन्द त्रिष्टप्, शक्वरी, बृहती, जगती, अनुष्टुप, उष्णिक्)

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण कृणुते गर्भमन्त ।
तं रात्रो तिस्त्र उदरे बिभर्ति त जात द्रष्टुमभिसयन्ति देवाः ॥३॥
इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्ष समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥
पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्म वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जात ब्राह्मण ब्रह्म ज्येष्ठ देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥
ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तर समुद्र लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६
ब्रह्मचारो जनयन् ब्रह्मापो लोक प्रजापति परमेष्ठिन विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरास्ततर्ह ॥ ७ ॥
आचार्य स्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः समनसो भवन्ति । ८॥
इमां भूमि पृथिवी ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवल कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०॥

आकाश पृथ्वी दोनों लोको को अपने तपसे प्रभावित करने वाले ब्रह्मचारी को समस्त देवगण अनुकूल होते है। वह अपने तपसे आकाश का पोषण करता तथा अपने गुरू का भी पोषण करता है ॥ १ ॥

पितर, इन्द्र आदि देवता ब्रह्मचारी की रक्षा के निमित्त सदैव तत्पर रहते हैं। विश्वा वसु आदि भी इसका अनुसरण करते है। तेतीस देवता, इनके विभूति रूप तीन सौ तीन देवता और छः सहस्त्र देवता, इन सबका ब्रह्मचारी अपने तप द्वारा पोषण करता है ॥ २ ॥

उपनयन करने वाला आचार्य, विद्यामय शरीर के गर्भ मे उसे स्थापित करता हुआ, तीन रात तक ब्रह्मचारी को अपने उदर मे रखता है चौथे दिन देवगण उस विद्या देह से उत्पन्न ब्रह्मचारी के सन्मुख अभिमुख होते हैं ।। ३ ।।

पृथ्वी इस ब्रह्मचारी की प्रथम तथा आकाश दूसरी समिधा है। द्यावा पृथ्वी के मध्य अग्नि में स्थापित हुई समिधा से ब्रह्मचारी ससार को तृप्ति प्रदान करता है। इस प्रकार ब्रह्मचारी समिधा मेखला, मौजी श्रम, इन्द्रिय निग्रहात्मक खेद और देह को सतापित करने वाले नियमो का पालन करता हुआ पृथ्वी आदि लोको का पोषण करता है ।। ४ ।।

ब्रह्मचारी ब्रह्म से भी पहले उत्पन्न हुआ, वह तेजोमय रूप धारण कर तप से युक्त हुआ। उस ब्रह्मचारी रूप से तपते हुए ब्रह्म द्वारा श्रेष्ठ वेदात्मक ब्रह्म प्रकट हुआ और उसके द्वारा प्रतिपादित अग्नि आदि देवता भी अपने अमृतत्व आदि गुणो के सहित प्रकट हुए ।। ५ ।।

प्रातः साय अग्नि मे होमी समिधा और उसकी दीप्ति से हुए तेजस्वी मृगचर्म धारी जो ब्रह्मचारी अपने नियमो का पालन करता है वह शीघ्र ही पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र पर पहुँचता है और सब लोको को अपने समक्ष करता है ।। ६ ।।

ब्रह्मचारी से ब्राह्मण जाति की उत्पत्ति होती है। वही गगा आदि नदियाँ स्वग प्रजापति परमेष्ठी और विराट को उत्पन्न करता है। वह मरण धर्म से रहित ब्रह्म की तीन गुणो से युक्त प्रकृति मे गर्भ रूप होकर सब प्राणियो को प्रकट करता और इन्द्र रूप मे असुरो का सहार करता है ।। ७ ।।

यह द्यावा पृथ्वी विशाल है। इस द्यावा पृथ्वी के उत्पत्ति

कर्त्ता आचार्य की भी ब्रह्मचारी रक्षा करता है। समस्त देवगण ऐसे ब्रह्मचारी पर अनुग्रहशील होते हैं ॥ ८ ।

पृथ्वी और आकाश को ब्रह्मचारी ने भिक्षा रूप मे ग्रहण किया और फिर उसने उस द्यावा पृथ्वी को समिधा बना कर अग्नि की उपासना की संसार के समस्त जीवधारी उन्हीं आकाश के आश्रय मे रहते हैं ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारी वेदात्मक और देवात्मक निधियो की अपने तप से रक्षा करते हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मण शब्द और उसके अर्थ से सम्बन्धित दोनो निधियो को ब्रह्मरूप करता है ॥ १० ॥

अर्वागन्य. इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा
ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिंगो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेत पृथिव्यां तेन जीवन्ति
प्रदिशश्चतस्र ॥ १२ ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचर्यप्सु समिधमता दधाति ।
तासामर्चीषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्य पुरुषो वर्षमापः ॥१३॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधय. पय' ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिद स्वराभृतम् ॥ १४ ॥

अमा घृतं कृणुये केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रम्हचारी प्रायच्छत् स्वान्मित्रो अध्यात्मन. ॥ १५ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रम्हचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घसं जि ीर्षति ॥ १८ ॥
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्वा भरत् ॥ १६ ॥
ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
सवत्सर सहतु भिस्ते जाता ब्रह्मचारिणा ॥ २० ॥

उदय न हुआ सूर्यरूप अग्नि पृथ्वी के नीचे रहता है पार्थिव अग्नि का निवास स्थान पृथ्वी है। सूर्य के उदय होने पर यह दोनो अग्नियाँ अन्तरिक्ष पर मिलती हैं। दोनो की रश्मियाँ सयुक्त होकर दृढ होती हुई आकाश पृथ्वी को आश्रित होती हैं। इन दोनो अग्नियो से पूण ब्रह्मचारी अपनी दीप्ति से अभिदेवता होता है । ११ ॥

वृष्टि जल से पूर्ण वरुणदेव अपने वीर्य को पृथ्वी मे सीचते हैं। ब्रह्मचारी इस वीर्य को अपने तेज से उच्च प्रदेश मे सीचता है जिसमे चारो दिशाऐ वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥१२॥

ब्रह्मचारी, पार्थिव अग्नि मे चन्द्रमा सूर्य वायु एव जलमे समिधाऐ डालता है। इस अग्नि आदि का तेज भिन्न भिन्न रूप से आकाश और पृथ्वी के मध्य स्थित होता है। ब्रह्मचारी द्वारा वृद्धि को प्राप्त अग्नि, वर्षा जल घृत प्रजा आदि कार्य को सपन्न करते हैं ॥ १३ ॥

आचार्य ही मृत्यु है वही वरुण है, वही सोम है। दुग्ध व्रीहि, जौ और ओषधियाँ आचार्य के अनुग्रह से ही प्राप्त होती हैं अथवा यह स्वय ही आचार्य रूप हैं ॥ १४ ॥

आचार्य रूप से वरुण ने जिस जल को धारण किया, वही वरुण प्रजापति से जिस अभीष्ट की कामना करते थे,

उसे मित्र ने ब्रह्मचारी रूप से आचार्य को दक्षिणा मे प्रदान किया ।१५॥

विद्या दान देने के फलस्वरूप आचार्य ब्रह्मचारी रूप से प्रकट हुए, वही अपने तप से प्रजापति हुए। प्रजापति से विराट होकर परमात्मा बने॥ १६ ।

वेद ही ब्रह्म है, तथा वेदो का अध्ययन करने वाला कार्य भी ब्रह्म हैं। इसी ब्रह्मचर्य के तप के प्रभाव से राजा अपने राज्य की समृद्धि करता है तथा आचार्य भी ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मचारी को अपना शिष्य बनाने की इच्छा प्रकट करता है॥ १७॥

जो अविवाहित है, ऐसी स्त्री ब्रह्मचर्य के द्वारा श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती है। अनड्वान आदि भी ब्रह्मचर्य द्वारा ही श्रेष्ठ स्वामी को प्राप्त करता है। अश्व ब्रह्मचर्य से ही सेवनीय तृणो की इच्छा प्रकट करता है।१८॥

अग्नि आदि देवगणो ने ब्रह्मचर्य द्वारा मृत्यु को पृथक किया, ब्रह्मचर्य के द्वारा ही इन्द्र ने देवगणों को स्वर्ग की प्राप्ति कराई ।१९॥

व्रीहि, यव, औषधियाँ, वनौषधियाँ, दिवस-रात्रि, स्थावर जगम सृष्टि; षट ऋतु और बारह मास का वर्ष ब्रह्मचर्य के तपसे ही क्रियाशील हैं॥ २०॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिण ॥ २१ ॥
पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥
देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोता।।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यान वाचं मानो हृदय ब्रह्म मेधाम् ॥ ·४॥
चक्षु श्रोत्र यशो अस्मासु धेह्यन्न रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥
तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्
तप्यमान समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रु: पिंगल. पृथिव्या बहु रोचते ॥ २६ ॥

द्यावा पृथ्वी के समस्त प्राणी, पख वाले और विना पख वाले पशु आदि सबकी उत्पत्ति ब्रह्मचर्य के प्रभाव से है ॥ २१ ।

प्रजापति द्वारा उत्पन्न देवगण मनुष्य आदि समस्त प्राणियो का धारण पालन करते हैं । आचार्य के मुखसे निकला वेदात्मक ब्रह्म ही ब्रह्मचारी में स्थित होकर सब जीवधारियो का रक्षण करता है ॥ २२ ॥

यह परमब्रह्म देवताओ से परोक्ष नही है। वह अपने ब्रह्मरूप से ही प्रकाशित होता है। वह श्रेष्ठतम है । देवता भी अमरणशील होकर प्रकट हुए हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी वेदात्मक ब्रह्म को धारण करता और समस्त जीवधारियो के प्राण अपान को प्रकट करने वाला है। फिर व्यान नामक वायु को शब्दात्मिका वाणी को अन्त करण और उसके निवास रूप हृदय को वेदात्मक ब्रह्म और विद्यात्मिका बुद्धि को वही ब्रह्मचारी उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥

हे ब्रह्मचारी ! तुम हम स्त्रोताओ में, नेत्र श्रोत्र यश और वैभव की स्थापना करो ॥ २५ ॥

अन्न वीर्य रक्त आदि की कल्पना करता हुआ ब्रह्मचारी तपस्या मे लगा हुआ स्नान से सदा पवित्र रहता है और वह अपने तेज से दीप्त युक्त होता है ॥ २६ ॥

सूक्त ६

(ऋषि—शन्तान्ति । देवता—अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप)

अग्नि ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्र बृहस्पति सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १ ॥
ब्रूमो राजन वरुण मित्र विष्णुमथो भगम् ।
अंश विवस्वन्त ब्रूमस्ते नो मुचन्त्वंहस ॥ २ ॥
ब्रूमो देवं सवितार धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ३ ॥
गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ ४ ॥
अहोरात्रे इद ब्रूम सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥
वात ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिश. ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या दहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चन्तु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥
पार्थिवा दिव्या पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिण ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥
भवाशर्वाविद ब्रूमो रुद्र पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥ ९ ॥
दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमि यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १० ॥

अभीष्ट फल की प्राप्ति हेतु हम अग्निदेव की स्तुति करते हैं। हम महावृक्षो व्रीहि सव वनौषधि आदि की स्तुति

करते हैं। इन्द्र वृहस्पति और सूर्य की भी हम स्तुति करते हैं, वे पाप दोषों से हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

वरुण, मित्र, विष्णु, भग, अंस और विवस्वान की हम स्तुति करते हैं वे पाप दोषो से हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

हम सूर्य धाता पूषा और त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ३ ॥

हम गन्धर्व अप्सराओ अश्विद्वय ब्रह्मा और अर्यमा की स्तुति करते हैं, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करे ॥ ४ ॥

दिन और रात के स्वामी सूर्य और चन्द्र तथा अदिति के सभी पुत्रो की हम स्तुति करते हैं। वे हमे पाप दोषो से मुक्त करें ॥ ५ ॥

हम वायु पर्जन्य, दिशा-विदिशा के देवताओ की भी स्तुति करते हैं, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ६ ॥

दिवस रात्रि के अभिमानी देवता मुझे सौगन्धात्मक दोष से युक्त करें। उषा काल के अभिमानी देवता चन्द्रमा रूप सोम मुझे सौगन्ध के कारण लगे पाप दोष से मुक्त करें ॥ ७ ॥

आकाश के प्राणी, पृथ्वी के जीवधारी पशु पक्षी आदि की भी हम स्तुति करते हैं। वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ ८ ॥

भव और शर्व की ओर देखते हुए हम यह कहते हैं, रुद्र और पशुपतिदेव की हम स्तुति करते हैं। इसके वे वाण जिन्हे हम जानते हैं, हमारे लिए सुखकारी हो ॥ ९ ॥

हम आकाश, नक्षत्र पृथ्वा पुण्य क्षेत्र पर्वत समुद्र नदी सरोवर आदि की स्तुति करते हैं। वे हमको पाप दोष से मुक्त करें ॥ १० ॥

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवी. प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥
ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १२ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १३ ॥
यज्ञं ब्रूमो यजमानमृच सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १४ ॥
पञ्च राज्यानि वीरुधा सामश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यव. सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥
अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान पुण्यजनान् पितॄन ।
मृत्युनेकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १६ ॥
ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १७ ॥
एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत् ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवा समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥१८॥
विश्वान् देवानिद ब्रूम' सत्यसंधानृतावृधः ।
विश्वाभि' पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहस ॥ १९ ॥
सर्वान् देवानिद ब्रूमः सत्यसंधानृतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभि सह ते ना मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २० ॥
भूत ब्रूमो भूतपति भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा सगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥
या देवी पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादशर्तव ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते न सन्तु सदा शिवा ॥ २२ ॥
यन्मातली रथक्री नममृत वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्त भेषजम् ॥ २३ ॥

हम इस स्तुति को सप्त ऋषियो मे कहते हैं। हम जल देवता, प्रजापति और पितरो की स्तुति करते हैं, वे हमे पाप दोषो से मुक्त करें ॥ ११ ॥

आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष के पराक्रमी देवता हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ १२ ॥

द्वादश सूर्य, एकादश रुद्र, अष्टावसु द्युलोक के देवगण महर्षि अथवा आंगिरस आदि महर्षि हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ १३ ॥

हम यज्ञ यजमान तथा यज्ञ मे विनियुक्त ऋचाओ की की स्तुति करते है। स्तोत्रो का सपन्न करने वाले सामो की ओषधियो की और होवो की हम स्तुति करते हैं, वे हमे पाप से छुडावे ॥ १४ ॥

पत्र, काण्ड, फल, पुष्प और मूल इन पाँच राज्य वाली औषधियो मे श्रेष्ठ सोमलता है, उसकी दर्भ, भग यव और सहदेवी आदि ओषधिया की हम स्तुति करते हैं, यह हमको पाप दोषो से मुक्त करें ॥ १५ ॥

दानों मे बाधक दुष्टो की, कष्टदायी राक्षसो की, पिशाचो की, सर्पो की, पितरो का तथा एक सौ एक मृत्यो के स्वामी देवताओ की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

ऋतुओ वसु रुद्र आदित्य ऋभु, मरुतो तथा ऋतुओ में उत्पन्न पदार्थो का, चन्द्र संवत्सरो और सौर संवत्सरो और मासो को हम स्तुति करते है, वे हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ १७ ॥

हे देवगण ! तुम दक्षिण, उत्तर, पश्चिम या पूर्व दिशाओ मे स्थित हो। अपनी अपनी दिशाओ से शीघ्र पधार कर हमें पाप दोषो से मुक्त करो ॥ १८ ॥

हम अपनी स्त्रियो सहित विश्वेदेवा की स्तुति करते हुए प्रार्थना करते हैं कि वे हमे पाप दोषो से मुक्त करे ॥ १६ ॥

हम यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओंकी, उनकी पत्नियो सहित स्तुति करते हुए याचना करते हैं कि वे हमे पाप दोषो से मुक्त करें ॥ २० ॥

हम भूत, भूतेश्वर और भूतो के नियामक देवता की स्तुति करते हुए उनसे याचना करते हैं कि वे मिलकर यहाँ पधारे और हमारी पाप दोषो से रक्षा करें ॥ २१ ॥

पाँच दिशाऐ, बारह मास सवत्सर तथा हिंसात्मक दाढो की हम स्तुति करते हैं। वे हमारे लिये सुखकारी हो ॥ २२ ॥

इन्द्र का सारथि मातलि जिस अमरता प्रदान करने वाली औषधि से परिचित है, उसे रथ के स्वामी इन्द्र ने जल मे डाल दिया था। हे जलो ! तुम मातलि द्वारा प्राप्य और इन्द्र द्वारा जल मे डाली गई औषधि को हमें प्रदान करो ॥ २३ ॥

७ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा। देवता· उच्छिष्ट, अध्यात्मम्। छन्द· अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहोत)।

उच्छिष्टे नाम रूप चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्त समाहितम् ॥ १ ॥
उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्व भूत समाहितम्।
आप· समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहित ॥ २ ॥
सन्नुच्छिष्टे असश्चोभौ मृत्युर्वाज प्रजापति.।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥
दृढो दृहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवता· श्रिताः ॥ ४ ॥

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गाथ प्रस्तुत स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वर. साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥
ऐन्द्राग्न पावमान महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भइव मातरि ॥ ६ ॥
राजसूय वाजपेय मग्निष्टोमस्तदध्वर· ।
अर्काश्वमेधा वुच्छिष्टे जीव बर्हिमदिन्तम ॥ ७ ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्द सा सह ।
उत्सन्ना यज्ञा सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिता ॥ ८ ॥
अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तप ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिता· ॥ ९ ॥
एकरात्रो द्विरात्र सद्य क्री प्रक्रीरुक्थ्य· ।
ओत निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥

उच्छिष्ट मे पृथ्वी आदि समस्त लोक व्याप्त हैं, उसी मे इन्द्र और अग्नि स्थित है और उसी उच्छिष्ट के मध्य परमात्मा द्वारा समस्त सृष्टि को स्थापित किया हुआ है ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी उस उच्छिष्ट मे आहित है तथा इनके समस्त निवासी भी इसी उच्छिष्ट मे समाए हुए है। जल समुद्र चन्द्रमा और वायु यह सभी देवगण उसी उच्छिष्ट रूप परमात्मा मे निहित हैं ॥ २ ॥

सत और असत तथा इनसे सवधित मृत्यु देवता, उनका वल तथा उनके रचियिता प्रजापति, लोको में निवास करने वाली प्रजायें वरुण देव और अमरत्व से युक्त सोम, यह सभी उस वचे हुए ओदन के आश्रय रूप स्थित हैं। उसी के प्रभाव से सम्पत्ति मेरे आश्रित हो ॥ ३ ॥

पुष्ट देहधारी देवता, स्थिर लोक और वहाँ के निवासी, विश्व के कारण रूप ब्रह्म विश्व रचियिता नवम ब्रह्म और

उनका भी रचियिता दसम ब्रह्म इस उच्छिष्ट्र के उसी भांति आश्रित रहते हैं जैसे रथ चक्र की नाभि सब ओर से आश्रय-रूप होकर रहती है ॥ ४ ॥

उद्गीथ, प्रस्तुत, स्तुत और हिं ध्वनि युक्त ऋक साम और यजुर्वेद के मंत्र उच्छिष्ट्र रूप ब्रह्म में आहित है ॥ ५ ॥

इन्द्राग्नि की स्तुति वाला स्तोत्र सोम का स्तोत्र, महा-नाम्नी ऋचाएँ, महाव्रत यज्ञ के यह अंग माता के गर्भ में स्थित जीव के समान इसी उच्छिष्ट्र में समाहित हैं ॥ ६ ॥

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर अर्क एवं अश्वमेध और जीव वर्हि यह समस्त प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट्र में ही व्याप्त हैं ॥ ७ ॥

, अग्न्याधेय, दीक्षा उत्सव यज्ञ और सोमयाज्ञात्मक सत्र यह सब ओदन रूप उच्छिष्ट्र के ही आश्रित है ॥ ८ ॥

अग्नि होत्र श्रद्धा, वषटकार व्रत, तप दक्षिणा और अभीष्ट पूर्ति, यह सभी उस उच्छिष्ट्र में व्याप्त हैं ॥ ९ ॥

एक रात्रि और दो रात्रियों में होने वाला सोम यज्ञ राद्याक्री प्रकी और उक्थ यह सभी उच्छिष्ट्र में बंधे हुए यज्ञ के सूक्ष्म रूपों सहित ब्रह्म के ही आश्रय में स्थित है ॥ १० ॥

चतूरात्र पञ्चरात्र षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११
प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥
सूनता सनतिः क्षेम स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्च कामा कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥
नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।

आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥
उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥
पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसो पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥
ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥
समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥
चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥
अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीराप: स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥

चतुरात्र, पंचरात्र, षडरात्र तथा इनके दुगने दिनों वाले षोडशी और सप्तरात्र यज्ञ और सभी अमृतोपम फल प्रदान करने वाले यज्ञ इसी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं ॥ ११ ॥

प्रतिहार निधन विश्वजित, अभिजित, साह्न, अतिरात्र द्वादशाह यह समस्त यज्ञ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सब यज्ञ मुझमे स्थित हों ॥ १२ ॥

सूनृता, सनति, क्षेम, स्वधा, ऊर्जा, अमृत सह, यह सभी चाहने योग्य फल ब्रह्म के आश्रित हैं। यह सभी अभीष्ट फल सहित यजमान को तुष्ट करने वाले है ॥ १३ ॥

नव खडो वाली पृथ्वी, सप्त समुद्र और आकाश उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के ही आश्रित है। सूर्य भी उसी ब्रह्म के आश्रित बन कर दीप्तवान होते है तथा दिवस रात्रि भी उसी के आश्रय मे है। यह सब मुझमे हो ॥ १४ ॥

उपहव्य, विषूवान और अज्ञात यज्ञो को भी यह उच्छिष्ट रूप ब्रह्म धारण करते हैं। वही ओदन ससार का पालन कर्ता तथा यजमान का पिता रूप है ॥ १५ ॥

यह उच्छिष्ट अपने उत्पत्ति कर्ता को अन्य लोक मे दिव्य लोक प्राप्त कराने वाला होने के कारण उसका पिता है। यही ओदन प्राण का पौत्र रूप है परन्तु अन्य लोको मे प्राण का पिता मह हैं। अत वह उच्छिष्ट सब का स्वामी है तथा काम्यवर्षक बन पृथ्वी पर निवास करता है ॥ १६ ॥

ऋत सत्य तप राष्ट्र श्रम धर्म कर्म भूत भविष्य वीर्य लक्ष्मी ओर बल यह सब उस उच्छिष्टात्मक ब्रह्म के आश्रय में रहते हैं ॥ १७ ॥

समृद्धि ओज, आकूति, क्षात्र तेज, राष्ट्र सवत्सर और छ उर्वियाँ, यह सभी मेरे रक्षक हो। इडा प्रैष, ग्रह हवि यह सभी उस उच्छिष्ट के आश्रित हैं ॥ १८ ॥

चतुर्होता, आप्रिय, चतुर्मासात्मक, विश्वेदेवा, यह सभी उच्छिष्ट माण ब्रह्म मे समाहित हैं ॥ १९ ॥

आर्धमाह, मास, ऋतुऐ आर्तव, ध्वनिशील जल, पोषयुक्त मेघ पृथ्वी यह सभी उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के ही आश्रित है ॥ २० ॥

शर्करा सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे सश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥
राद्धि प्राप्ति समाप्तिर्व्याप्तिमह एधतुः।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥
यच्च प्राणाति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित: ॥ २४ ॥

प्राणोपानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥

आनन्दा मोदा प्रमुदोऽभी मोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित: ॥ २६ ॥

देवा पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रित. ॥ २७ ॥

सर्कस, सिकता, पाषाण औषधि, लता तृण मेघ विद्युत और सभी समवते पदार्थ उसी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म के आश्रित हैं ॥ २१ ॥

राद्धि प्राप्ति, समाप्ति व्यप्ति, तेज, अभिवृद्धि समृद्धि अत्याप्ति यह सभी उच्छिष्य माण ब्रह्म मे आश्रित हैं ॥ २२ ॥

प्राणधारी जीव, नेत्रो से देखने वाले प्राणी, स्वर्ग के देवता, पृथ्वी के देवता, यह सभी उस उच्छिष्ट रूप ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २३ ॥

ऋक, साम छन्द पुराण यजुर्वेद, आकाश के देवता यह सभी उस उच्छिष्यमाण ब्रह्म से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥

प्राण, अपान, चक्षु, कान, अक्षय और दिव्य लोक के सभी देवता उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥

आनन्द मोद, प्रमोद अभिमोदमुद और स्वर्ग स्थित देवता, यह सभी उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं ॥ २६ ॥

देवता, पितर मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा और स्वर्ग के सब देवता इस उच्छिष्ट से ही प्रादुर्भूत हुए ॥ २७ ॥

८ सूक्त

(ऋषि—कौरुपथिः। देवता— मन्यु अध्यात्मम्। छन्द—अनुष्टुप्, पक्ति)।

यन्मन्युर्जायामावहत सकल्पस्य गृहादधि।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्॥ १॥
तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत्॥ २॥
दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्ष स वा अद्य महद् वदेत्। ३॥
प्राणापानौ चक्षु श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन्॥ ४॥
आजाता आसन्नृत-ोऽथो धाता बृहस्पतिः।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि क ते ज्येष्ठमुपासत॥ ५॥
तपश्चै वास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत॥ ६॥
येत् आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदु।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित्॥ ७॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत॥ ८॥
इन्द्रादिन्द्र सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत॥ ९॥
ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते॥ १०॥

मन्यु ने सकल्प के घर से जाया का वरण किया। उससे पूर्व सृष्टि न होने के कारण वर पक्ष तथा कन्या पक्ष कौन थे?

कन्या का विवाह रचाने वाले वराती कौन थे तथा उद्वाहक कौन था ? ॥ १ ॥

तप और कर्म ही वर पक्ष और कन्या पक्ष वाले थे, यही वराती थे तथा उद्वाहक स्वयं ब्रह्म था ॥ २ ॥

प्रथम दस देव उत्पन्न हुए। जिसने इन देवताओ को स्पष्ट रूप से जान लिया वही ब्रह्म का उपदेश करने का अधिकारी है ॥ ३ ॥

प्राण, अपान नामक वृत्तियाँ, चक्षु कान, अक्षिति क्षिति व्यान उदान वाणी मन आकूति यह सभी इच्छाओं को अभिमुख करके उन्हें पूरा करते हैं। ॥ ४ ॥

सृष्टिकाल में ऋतुऐं न थी। तब इन धाता आदि ने किस बड़े कारण भूत उत्पादक की याचना की ? तप और कर्म ही उपकरण रूप थे। कर्म से तप की उत्पत्ति हुई। अत. वे धाता आदि अपने द्वारा किये हुए महान कर्म की ही अपने उत्पादन के लिए प्रार्थना करते है ॥ ६ ॥

वर्तमान पृथ्वी से पूर्व जो पृथ्वी थी, उसे तपस्या द्वारा सर्वज्ञ ऋषि ही जानते हैं। जो विद्वान विगत युग की पृथ्वी मे स्थित वस्तुओ के नाम से परिचित है, वही इस वर्तमान पृथ्वी को जानने की सामर्थ्य रखता है ॥ ७ ॥

इन्द्र किस निमित्त उत्पन्न हुए ? सोम अग्नि त्वष्टा और धाता की उत्पत्ति का क्या कारण था ? ॥ ८ ॥

विगत काल मे जैसा इन्द्र था, वैसा ही वर्तमान युग मे हुआ है। जसे सोम, अग्नि त्वष्टा और धाता प्राचीन युग मे थे, वैसे ही इस युग मे भी हुए ॥ ९ ॥

जिन अग्नि आदि देवताओ से प्राणापान रूप दस देवता

उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रों को अपना स्थानापन्न बना किस लोक मे निवास करते है ।। १० ।।

यदा केशानस्थि स्नाव मांस मज्जानमाभरत् ।
शरीर कृत्वा पादवन क लोकमनु प्राविशत् ।। ११ ।।
कुत केशान् कुत स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जान को मांस कुत आभरत् ।। १२ ।।
ससिचो नाम ते देवा ये सभारान्त्समभरन् ।
सर्वं ससिच्य मर्त्यं देवा पुरुषमाविशन् ।। १३ ।।
ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्ठीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषि ।। १४ ।।
शिरो हस्तावथो मुख जिह्वा ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् सधा समदधान्मही ।। १५ ।।
तत्तच्छरीरमशयत् सधया सहित महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत ।। १६ ।।
सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधू सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत ।। १७ ।।
यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृह कृत्वा मर्त्यं देवा पुरुषमाविशन् ।। १८ ।।
स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवता ।
जरा खालत्य पालित्य शरीरमनु प्राविशन् ।। १९ ।।
स्तेय दुष्कृत वृजिन सत्य यज्ञो यशो बृहत् ।
बल च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ।। २० ।।

सृष्टि रचना काल में जब परमात्मा ने केश अस्थि, नसें मांस तथा मज्जा को एकत्रित किया तो उनसे शरीर का निर्माण कर उसने किस लोक मे प्रवेश किया ? ।।११।।

किस उपादान मे केश सचित कि ? स्नायु कहाँ मे उत्पन्न किया ? अस्थियाँ कहा से एकत्रित की तथा मज्जा और मांस कहाँ से प्राप्त किया ? यह सब कुछ स्वय अपने से ही प्राप्त किया गया, ऐसा और दूसरा कौन कर सकता है ? ॥ १२ ॥

समिच नामक देवता मरण शील देह को रक्त मे डुबो कर उसे पुरुष का आकार प्रदान कर स्वय उसी मे प्रविष्ट हो गये ॥ १३ ॥

घुटनो पर वर्तमान जघाऐ, घुटनो के नीचे पाँव जांघो और पांवो के बीच घुटने, शिर हाथ मुख वर्जह्य पसनियाँ और पीठ इन सबको आपस मे किसने सयुक्त किया ? ॥ १४ ॥

शिर हाथ, मुख जीभ कण्ठ और अस्थियो को चर्म से आच्छादित कर देवताओ ने अपने अपने कर्म मे प्रवृत्त किया ॥ १५ ॥

सघात्री देव के द्वारा जिसके शरीरांग इस प्रकार सयुक्त हैं, वह शरीरो मे दर्तमान हैं वह शरीर जिस काले गोरे रग से युक्त हैं, उसमे किस देवता ने वर्ण की उत्पत्ति की ? ॥ १६ ॥

इस देह से सभी देवताओ को प्रेम है, अत वधू रूप आद्या ने देवताओ की इस कामना को जानकर छ कोश देह मे पीत गोर आदि वर्णों की स्थापना की ॥ १७ ॥

इस सृष्टि के रचने वाले ने जब नेत्र कान आदि छेदो का निर्माण किया तब त्वष्टा के द्वारा बहुत से छिद्र युक्त पुरुष [शरीर को गृह बनाकर प्राण अपान और इन्द्रिय ने प्रवेश] किया ॥ १८ ॥

स्वप्न निद्रा आलस्य, निऋंति, पाप इस पुरुष शरीर में घुस गये और आयु नाशक जरा चक्षु, मन खालित्य पालित्य आदि दर्पशील देवता भी उसमे प्रविष्ट हो गये ॥ १९ ॥

चोरी दुष्ट कर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, गौरव, पराक्रम, क्षात्र धर्म और ओज भी मानव शरीर मे प्रविष्ट हो गये ।। २० ।।

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ।। २१ ।।
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ।। २२ ।।
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ।। २३ ।।
आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ।। २४ ।।
आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ।। २५ ।।
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ।। २६ ।।
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ।। २७ ।।
आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ।। २८ ।।
अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ।। २९ ।।
या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ।। ३० ।।
सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ।। ३१ ।।
तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठइवासते ।। ३   ।।

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अदएकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ।। ३३ ।।
अप्सु स्तीमा वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ।। ३४ ।।

उन्नति, अवनति, मित्र, शत्रु, क्षुधा, तृषा आदि सब इस मानव शरीर मे प्रविष्ट हो गये ।। २१ ।।

निंदा, अनिंदा, आनन्ददायक वस्तु, आनन्द विहीन वस्तु, विश्वास, धन, समृद्धि, दक्षिणा, अविश्वास आदि भी मनुष्य देह मे घुस गये ।। २२ ।।

विद्या, अविद्या, उपदेश्य, ऋक साम यजुर्वेद आदि सबने इस मनुष्य देह मे प्रवेश किया ।। २३ ।।

हर्ष, आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य शब्द स्पर्श विष, नतन भी मानव देह में घुस गये ।। २४ ।।

आलाप, प्रलाप अभिलाप, आयोजन, प्रयोजन, योजन, इन सभी ने मानव देह में प्रवेश किया ।। २५ ।।

प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र, अक्षिति, क्षिति, व्यान, उदान मन वाणी यह सभी मानव शरीर मे प्रविष्ट हो अपने अपने कार्यों मे रत होते हैं ।। २६ ।।

आशिष, प्राशिष, शासन तथा मन की समस्त वृत्तियो ने मनुष्य देह मे प्रवेश किया ।। २७ ।।

स्नान जल, प्राण पालक जल, त्वरण जल, अल्पजल, गुहास्थित जल, वीर्य रूपी जल, स्थूल जल और सब के प्रयोग मे आने वाला जल-सभी अपने कर्म सहित मानव शरीर मे घुसे ।। २८ ।।

प्राणियो को अस्थियो की समिन्धन साधन बनाकर इन

अष्ट भाति के जलो ने शरीर में प्रवेश किया और उसमें वीर्य-रूप घृत को उत्पन्न किया। इस प्रकार इन्द्रियो और उसके स्वामी देवताओ ने मानव शरीर मे प्रवेश किया ॥ २९ ॥

पूर्वोक्त जल, इन्द्र विराट देवता ब्रह्मतेज युक्त देवता देह मे प्रविष्ट हुए, तत्पश्चात ससार के कारण भूत ब्रह्म भी दर्शनीय रूप से प्रविष्ट हुए। उस शरीर मे पुत्र आदि उत्पन्न करने वाला जीव स्थित रहता है ॥ ३० ॥

सूर्य ने नेत्रो तथा वायु ने घ्राणेन्द्रिय को स्वीकार किया और इसके छः कोश वाले शरीर को सब देवता अग्नि को भाग रूप मे प्रदान करते हैं ॥ ३१ ॥

अत ज्ञानी पुरुष शरीर को भीतर बाहर व्याप्त होकर ब्रह्म ही मानता है क्यो कि समस्त देवता इस शरीर मे उसी भांति रहते हैं। जैसे गौऐ गोष्ठ मे रहती है ॥ ३२ ॥

प्रथम उत्पन्न शरीर के पतन पर यह त्यक्त देहआत्मा तीन प्रकार से नियमो मे बध जाता है। पुण्य से स्वर्ग और पाप से नरक की प्राप्ति तथा पाप पुण्य दोनो के योग से इस पृथ्वी मे उत्पन्न होकर सुख दुख रूप भोगो को भोगता है। ३३ ॥

शुष्क जगत को सिंचित करने वाले प्रवृद्ध जलो मे ब्रह्माण्ड सबधी देह स्थित है। उसके भीतर और ऊपर ईश्वर स्थित है। वह देह से अधिक होने के कारण सूत्रात्मा कहाता है ॥ ३४ ।

९ सूक्त (पाचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—काङ्कयनः। देवता—अर्बुद । छन्दः शक्वरी, अनुष्टुप्, उष्णिक्, जगती, पक्ति, त्रिष्टुप, गायत्री)

ते वाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।

असीन् परशूनायुध चित्ताकूत च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो शे कुरुदाराश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥
उत्तिष्ठत स नह्यध्व मित्रा देवजना यूयम् ।
सदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥
उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥
अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्या महं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेना भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥
सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥
प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥
संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती ।
पतिं भ्रातरमात् स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥
अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ ९ ॥
अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥

हमारे शूर वीरो के हाथ जो शस्त्र उठाने में भली भाँति समर्थ हैं वे खड्ग फरसा धनुष बाण आदि धारण किये हुए हैं। हे अर्बुद ! तू उन्हे हमारे शत्रुओ को दिखा जिससे वे डर जांय ॥ १ ॥

हे देवगणो ! तुम हमारे लिए विजय शील बनो एव युद्ध के लिए तत्पर हो जाओ। तुम्हारे सरक्षण मे हमारे सब वीर भली भाँति रक्षित रहें ॥ २ ॥

हे अर्बुदे ! तुम और न्यर्बुदि दोनो अपने स्थान को छोडकर युद्धरत हो और आदान-सदास नामक रज्जुओ से शत्रु सेना को अपने अधीन करो ॥ ३ ॥

अर्बुदि और न्यर्बुदि नामक सर्प देवताओ से समस्त ससार व्याप्त है। उन्होने अपने शरीर द्वारा समस्त विश्व एव पृथ्वी को आबद्ध कर रखा है। यह दोनो देव युद्ध विजय के कार्य में सर्वदा रत रहते हैं ॥ ४ ॥

इन महान अर्बुदि और न्यर्बुदि द्वारा मैं अपनी सेना सहित विजित शत्रु के बल पर आक्रमण करूँगा। हे अर्बुदे ! तुम अपनी सेना लेकर शत्रु वाहिनी को विनष्ट करते हुए अपनी सर्प देह से लपेट लो ॥ ५ ॥

हे न्यर्बुदि नामक सर्प देव ! तुम दृष्टि क्षीण करने वाले उत्पातो को शत्रु पर प्रेषित करते हुए हविर्दान के पश्चात हमारी वाहिनी सहित उठ पडो ॥ ६ ॥

हे अर्बुदे ! जब तुम मेरे विपक्षी को डस कर मार डालो ! तत्पश्चात उसकी ओर मुह करके उसकी स्त्री अपने वक्ष को पीटती तथा रोदन करती हुई आभूषण उतार कर केशो को खोलती हुई अश्रुपात करें ॥ ७ ॥

हे अर्बुदे ! काटने के बाद विष का प्रभाव होने पर शत्रु पत्नी हाथ पाँव की हड्डियो को दबा कर करुण पूर्ण शब्द कहे फिर विष को निष्प्रभावी करने के निमित्त पुत्र, भाई आदि किससे कहे, ऐसा ज्ञान उसे न रहे ॥ ८ ॥

हे अर्बुदे! तेरे द्वारा काटे जाने पर हमारे शत्रु के मरण की प्रतीक्षा मे लगे गिद्ध श्येन काक आदि पक्षी उसके मांस को खाकर तुष्ट हो ॥ ९ ॥

हे अर्बुदे! गीदड व्याघ्र मक्खी और मांस के सड़ने पर उत्पन्न होने वाले कृमि शत्रु को तेरे द्वारा डस लेने पर उसके मृतक शरीर पर पहुँच कर तृप्ति को प्राप्त हो ॥ १० ॥

आगृह्णीतं स वृहत प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषा स यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे सव ॥ ११ ॥
उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्स सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्युर्बुदे ॥ १२ ॥
मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥
प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥
श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १५ ॥
खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये । सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥
चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदतः कुम्भमुष्कां असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥
उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राञ्जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

प्रब्लीना मृदितः शयां हतोमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥
तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥

हे न्यर्बुदे एव अर्बुदे ! तुम दोनो शत्रुओ के प्राणो का हरण कर उन्हे जड मूल से नष्ट कर डालो तुम्हारे डस लेने पर शत्रु चीत्कार करें ॥ ११ ॥

हे न्यर्बुदि ! तुम हमारे विपक्षियों को कम्पायमान करो वे अपने स्थान से च्युत होते हुए संतापित हो। उनको डराते हुए उन्हे क्रिया विहीन बना दो ॥ १२ ॥

हे अर्बुदे ! तुम्हारे द्वारा डस लेने पर शत्रु की भुजाऐ विष के प्रभाव से निस्तेज हो जांय। शत्रु अपनी कामनाओ को भूल जाय। उनके पास रथ अश्व गज आदि कुछ भी शेष न रहे ॥ १३ ॥

हे अर्बुदे ! तेरे द्वारा काटे जाने पर शत्रु पत्नियाँ अपना वक्ष पीटती हुई केशो को खोलकर पति विछोह मे रुदन करती हुई अपने पतियो की ओर गमन करे ॥ १४ ॥

हे अर्बुदे ! तुम क्रीडार्थ श्वानों को साथ मे रखने वाली अप्सराओ एवं अपनी माया रूप वाहिनो को शत्रुओ को दिखाओ उल्कागात और विकृताग दैत्यो को हमारे शत्रुओ को दिखाओ ॥ १५ ॥

द्युलोक मे दूर तक विचरण करने वाली माया रूपिणि को शत्रुओ को दिखाओ। अपनी माया से अगोचर यक्ष राक्षस गन्धर्व आदि को शत्रुओ को दिग्दर्शन करा भयभीत करो ॥१६॥

सर्व रूप देवता इतरजन, काले दांत वाले राक्षस घटाण्ड

कोश वाले रक्त से सने मुख वाले राक्षसों को भी अपनी माया द्वारा शत्रुओं को दिग्दर्शन कराओ ॥ १७ ॥

हे अर्बुदे ! तुम शत्रु सेनाओं को विष के प्रभाव से उसे शोकाकुल बनाओ । एवं कम्पित करो । तुम दोनों इन्द्र के सखा हो । हमारे विरोधियों को पराजित करते हुए, हमें विजयी बनाओ ॥ १८ ॥

हे न्यर्बुदे ! भय से कम्पायमान हमारा शत्रु अंगों के टूटने पर मृतक हो निद्रा में डूब जाय । अग्नि की धूमशिखा युक्त सेनाएं हमारी वाहिनी के साथ चलें ॥ १९ ॥

हे अर्बुदे ! हमारे शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें छांटकर इन्द्र देव नष्ट कर डालें । उनमें से एक भी जीवित न बचे । २० ॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वतताममित्रान् मोत मित्रिणः ॥ २१ ॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिन ॥ २२ ॥

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रश ॥ २३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितृन् ।
सर्वास्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ २५ ॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पति ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन रदिते अर्बुदे तव ॥२५॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत स नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥

शत्रुओं के शरीर से अन्तःकरण और प्राण वायु अलग हो। भय के कारण वे सूख जाँय। हमारे सहयोगियो को यह भय मिश्रित सूखा प्राप्त न हो ॥ २१ ॥

वीर, कायर युद्धसे भागने वाले कर्त्तव्य विमूढ जो सैनिक हमारे पक्ष मे है, उन्हे हे अर्बुद ! अपनी माया से शत्रुओ को हराने मे आगे करो ॥ २२ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओ को सब प्रकार से विनष्ट करने का यत्न करो। त्रिसधि नामक देवता और अर्बुद हमारे विपक्षियो को नाना प्रकार से विनष्ट करें ॥ २३ ॥

हे अर्बुदे ! वृक्षो से उत्पन्न वस्तु व्रीहि जो लता गन्धर्व अप्सरायें और पूर्व पुरुषो को हमारे शत्रुओ को दिग्दर्शन कराओ और उन्हे अन्तरिक्ष के उत्पातो को दिखाते हुए डराओ ॥ २४ ॥

हे शत्रुओ ! मरुद्गण तुम्हे दण्ड दें, इन्द्र एव अग्नि तुम पर अपना नियन्त्रण रखें, ब्रह्मणस्पति धाता मित्र प्रजापति अथर्वा अङ्गिरा आदि तुम्हें शिक्षा दें। तुम्हारे द्वारा दशित होने पर इन्द्रादि भी शत्रु को दण्ड देने वाले हो। २५ ॥

हे देवगण ! तुम हमारे सखा रूप हो हमारे शत्रुओ को शिक्षा देने के लिए तत्पर हो तथा इस सग्राम को विजय कर अपने अपने स्थान को प्रतिमुख हो जाओ ॥ २६ ॥

१० सूक्त

(ऋषि— भृग्वङ्गिराः। देवता—त्रिषन्धिः। छन्दः—बृहती, जगती, पक्ति अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, शक्वरी, गायत्री,)

उत्तिष्ठत स न ह्यध्वमुदारा केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

ईशां वो वेदराज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ।। २ ।।
अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ।।३।।
अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ।। ४ ।।
उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।। ५ ।।
शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ।। ६ ।।
धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ।। ७ ।।
अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ।।८।।
यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ।। ९ ।।
बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ।। १० ।।

हे सेनापतियो ! तुम अपनी ध्वजाओं सहित इस युद्ध के निमित्त तत्पर हो जाओ। कवच आदि रक्षा साधनों से युक्त हो संग्राम भूमि के लिए प्रयाण करो। हे देवगणो ! हे राक्षसो ! तुम हमारे शत्रुओं को पीछे हटाते हुए दौड़ो ।। १ ।।

हे शत्रुओ ! त्रिसंधि नामक वज्र का अभिमानी देवता तुम्हारे राज्य को दण्डनीय समझें। हे त्रिसंधे ! तुम अपनी लाल

ध्वजा सहित उठो और अन्तरिक्ष आकाश और पृथ्वी मे उत्पात रूप केतुओ सहित उठो ॥ २ ॥

हे त्रिसधे ! तुम्हारे हृदय मे जो दुष्ट जीव निवास करते हैं, वे हमारे शत्रुओ की कामना करें। वे जीव लौह चोंच, सुई सदृश्य नोक वाली चोंच तथा काटे दार मुख वाले होते हैं। वे मांस, भोजी पक्षी तुम्हारी प्रेरणा पाकर वायु सदृश्य वेग से शत्रुओ पर छा जांय ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! सूर्य को ढक लो त्रिसन्धि देवता की सेना सब प्रकार से मेरे आधीन हो। हम अपने विपक्षियो पर उस सेना की सहायता से विजय प्राप्त करें ॥ ४ ॥

हे अर्बुदे ! अपनी वाहिनी सहित उठो। यह हमारे द्वारा अर्पित आहुति तुम्हें तृप्ति कारक हो। त्रिसधि देव की वाहिनी भी हमारी हवि से तृप्त होती हुई हमारे शत्रुओं का सहार कर डाले ॥ ५ ॥

यह चार पाद वाली गौ वाण रूप होकर शत्रु पर प्रहार करें। हे कृत्या रूप वाली श्वेत पदेन धेनु ! शत्रुओ के प्रति तू साक्षात कृत्या का रूप धारण कर और त्रिसधि देव की वाहिनी भी तेरे इस कर्म में पूर्ण सहायक हो ॥ ६ ॥

मायावी धूऐ से शत्रु सेना की आखें ढक जांय और फिर उनका पतन होने लगे। उनकी सुनने की शक्ति नगाडो के घोष से नष्ट हो। जब त्रिसधि देव शत्रु पराजय की कामना से अपने केतु को रक्त वर्ण का करें तब शत्रु क्रन्दन करने लगे ॥ ७ ॥

शत्रु दल के सहार होने पर आकाश के पक्षी उनका मांस खाने के लिये नीचे उतर कर आवें। गीदड और मक्षिकायें उन पर हमला करे। कच्चे मांस के खाने वाले गिद्ध उन्हे अपनी चोचो और पजो से विदीर्ण कर डलें ॥ ८ ॥

हे वृहस्पते ! तुमने इन्द्र और प्रजापति से जो सधान क्रिया प्राप्त की है, उसके द्वारा मे इस सग्राम मे इन्द्र आदि देव गणो का आह्वान करता हूँ। हे देवगणो ! हमारी सेना को विजयी बनाओ और शत्रु सेना को पराजित करो ॥ ९ ॥

अगिरा पुत्र वृहस्पति तथा अपनी मत्र शक्ति से तेज को प्राप्त हुए अन्य महर्षिगण भी असुर विनाशक हिंसा साधन रूप वज्र की सहायता लेते है ॥ १० ॥

धेनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठत· ।
त्रिषन्धिदेवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥

सर्वाल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिरांगिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥

बृहस्पति रांगिरसो वज्र यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममू सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
सधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषा बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥ १६ ॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपान परिपाण कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥ १७ ॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १६ ॥
शितिपदी स पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥ २० ॥

राक्षसो के उपद्रवो को विनष्ट कर त्रिसंधि देवताओं ने जिस आदित्य को संरक्षण प्रदान किया, वही आदित्य और इन्द्र इन्ही त्रिसंधि देवो के पराक्रम के बल पर स्वर्ग मे निडर होकर रहते हैं। देवता, त्रिसंधि के ओज और पराक्रम की प्राप्ति हेतु सेवा करते हैं ॥ ११ ॥

अंगिरा पुत्र वृहस्पति ने जिस संहार साधन को सोचकर निर्मित किया था इन्द्र आदि देवगणो ने उस प्रषदाज्य यज्ञ द्वारा राक्षसो का विनाश कर सब लोको की प्राप्ति की। १२ ॥

राक्षसो के संहार साधन जिस वज्र को अंगिरा पुत्र वृहस्पति ने निर्मित किया था, हे वृहस्पते ! मैं उसी मंत्राभिषिक्त वज्र की सहायता से शत्रु सेना का संहार करता हूँ । १३ ॥

हवियो को पाने वाले इन्द्र आदि देवता शत्रुओं को जीत कर हमारे समीप पधार रहे हैं। वे शत्रुओं को पराजित करें और हमे विजयी बनायें ॥ १४ ॥

हमारी गृह हवि त्रिसंधि देव को तुष्ट करें। शत्रुओ को पार कर इन्द्र आदि समस्त देव हमारे निकट पधारें। हे देवगण ! हमारी विजय प्राप्ति की प्रतिज्ञा को पूर्ण कराओ। तुमने इसी प्रतिज्ञा द्वारा शत्रुओं को पराजित किया था ॥ १५ ॥

इन्द्र देव इन शत्रुओ की भुजाओ को शस्त्र उठाने योग्य न रखे। वायु इन शत्रुओ द्वारा छोडे गये तीरो के अगले भाग पर पहुँच कर उन्हे निष्प्रभावी करें जिससे वे अपने बाणो को

पुन न चढा पावें। सूर्य इन्हे अन्धा बनावे तथा चन्द्रमा उस पथ को छिपा दे जिससे वे हमारी ओर आने वाले हो ॥ १६ ॥

हे देवगण! शत्रुओ ने यदि पहले से ही मन्त्राभिषित रक्षा साधन रूप कवच धारण कर लिया हो तो तुम उनके मन्त्रो को प्रभावहीन बना दो ॥ १७ ॥

हे त्रिसंधि देव! हमारे सन्मुख खडे इस शत्रु को मास भोजी पिशाच के सन्मुख करो। तुम उस पर अपनी वाहिनी सहित आक्रमण करते हुए शत्रु के मध्य में प्रविष्ट हो जाओ ॥ १८ ॥

हे त्रिसंधे! अपनी माया से अन्धकार उत्पन्न कर शत्रुओ को चहुँ ओर से घेर लो। और प्रषदाज्य के द्वारा इन्हे पीछे धकेल दो। इन शत्रुओ मे से एक भी जिवित न बचे ॥ १९ ॥

हमारे शस्त्रो से आहत शत्रु सेना मे श्वेत पाद वाली गौ कूद पडे। हे न्यर्बुदे! दूर से ही दिखाई पडने वाली शत्रु सेना भ्रमित हो कर्तव्य विमूढ हो जाय ॥ २० ॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरवरम्।
अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥

यश्च कवची यश्चाकवचोमित्रो यश्चाज्मनि।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः।
सर्वास्तां अर्बुदे हताञ्छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे बधानाम्।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

मर्माविध रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७ ॥

हे अर्बुदे ! तुम अपनी माया से हमारे शत्रुओं को कर्त्तव्य विमूढ़ बनाओ । शत्रुओं में जो श्रेष्ठ हैं, उन्हें छाँट छाँट कर नष्ट करो । हमारी सेना द्वारा भी उनका संहार कराओ ॥ २१ ॥

कवच धारी, कवच रहित, नग्न, रथारूढ़, जो भी शत्रु हो, वह पाशों द्वारा बाँधे जाकर चेष्टा हीन हो निद्रा मग्न हो जाँय ॥ २२ ॥

हे अर्बुदे ! कवचधारी, कवचहीन, अनेक रक्षा साधनों से संपन्न हमारे जो शत्रु हैं, वे तुम्हारे द्वारा विनाश को प्राप्त हों और तत्पश्चात उन्हें श्वान और गीदड़ भक्षण कर डालें ॥ २३ ॥

हे अर्बुदे ! रथारूढ़, रथविहीन, अश्वारोही एव अश्व हीन, जो शत्रु हैं, वे सब तुम्हारे अनुग्रह से विनाश को प्राप्त हों और उन्हें गिद्ध आदि मांस भक्षी पक्षी नोच नोच कर खा डाले ॥ २४ ॥

हमारी सेना के समीप आने वाली शत्रु सेना बुरी तरह आहत हो और विनाश को प्राप्त होती हुई कम्पित जन्म को प्राप्त हुआ करे ॥ २५ ॥

हमारी प्रत्यदाज्य आहुति को लौटा कर जो शत्रु हमसे युद्ध करने की अभिलाषा रखता है उसका हृदय हमारे बाणों से विदीर्ण हो तथा वह रुदन करता हुआ पृथ्वी पर गिरे और उसे गिद्ध श्वान गीदड़ आदि भक्षण कर डालें ॥ २६ ॥

जिस प्रषदाज्य हवि को वज्र उत्पन्न करने के निमित्त देवगण सपन्न करते हैं तथा जो हवि कभी निष्प्रभावी नही होती उस हवि से उत्पन्न वज्र द्वारा देवो के स्वामी इन्द्र हमारे विपक्षियो का विनाश करें ॥ २७ ॥

॥ एकादश काण्ड समाप्तम ॥

द्वादश काण्ड

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—भूमि । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पक्ति, अष्टि, शक्वरी, वृहती, अनुष्टुप, गायत्री)

सत्य वृहदृतमुग्र दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ· पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरु लोक पृथिवी न कृणोतु ॥ १ ॥

असबाध मध्यतो मानवानां यस्या उद्वत: प्रवत सम बहु ।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न. प्रथना
राध्यतां न: ॥ २ ॥

यस्या समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्न कृष्टय. संबभूवु: ।
यस्यामिद जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्वपेये दधातु ॥३॥

यस्याश्चतस्र. प्रदिश. पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टय सबभूवु: ।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन ।
गवामश्वाना वयसश्च विष्ठा भग वर्चं पृथिवी नो दधातु ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥
या रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥
यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥ ८ ॥
यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥
यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥

ब्रह्म तपस्या, सत्य, यज्ञ दीक्षा और वृहत् जल पृथ्वी के धारण करती है। ऐसी यह भूत और भवितव्य प्राणियो की पोषण करने वाली पृथ्वी हमको स्थान प्रदान करे ॥ १ ॥

जिस पृथ्वी मे चढाई, उतराई और समतल स्थान है तथा जो अनेक सामर्थ्यों से युक्त औषधियो की धारण कर्ती है, वह पृथ्वी हमे भले प्रकार से प्राप्त हो और हमारी इच्छाओ को पूर्ण करे ॥ २ ॥

समुद्र नदी और जलों से परिपूर्ण पृथ्वी जिसमे कृषि-कार्य तथा अन्न होता है, जिसके फलस्वरूप यह प्राणवान विश्व तुष्टि प्राप्त करता है। वह पृथ्वी हमको फल रूप-रस पैदा होने वाले प्रदेश मे स्थापित करे ॥ ३ ॥

जो पृथ्वी चार दिशाये रखती है तथा जिसमे कृषिकार्य

और अन्न होता है तथा जो प्राणवान विश्व की आश्रयदाता है वह पृथ्वी हमको गौ और अन्न से सपन्न करे ॥ ४ ॥

पूर्वजो द्वारा जिस पृथ्वी पर अनेक कार्य किये गये तथा जिस पृथ्वी पर देवगणो ने असुरो से युद्ध किया, तथा जो पृथ्वी गौ अश्व और पक्षियो को आश्रय स्थल है वह पृथ्वी हमे वर्च और वैभव प्रदान करे ॥ ५ ॥

जो पृथ्वी धनो को धारण करने वाली, ससार की पोषण कर्त्री, सवर्ण को वश मे धारण करने वाली और ससार की आश्रयस्थली है वह वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली पृथ्वी हमको धन प्रदान करे ॥ ६ ॥

जिस पृथ्वी की रक्षा देवगण सदैव सचेष्ट होकर करते हैं वह पृथ्वी हमको सुन्दर एव मधुर धनो तथा तेज से सपन्न करे ॥ ७ ॥

जो पृथ्वी समुद्र मे थी, विद्वजन परिश्रम करते हुए जिस पृथ्वी पर विचरण करते हैं, जिसका हृदय आकाश मे स्थित है, वह अमृतोपम पृथ्वी हमको महान राष्ट्र, पराक्रम, और कान्ति में स्थित करे ॥ ८ ॥

जिस पृथ्वी मे जल समगति से प्रतिक्षण प्रवाहमान रहते हैं, ऐसी भूरि धारा पृथ्वी हमको दुग्धवत सार रूप फल और तेज से युक्त करे ॥ ९ ॥

जिस पृथ्वी को अश्विनीकुमारो ने निर्मित किया विष्णु ने जिस पर विक्रमण किया इन्द्र ने जिसे अपने वश मे करके शत्रु रहित किया। वह पृथ्वी पुत्र को दूध पिलाने वाली माता के समान दूध वत सार रूप जल हमे प्रदान करे ॥ १० ॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रुं कृष्णा रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमि पृथिवीमिन्द्रगुप्ता ।
अजीतोऽहतोअक्षतोऽध्यष्ठा पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

यत् ते मध्य पृथिवि यच्च नभ्य यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवु ।
तासु नो धेह्यभि न पवस्व माता भूमि पुत्रो अह पृथिव्याः ।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्या यस्या यज्ञ तन्वते विश्वकर्माण ।
यस्या मीयन्ते स्वरव पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ।। १३ ।।

यो नो द्वेषत् पृथिवि सः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन ।
त नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ।। १४ ।।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्व चतुष्पद ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृत मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ।। १५ ॥

ता नः प्रजाः स दुह्रता समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ।। १६ ॥

विश्वस्व मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवी धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ।। १७ ॥

महत् सधस्थ महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा ना भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव सदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।। १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्त पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ।। १९ ।।

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व्न्तरिक्षम् ।
अग्निमर्तास इन्धते हव्यवाह घृतप्रियम् ।। २० ।।

हे पृथ्वी तेरे पहाड हिम प्रदेश, और वन हमारे लिए सुखकारी हो। अनेक वर्ण वाली इन्द्रगुप्ता पृथ्वी पर मैं यक्ष्मा रहित एव अपारजेय रूप से सर्वदा प्रतिष्ठित रहूँ ।। ११ ।।

हे पृथ्वी तेरे नाभि प्रदेश से शरीर को पुष्ट करने वाले जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमे मुझे स्थापित करो। मेरी माता भूमि और पिता आकाश हमको पवित्रता प्रदान करते हुए पुष्ट करें।। १२ ।।

जिस पृथ्वी में वेदी निर्मित कर सपूर्ण कर्मों वाले यज्ञ को करते हैं, जिस पृथ्वी पर हवि देने से पूर्व ही यज्ञ स्तम्भ खडे किए जाते हैं, वह समृद्ध पृथ्वी हमे समृद्धि प्रदान करे ।। १३ ।।

हे पृथ्वी ! जो हमारा शत्रु सेना एकत्र कर हमको तेज हीन करता हुआ हमारी हिंसा की कामना करे, तुम उसे हमारे हितार्थ नष्ट कर डालो ।। १४ ।।

हे पृथ्वी ! तुम जन्म धारण करने वाले प्राणी तुम्हारे ऊपर ही विचरण करते हैं। तुम जिन पशुओ और मनुष्यो का पालन करती हो उन्हे सूर्य अपनी किरणो द्वारा जीवन भर वस्तुऐ प्रदान करते हैं। हे पृथ्वी ! वे पचजन भी तुम्हारे ही हैं ।। १५ ।।

सूर्य किरणें हमारे निमित्त प्रजा का और वाणियो का दोहन करें। हे पृथ्वी ! मुझे सुन्दर पदार्थ प्रदान करो ।। १६ ।।

औषधियो को जन्म देने वाली, विश्व की विभूति रूपा धर्म द्वारा आश्रित मगलमयी सुखकारी पृथ्वी पर हम सर्वदा विचरण करें ।। १७ ।।

हे पृथ्वी ! तू महति निवास भूमि है, तेरा वेग और कंपन भी महत्व पूर्ण है। इन्द्र तेरी रक्षा करें। तू हमे सबका प्रिय बना। जैसे सोने को सब प्यार करते हैं उसी भाँति सब हम से प्रेम करें ॥ १८ ।

जल अग्नि को धारण करता है पृथ्वी मे अग्नि है जल मे पुरुष मे और गौ अश्वादि पशुओ मे भी अग्नि रहती है ॥ १९ ॥

स्वर्ग मे अग्नि तपते हैं अन्तरिक्ष मे भी अग्नि है और मृतकशील मनुष्य हव्यवाहु अग्नि को प्रज्वलित करते हैं ।। २० ॥

अग्निवासाः पृथिव्य सितज्ञूरित्वषीमन्त सशित मा कृणोतु ॥२१॥
भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञ हव्यमरकृतम् ।
भूम्यां मनुष्य, जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥
यस्ते गन्ध पृथिवि सबभूव य बिभ्रत्योषधयो यमाप ।
यं गन्धर्वा अप्सरश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं ।
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ।। २३ ॥
यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं सजभ्रुः सूर्याया विवाहे ।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं ।
कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥
यस्ते गन्ध पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचि ।
यो अश्वषु बीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।
कन्यायां वर्चो यद्‌ भूमे तेनास्मा अपि स सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥
शिला भूमिरश्मा पांसु सा भूमिः सधृता धृता ।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकर नमः ॥ २६ ॥

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ।। २७ ।।
उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।। २८ ।।
विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ।। २९ ।।
शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ।। ३० ।।

जिस धूम मे अग्नि है, उस धूम की ज्ञाता पृथ्वी मुझे वर्च युक्त करे ।। २१ ।

पृथ्वी पर यज्ञो मे देवगणो के लिए हवि अर्पित की जाती है, इस पृथ्वी पर मृत्युशील प्राणी अन्न जल से जीवन यापन करते हैं । यह पृथ्वी हमको प्राण और आयु प्रदान करती हुई जरावस्था तक जीवन यापन करने वाला बनावे ।। २२ ।।

हे पृथ्वी ! तेरी जिस गन्ध को औषधि और जल धारण किये हुए है जिसका आनन्द गन्धर्व और अप्सरायें लेती हैं मुझे उसी गन्ध से सुरभित बना । कोई मेरा द्वेषी न हो ।।२३।।

हे पृथ्वी ! अपनी कमल सदृश्य गन्ध से जिसको सूर्या के विवाहोत्सव पर मृत्युशील मानवो ने धारण किया था, मुझे सुरभित कर । मेरा कोई शत्रु न रहे । २४ ।।

हे पृथ्वी ! अपनी उस गन्ध स जो पुरुषो, अश्वो, वीरो मृग हाथी और कन्या मे है, मुझे भी सुरभित करो मेरा वैरी कोई न हो ।। २५ ।।

मैं हिरण्यवक्षा रूप पृथ्वी को नमस्कार करता हूँ जो शिला भूमि पाषाण और धूल आदि रूपो का धारण करने वाली है ।। २६ ।।

वनस्पति उत्पन्न करने वाले वृक्ष जिस धर्म आश्रिता पृथ्वी पर निर्भय खडे होकर औषध आदि के रूप मे सब की सेवा करते हैं, ऐसी पृथ्वी को हम स्तवन करते हैं ॥ २७॥

हम अपने सीधे या वाये पैर से चलते हुए, खडे अथवा बैठे हुए कभी दुखी न हो ॥ २८ ॥

क्षमाशील, परम पवित्र मत्र द्वारा प्रवृद्ध पृथ्वी की स्तुति करता हूँ। हे पृथ्वी ! तू अन्न और बल की धारण कर्त्री है। मैं तुझे घृताहुति अर्पित करता हूँ ॥ २९ ॥

पवित्र जल हमारे शरीर को सीचे, तथा शरीर पर से जाने वाला जल शत्रु को प्राप्त हो। हे पृथ्वी ! मैं अपने शरीर को पवित्रे द्वारा शुद्ध करता हूँ ॥ ३० ॥

यास्ते प्राची प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्य चरते भवन्तु मा नि पप्त भुवने शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यच्छयान पर्यावर्त दक्षिण सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीची यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि । ३४ ॥

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्र तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

यापसर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः ।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।
ब्रह्माणो यस्यामर्चयन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः ।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

हे पृथ्वी ! तुम्हारी पूर्व पश्चिम आदि चारो दिशाऐ मुझे विचरण शक्ति प्रदान करें । मैं इस लोक मे निवास करता हुआ कभी पतित न हूँ ॥ ३१ ॥

हे पृथ्वी ! मेरे पूर्व, पश्चिम्, दक्षिण, उत्तर चारो ओर स्थित रह । मुझे राक्षस प्राप्त न कर सकें तथा भयकर हिंसा से मेरी रक्षा करते हुए मेरे निमित्त कल्याणकारी हो ॥ ३२ ॥

मेरी नेत्र शक्ति जब तक नष्ट न हो, जब तक मैं तुझे सूर्य के समक्ष देखता रहूँ ॥ ३३ ॥

हे पृथ्वी सोते हुए मैं करवट लूँ अथवा सीधा होकर सोऊँ मेरी कोई हिंसा न करे ॥ ३४ ॥

हे पृथ्वी ! मैं तेरे जिस स्थल को खोदूँ, वह शीघ्र ही पहले जैसा होजाय क्यो कि मैं तेरे मर्म को पूर्ण करने मे असमर्थ हूँ ॥ ३५ ॥

हे पृथ्वी ! ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त शिशिर और वसन्त यह छः ऋतु, दिन-रात, वर्ष यह सब हमारे लिए काम्य-वर्षक हों ॥ ३६ ॥

जो पृथ्वी सर्प के हिलने पर कम्पित होती है, विद्युत रूप से अग्नि जिस पृथ्वी में निवास करता है, जिसने वृत्रासुर को त्याग कर इन्द्र का वरण किया था, जो देव द्वेषियो के लिए हितकारी नहीं अपितु सुस्पष्ट वीर्यवान पुरुष के अधीन रहती है ॥ ३७ ॥

जिस पृथ्वी पर ऋक, साम यजुर्वेद के मंत्रो द्वारा देवताओ का पूजन और इन्द्र को सोमपान कराने का कार्य सपन्न होता है। जिस पृथ्वी पर यज्ञ मडप स्थापित किया जाता है तथा जिसमे यूप खडे होते हैं ॥ ३८ ॥

जिस पृथ्वी पर भूतो के निर्माण कर्ता महर्षियो ने सात सत्र वाले ब्रह्मयाग और स्तुतियों द्वारा देवोपासना की थी ॥ ३९ ॥

वह भूमि हमें इच्छित धन प्रदान करे। भाग्य हमारे लिए प्रेरणादायक हो और इन्द्र हमारे परम पूजनीय हो ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमि प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥
यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥
यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥
निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥
यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।
क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्पन्मोप
सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रापापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥
मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा
व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप
बाधयास्मत् ॥ ४९ ॥
ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥

जिस पृथ्वी पर मनुष्य नाचते गाते हैं, जिस पृथ्वी पर युद्ध लड़े जाते हैं, जिस पर कहीं रोना होता है तो कहीं शहनाई भी बजती हैं, वह पृथ्वी मुझे शत्रु रहित करें ॥ ४१ ॥

जिस पृथ्वी पर पाँच कृषियाँ हैं, जिस पृथ्वी पर धन-धान्य उपजते हैं उस वर्षा रूप मेघ से पुष्ट की जाने वाली पृथ्वी को हमारा नमस्कार है ॥ ४२ ॥

देवताओं द्वारा उत्पन्न हिंसक पशु जिस पृथ्वी में अनेक क्रीडा करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को अपने में व्याप्त रखती है, उस पृथ्वी की दिशाओं को प्रजापति हमारे लिए कल्याणकारी बनावें ॥ ४३ ॥

निधियों को धारणकर्ती पृथ्वी हमे निवास मणि एव स्वर्ण आदि प्रदान करे। वह धनदाता हम पर प्रसन्न होकर वरदायिनी बने ।। ४४ ।।

विभिन्न धर्मी एव विभिन्न भाषा भाषी लोगो को निवास प्रदान करने वाली पृथ्वी, स्थिर धेनुवत मेरे निमित्त धन की सहस्रो धाराओ का दोहन करे ।। ४५ ।।

हे पृथ्वी ! तुम पर निवास करने वाले सर्पों का दंश प्यास लगाने वाला होता है। जो विच्छू हैं वे हेमन्त ऋतु मे अपना डंक नीचे किये हुए गुफा मे सोते रहते है वर्षा ऋतु मे आनन्द से विचरण करने वाले यह जीव मेरे निकट न आवे । मेरे निकट कल्याणकारी जीव ही आवे उनसे मुझे सुख मिले ।। ४६ ।।

हे पृथ्वी ! मनुष्यो और रथादि के चलने के मार्ग हैं, उन मार्गों पर पुण्यात्मा और दुष्टजन सभी चलते है। जो चोर और शत्रुओ से रहित मार्ग हैं, वही मगलमय मार्ग हमे प्राप्त हो। उन्ही के द्वारा तुम हमे सुख प्रदान करो ।। ४७ ।

पापात्मा और धर्मात्मा के शवो को तथा शत्रु को भी धारण करने वाली जिस पृथ्वी को वाराह खोज रहे थे, वह उन वाराह को ही प्राप्त हुई ।। ४८ ।।

जो हिंसक पशु व्याघ्र आदि घूमते है, उनको तथा उल, व्रक, ऋक्षीका और राक्षसो को हमसे पृथक कर बाधा दो ।। ४९ ।।

हे पृथ्वी ! गन्धर्व, अप्सरा राक्षस किमदिन, पिशाच आदि को हमसे पृथक कर ।। ५० ।।

या द्विपादः पक्षिण' सरतन्ति हंसा' सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये
धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम् ।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् ।
पृथिवीं यादजायत ।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा
ऋतस्य ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्य सन्तु पृथिवि प्रसूता. ।
दीर्घं न आयु प्रतिबुध्यमाना वय तुभ्यं बलिहृत. स्याम ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
सविदाना दिवे कवे श्रिया मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥

जिप पृथ्वी पर दो पाद वाले पक्षी हप कौऐ गिद्ध आदि विचरण करते है जिस पृथ्वी पर वायु धूल उडाते और वृक्षो को गिराते है और वायु के तेज होने पर अग्नि भी उनके साथ गमन करते हैं ॥ ५१ ॥

जिस पृथ्वी पर काले और लाल दिन रात सयुक्त रूप से रहते हैं, जो पृथ्वी वर्षा से आवृत होती है, वह पृथ्वी हमको सुन्दर मन से हमारे इच्छित स्थान को प्राप्त करावे ॥ ५२ ॥

द्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष अग्नि सूर्य जल मेघ तथा सब देवताओं ने मुझे विचरण करने की शक्ति प्रदान की है ॥ ५२ ॥

मैं शत्रुतिरस्कारक रूप मे पृथ्वी पर श्रेष्ठ एव प्रख्यात हूँ। मैं शत्रुओं का सन्मुख जाकर दमन करू । मैं प्रत्येक दिशा मे निवास करने वाले शत्रु को अपने अधीन करू ॥ ५४ ॥

हे पृथ्वी ! तुम्हारे व्यापक होने से पूर्व देवगणो ने तुमसे विस्तृत होने को कहा था उस समय भूतो ने तुममे प्रवेश किया, तभी चार दिशाओ का निर्माण हुआ ॥ ५५ ॥

पृथ्वी पर जो ग्राम, जगल और सभाऐ है, जहाँ युद्ध की मत्रणाऐ तथा सग्राम होते है, उन सब मे हम, हे पृथ्वी ! हम तेरी याचना करते है ॥ ५६ ॥

पृथ्वी मे उत्पन्न हुए पदार्थ पृथ्वी मे ही रहते है उन पर अश्व के समान धूल उडाते हैं। यह भूमि मद्रा और इत्वरी है।

तथा वनस्पति और औषधियो के अभय से ससार का पालन करने वाली हैं ॥ ५७ ॥

मैं जो कुछ कहूँ मधुर कहूँ। जिसे देखूँ वह मेरा प्रिय हो। मैं कीर्तिवान और वेगवान हूँ तथा दूसरो की रक्षा करता हुआ, जो मुझे भयभीत करे, उसका सहार कर डालूँ ॥ ५८ ॥

सुखप्रद, अन्न और दूध से युक्त पृथ्वी दुग्ध के समान सार पदार्थ वाली होती हुई मेरे पक्ष मे रहे ॥ ५९ ॥

जिस पृथ्वी को राक्षसो के बन्धन से विश्वकर्मा ने हवि द्वारा युक्त करने की इच्छा व्यक्त की तो गुप्त रहने वाला भुजिष्य पात्र उपयोग के समय दृष्टिगत हुआ ॥ ६० ॥

हे पृथ्वी ! तू काम्यवर्धक है। इस ससार की क्षेत्र रूपा एव व्यापकशील है। तेरे क्षीण होने वाले भाग को प्रजापति पूर्ण करते हैं ॥ ६१ ॥

तेरे द्वीप भी हमारे लिए क्षय रोग से रहित हो। हम दीर्घ आयुष्य होकर तुझे हवि प्रदान करने वाले हो ॥ ६२ ॥

हे पृथ्वी माता ! मुझे कल्याणकारी स्थिति में युक्त करो हे विज्ञ ! मुझे धन और ऐश्वर्य मे प्रतिष्ठित करते हुए स्वर्ग को प्राप्त कराओ ॥ ६३ ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—भृगुः । देवता—अग्नि, मन्त्रोक्ता, मृत्युः । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् पङ्क्ति, जगती, बृहती, गायत्री)

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीस भागधेय त एहि ।
यो गोषु यक्ष्म. पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥

अघशसदु:शंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्म च सर्वं तेनेता मृत्यु च निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्यु निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः ।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ६ ॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे ॥ ७ ॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ८ ॥

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ १० ॥

हे क्रव्याद अग्ने ! तू नड पर आरूढ हो । मनुष्यों तथा गौ मे जो यक्ष्मा है, उनके साथ ही तू यहाँ से पृथक हो । तू अपने भाग्य सीमा पर जा ॥ १ ॥

पाप और कुभावनाओं का विनाश करने वाले कर और अनुकर से मैं यक्ष्मा को अलग करता हूँ तथा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ।२॥

हे अक्रव्याद् अग्ने! हम पाप देवता निर्ऋति और मृत्यु को पृथक करते हैं तथा अपने शत्रुओं को भी दूर भगाते हैं। जो हमारा वैरी है उसे तुम्हारी ओर प्रेषित करते हैं, तुम उनका भक्षण करो ॥ ३ ॥

यदि क्रव्याद् अग्नि अथवा व्याघ्र हमारे गोष्ठ में प्रविष्ट हुआ है तो मैं उसे माष आज्य द्वारा अलग करता हूँ। वह जल-निवासिनी अग्नियों को प्राप्त हो ।४॥

पुरुष की मृत्यु के कारण क्रोधित प्राणियों ने तुम्हें प्रज्वलित किया वह कार्य पूर्ण हो गया, अत तुम्हें तुम से ही प्रज्वलित करते हैं ॥ ५ ॥

हे अग्ने! वसु, ब्राह्मणस्पति ब्रह्मा रुद्र सूर्य और वसुनीति ने तुम्हें रसायुष्य होने के लिए पुनः प्रज्वलित किया था ।६॥

अन्य अग्नियों के दर्शन के लिए यदि क्रव्याद् अग्नि हमारे घर में घुसा है तो पितृयज्ञ करने के लिये मैं उसे पृथक करता हूँ। वह दिव्य आकाश में स्थित होकर घर्म वृद्धि का हेतु बने ॥ ७ ॥

मैं क्रव्याद् अग्नि को पृथक करता हूँ। वह पाप सहित यमस्थान को प्राप्त हो। जातवेदा अग्नि यहाँ स्थित होकर देवगणों के लिए हवि ले जाय ॥ ८ ॥

मैं अपने मंत्र रूप वज्र से क्रव्याद अग्नि को पृथक करता हूँ। गार्हपत्य अग्नि के द्वारा मैं इस अग्नि का शासन करता हूँ। यह पितरों का भाग होता हुआ उनके लोक में स्थित हो॥ ९॥

अघशसदुः शंसाभ्या करेणानुकरेण च ।
यक्ष्म च सर्वं तेनेता मृत्यु च निरजामसि ॥ २ ॥

निरितो मृत्यु निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद् यमु द्विष्मस्तमु ते सुवामसि ॥ ३ ॥

यद्यग्नि क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इम गोष्ठ प्रविवेशान्योका
तं माषाज्य कृत्वा प्र हिणोमि दूर स गच्छत्वप्सुष दोऽप्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धा प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते ।
सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसव पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।
पुनस्त्वा ब्रह्मण पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

यो अग्नि क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जात
त हरामि पितृयज्ञाय दूर स घर्मामिन्धा परमे सधस्थे ।

क्रव्यादमग्नि प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवा
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजान

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् द हन्तं वज्रेण मृ
नि त शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोके ऽ
अस्तु ॥ ६ ॥

क्रव्यादमग्नि शशमानमुक्थ्य प्र हिणोमि पथिभि. पितृ
मा देवयानै पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥ ९

हे क्रव्याद अग्ने ! तू नड पर आरूढ हो । मनुष्
गौ मे जो यक्ष्मा है, उनके साथ ही तू यहाँ से पृथक ह
अपने भाग्य सीमा पर आ ॥ १ ॥

पाप और कुभावनाओ का विनाश करने वाले कर और अनुकर से मैं यक्ष्मा को अलग करता हूँ तथा मृत्यु को भी दूर भगाता हूँ ।। २ ॥

हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम पाप देवता निर्ऋ॑तु और मृत्यु को पृथक करते है तथा अपने शत्रुओ को भी दूर भगाते हैं । जो हमारा वैरी है उसे तुम्हारी ओर प्रेपित करते है, तुम उनका भक्षण करो ।। ३ ।।

यदि क्रव्यद् अग्नि अथवा व्याघ्र हमारे गोष्ठ मे प्रविष्ट हुआ है तो मैं उसे माष आज्य द्वारा अलग करता हूँ । वह जल-निवासिनी अग्नियो को प्राप्त हो । ४ ॥

पुरुष की मृत्यु के कारण क्रोधित प्राणियो ने तुम्हे प्रज्वलित किया वह कार्य पूर्ण हो गया, अत तुम्हे तुम से ही प्रज्वलित करते हैं ।। ५ ।।

हे अग्ने ! वसु, ब्राह्मणस्पति ब्रह्मा रुद्र सूर्य और वसुनीति ने तुम्हे रसायुण्य होने के लिए पुनः प्रज्वलित किया था । ६ ।।

अन्य अग्नियो के दर्शन के लिए यदि क्रव्याद् अग्नि हमारे घर मे घुसा है तो पितृयज्ञ करने के लिये मैं उसे प्रथक करता हूँ । वह दिव्य आकाश मे स्थित होकर घर्म वृद्धि का हेतु बने ।। ७ ।।

मैं क्रव्याद् अग्नि को पृथक करता हूँ । वह पाप सहित यमस्थान को प्राप्त हो । जातवेदा अग्नि यहाँ स्थित होकर देवगणो के लिए हवि ले जाय ।। ८ ।।

मैं अपने मन्त्र रूप वज्र से क्रव्याद अग्नि को पृथक करता हूँ । गार्हपत्य अग्नि के द्वारा मैं इस अग्नि का शासन करता हूँ । यह पितरो का भाग होता हुआ उनके लोक मे स्थित हो ।। ९ ।।

उक्त के प्रशंसक क्रव्याद् अग्नि को मैं पितृयान मार्ग द्वारा प्रेषित करता हूँ। हे क्रव्याद ! तू पितरों में ही प्रवृद्ध हो और वहीं जागता रह। देवयान मार्ग द्वारा पुनः यहाँ न पधारें। १० ॥

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥ ११ ॥
देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥
अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्राण आयूंषि तारिषत् ॥ १३ ॥
संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः ।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद् दूरमनीनशन् ॥ १४ ॥
यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु ।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ १५ ॥
अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा ।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ १६ ॥
यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।
तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥
समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।
अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥
सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत् ।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे ।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः ॥ २० ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले अग्नि देश शोधन हेतु शवभक्षक अग्नि को प्रज्वलित करते हैं तब यह अपने पाप का त्याग करता हुआ गमन करता है। उसे यह पवित्र अग्नि शुद्ध करते हैं ॥ ११ ॥

शवभक्षक अग्नि स्वयं पाप से मुक्त होते और अमंगल से हमारी रक्षा करते हुए स्वर्ग की ओर प्रयाण करते हैं ॥ १२ ॥

इस शवभक्षक अग्नि द्वारा हम अपने पापो का विमोचन करते हैं। हम पवित्र हो गये, अत अब यह अग्नि हमको पूर्ण आयु प्रदान करें। १३ ॥

सकसूक, विकसुक, निर्ऋथ और निस्वर अग्नि यक्ष्मा के साथ ही दूरस्थ प्रयाण कर गये और वहाँ जाकर विनाश को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥

जो क्रव्याद् अग्नि हमारे अश्व गौ आदि पशुओ तथा पुत्र पौत्रादि मे प्रविष्ट हुआ है। उसे हम पृथक करते हैं ॥ १५ ॥

जो क्रव्याद् जीवन-क्रम को नष्ट भ्रष्ट करने वाले हैं, उसे हम मंत्र शक्ति से पृथक करते हैं। हे क्रव्याद् अग्ने ! हम तुझे मनुष्यो और पशुओं से दूर भगाते हैं ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! जिसके द्वारा देवता और मनुष्य पवित्र होते हैं उनके द्वारा तू भी पवित्र होकर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर ॥ १७ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम हमसे पृथक न होओ। तुम भली भाँति प्रकाशित हो रहे हो। तुम हमे सूर्य के चिरकाल पर्यन्त दर्शन कराने के निमित्त प्रज्वलित रहो ॥ १८ ॥

हे पुरुषो ! शिर रोग को सीसे में, नड नामक घास मे, मकसुक मे और भेड तथा स्त्री मे भी शुद्ध करो ॥ १९ ॥

हे पुरुषो ! शिर पीडा को तकिऐ मे स्थित करो, मल को सीसे मे और काली भेड मे पवित्र करके स्वय भी पवित्र होओ ॥ २० ॥

पर मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एव इतर देवयानात् ।
चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा वहवो भवन्तु ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मृतैरावबृत्रन्नभूद भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २२ ॥

इम जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गदापरो अर्थमेतम् ।
शत जीवन्त शरद पुरूचीस्तिरो मृत्यु दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥

आ रोहतायुर्जरस वृणाना अनूपूर्वं यतमाना यदिस्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्व वीरयध्व प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम् ।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान ॥ २७ ॥

वैश्वदेवीं वर्च सआ रभध्वं शुद्धा भवन्त शचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शत हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥ २८ ॥

उदीचीनैं पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान् परेभि ।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्यु प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥ २९ ॥

मृत्यो पदं योपयन्त एत द्राघीय आयु प्रतर दधानाः ।
आसीना मृत्यु नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ॥३०॥

हे मृत्यो ! तू देवयान मार्ग को छोडकर अन्य मार्ग से जा। तू दर्शन एव श्रवण शक्तियो से सपन्न है तो सुनले कि यहाँ हमारे अनेको वीर पुत्रादि रहेगे ॥ २१ ॥

यह प्राणी मृत्यु भँहगाने वाली शक्ति से सपन्न हो गये। हम श्रेष्ठ शूर वीरो से युक्त हो, नृत्य गायन एव हास्य मे सलग्न है। हम यज्ञ का यशोगान करते हुए कहते है कि देवगणो का हवि अर्पित करना आज मगलमय हो गया ॥ २२ ॥

हे मनुष्यो तुम पाषाण से अपनी मृत्यु का दमन करो। मैं तुम्हे जो रक्षा साधन रूप कवच देता हूँ, उसे कोई दूसरा प्राप्त न कर सके। तुम शतायुष्य हो। २३ ॥

हे मनुष्यो ! तुम जरावस्था तक जीवन यापन करने की कामना करो। तुम श्रेष्ठ जन्म वाले और समान प्रीति वाले हो। तुम्हें दीर्घजीवन यापन के निमित्त त्वष्टा देव पूर्ण आयु प्रदान करें ॥ २४ ॥

जैसे ऋतुऐ क्रमानुसार आती हैं, जैसे दिवस एक के बाद दूसरा आता है, जैसे नूतन पूर्व का त्याग नही करता, उसी भाँति हे धाता ! इन्हें दीर्घायु बनाओ ॥ २५ ॥

हे मित्रो ! यह पाषाण युक्त नदी दिखाई पड रही है, इसे वीरता पूर्वक लाँघ जाओ और अपने दुष्कर्मो को इसी मे छोड दो। तत्पश्चात हम रोग विनाशक वेगो से मुक्त हो ॥ २६ ॥

हे मित्रो ! यह पाषाण युक्त नदी शब्द ध्वनि कर रही है उठो और पार करो तथा अपने दुष्कर्मो को इसी मे डाल दो। हम इसके मगल दायक और सुखद वेगो से पार हो ॥ २७ ॥

हे शोधक अग्नियो ! पवित्र होते समय समस्त देवगणो

की स्तुति करो। ऋग्वेद की ऋचाओ से पाप मुक्त होते हुए हम सौ हेमन्तो तक पुत्रादि सहित प्रसन्नता पूर्वक जीवन यापान करें ।२८॥

वायु से पूर्ण उत्तरायण मार्ग मे परलोक गमन की इच्छा से जाने वाले ऋषियो ने नीच मनुष्यो को पार किया था । उन्होने मृत्यु को भी इक्कीस बार पैरो द्वारा लांघा था ॥ २९ ॥

मृत्यु के लक्ष्य को भ्रष्ट करने में समर्थ ऋषिगण आयु से परिपूर्ण हैं । तुमभी इस मृत्यु को दूर करो । फिर हम जीवित रहते हुए लोक में यज्ञ का यशोगान करे ॥ ३० ॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा स स्पृशन्ताम् ।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ३१ ॥
व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा
समिमान्त्सृजामि ॥ ३२ ॥
यो नो अग्निः पितरो हृत्स्वन्तराविवेशामृतो मर्त्येषु ।
मय्यहं त परि गृह्णामि देव मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं
तम् ॥ ३३ ॥
अपावृत्य गार्हपत्यात क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।
प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् ॥ ३४ ॥
द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः ॥ ३५ ।
यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥ ३६ ॥
अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् य क्रव्यादनुवर्त्तते ॥ ३७ ॥

म्हुर्गृध्ये प्र वदत्यार्ति मर्त्यो नीत्य ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ३८ ॥
ग्राह्या गृहा सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।
ब्रह्मैव विद्वानेष्योयः क्रव्याद निरादधत् ॥ ३९ ॥
यद् रिप्र शमल चकृम यच्च दुष्कृतम् ।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः सकसुकाच्च यत् ॥ ४० ।

यह नारियाँ श्रेष्ठ स्वामियो को प्राप्त करें तथा विधवा न हो। ये अश्रु विहीन हो और घृत से सपन्न हो। यह सुन्दर आभूपणो को धारण करने वाली हो तथा सतान उत्पन्न करने के निमित्त मनुष्य योनि मे ही रहे ॥ ३१ ॥

मैं इन दोनों को मत्र बल के द्वारा सामर्थ्य प्रदान करता हूँ। पितरो की स्वधा को क्षीणता रहित करता हुआ इन्हे दीर्घायुग्य बनाता हूँ ॥ ३२ ॥

हे पितरो ! हमारे हृदय में अक्षय फल का दाता अग्नि निवास करता है। वह हमारा वैरी न हो। हम भी उसके प्रति शत्रुभाव न रखें ॥ ३३ ॥

हे प्राणियो ! मन्त्रो द्वारा गार्हपत्य अग्नि से अलग रहो और क्रव्य द् अग्नि से दक्षिण दिशा को प्राप्त होओ। वहाँ अपने और पितरो के निमित्त प्रिय कार्य ही करो ॥ ३४ ॥

जो पुरुप क्रव्याद् अग्नि का सेवन नही छोड़ता, वह अपने ज्येष्ठ पुत्र के तथा अपने धन सहित विनाश को प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

जो पुरुप क्रव्याद् अग्नि का सेवन करना नही छोडता, उसकी खेती, सेवनीय वस्तुएं तथा अन्य सभी मूल्यवान वस्तुएं जो भी उसके पास होवे न होने के बराबर हो जाती है ॥ ३६ ॥

जो पुरुष क्रव्याद् अग्नि का प्रयोग करना नहीं छोड़ता, उसे यज्ञ करने का अधिकार नही है, उसका वर्च नष्ट हो जाता है और आह्वान करने पर देवता उसके निकट नही पधारते। क्रव्याद् अग्नि जिसके साथ रहता है, उसे खेती, गौ और वैभव से हीन करता है॥ ३७॥

क्रव्याद अग्नि जिसका साथी होकर उष्णता प्रदान करता है, वह पुरुष महान विपत्तियो का शिकार होता है। उसे आवश्यक वस्तुओ के लिए दीन वाणी मे बार बार याचना करनी पड़ती है॥ ३८॥

जो क्रव्याद् अग्नि को पूर्ण रूपेण स्वीकार करता है उसके लिए गृह कारागार वत बन जाता है और स्त्री का स्वामी मृत्यु को प्राप्त होता है। उस समय विद्वान के आदेश का पालन करना चाहिए॥ ३९॥

जो पाप हम कर चुके हैं, उस पाप से और शवभक्षक अग्नि के स्पर्श दोष से जल मुझे पवित्र करें॥ ४०॥

ता ऊध्वरावुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरित पुराणीः॥ ४१॥

अग्ने अक्रव्याग्निष्क्रव्याद नुदा देवयजन वह॥ ४२॥

इम क्रव्यादा विवेशाय क्रव्यादमन्वगात्।
व्याघ्रौ कृत्वा नानान त हरामि शिवापर[illegible]

अन्तर्धिर्देव ना परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गा[illegible]
उभयानन्तरा श्रित॥ ४४॥

जीवानामायु प्रतिर त्वमग्ने पितृणा लोक[illegible]
सुगार्हं त्यो वितपन्नरातिमुषामुषा श्रेयस[illegible]
सर्वा अग्ने सहमान सपत्नान्[illegible]

इममिन्द्र वन्हि पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥
अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात् ।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥
अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः ।
ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा ।
क्रव्याद् यानग्निरन्ति बादश्व इवानुवपते नडम् ॥ ५० ॥

जो जल देवयान मार्गों से दक्षिण से उत्तर की ओर व्याप्त होते है तथा नूतन रूप धारण कर वृष्टि रूप मे पहाड़ो पर नदी रूप धारण कर लेते हैं ॥ ४१ ॥

हे अक्रव्याद् एव गार्हपत्य अग्ने ! तुम क्रव्याद् अग्नि को हमसे पृथक करो एव देवोपासना की सामग्री को देवगणो तक पहुँचाओ ॥ ४२ ॥

इस पुरुष ने क्रव्याद् को आत्मसातकर उसी का अनुगामी हो गया है। मेरी समझ से यह दोनो कर्म व्याघ्र कर्म के समान हैं। इस अशुभ क्रव्याद् अग्नि को मैं दूर करता हूँ ॥ ४३ ॥

देवताओ की अन्तर्धि और मनुष्यो की परिधि रूप गार्हपत्य अग्नि देवताओ और मनुष्यों के मध्यस्थ है ॥ ४४ ॥

हे अग्ने ! जीवित प्राणियो की आयु वृद्धि करो। मृतको को पितर लोक प्रेषित करो। गार्हपत्य अग्नि हमारे शत्रुओ को जलावे। हे गार्हपत्य अग्ने ! कल्याणकारी उषा की हममे स्थापना करो॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! सब हमारे शत्रुओ को अपने अधीन करते हुए उनके धन और शक्ति की हम मे स्थापना करो ॥ ४६ ॥

इस महिमावान अग्नि की स्तुति करो। यह तुम्हे पापों दोषो से मुक्त करें। उसके द्वारा रुद्र के शर को पृथक् करते हुए अपनी रक्षा करो ॥ ४७ ॥

हवि रूप बोझ को ले जाने वाली नौका के सदृष्य अग्नि की स्तुति करो। वे पाप दोषो से तुम्हे मुक्त करें। सविता की नौका पर आरुढ होकर छः उर्वियो द्वारा अमिति को पार करें ॥ ४८ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम दिन रात के आश्रय रूप होते हुए प्राप्त होते हो। तुम मगलमय होते हुए पुत्र पौत्रादि धन से सपन्न करते हो। तुम्हारी उपासना आसान है। तुम हमे स्वस्थ रखते हुए और प्रसन्नचित्त से पर्यंक पर चढाते हुए दीर्घकाल-तक प्रज्वलित होते रहो ॥ ४९ ॥

जो अश्व द्वारा घास को कुचलने के समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है, ये पाप द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले पुरुष देव यज्ञों के घातक है ॥ ५० ॥

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।
ते वा अन्येषां कुम्भी पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥

अविः कृष्णा भागधेय पशूनां सीस क्रव्यादपि चन्द्र त आहुः ।
माषा पिष्टा भागधेय ते हव्यमरण्यान्या गह्वर सचस्व ॥ ५३ ॥

इषीकां जरतीमिष्ट्वा तिल्पिञ्ज दण्डन नडम् ।
तमिन्द्र इध्म कृत्वा यमस्याग्नि निरादधौ ॥ ५४ ॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां वि ह्याविवेश ।
परामीषामसून् दिदेश दीर्घणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥ ५५ ॥

जो धन की कामना से क्रव्याद् अग्नि की उपासना करते हैं, वे पुरुष सदैव मन्त्रों द्वारा हानि ही उठाते हैं ॥ ५१ ॥

जिस पुरुष के पास आकर क्रव्याद् अग्नि तपता है, वह बार-बार पुनर्जन्म के चक्कर में फंसा रहता है तथा निम्न अधम योनि में जन्म लेता है ॥ ५२ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! काली भेड़ सीसा और चन्द्रमा को विद्वान लोग तेरा भाग कहते हैं और पिसे हुए उड़द भी तेरे हव्य रूप हैं। अतः तू घोर जंगल में चला जा ॥ ५३ ॥

पुरानी सींक दडन, तिल्पिञ्ज और घास को इन्द्र ने ईंधन बनाया और उसके द्वारा यम की इस अग्नि को दूर हटा दिया ॥ ५४ ॥

विद्वान गार्हपत्य अग्नि सूर्य को अर्पित कर, देवयान मार्ग द्वारा प्रविष्ट हुए, और जिनके प्राणों को दिया, मैं उन यजमानों को चिर आयुष्य बनाता हूँ ॥ ५५ ॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—यम । देवता—स्वर्ग, ओदनः, अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्; जगती, पंक्ति, बृहती; धृति)

पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते ।
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये समानम् ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा वाजिनानि ।
अग्निः शरीरं सचते यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ २ ॥

समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥ ३ ॥

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वामिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥ ४ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्तयै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५ ॥

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम् ॥७॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म ।
बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥ १० ॥

हे पुरुषत्ववान ! तू इस पशुचर्म पर आसीन हो और अपने इष्ट बान्धवो को आमन्त्रित कर। पहले जितने स्त्री पुरुषो ने ऐसा किया, उनका और तुम्हारा एक जैसा फल हो ॥ १ ॥

यह अग्नि ही स्वर्ग मे तुम्हारे शरीरो का निर्माण करेगा। उस समय तुम पके हुए ओदन के प्रभाव से इसी रूप से स्वर्ग मे स्थित होगे। तुममे सद्यजात शिशु के समान दर्शन शक्ति और वैसा ही तेज होगा और शब्दात्मक यज्ञ को भी इस प्रकार करने योग्य होगे ॥ २ ॥

ओदन के प्रभाव से इस लोक में तुम दोनों मिलकर रहो, देवयान मार्ग मे तथा यम-राज्य मे भी तुम्हारा साथ न छूटे। 'इन पवित्र यज्ञों द्वारा' तुम शुद्ध हो चुके हो। तुमने जिस कार्य के लिए भी सिंचन किया, उन उन कार्यों का फल भोगो ॥ ३ ॥

हे दम्पत्तियो! वीर्य रूपी जल के तुम पुत्र हो। तुम इस जीवन मे धन्य होते हुए प्रविष्ट होओ। तुम्हारा उत्पादक जल ही ओदन को पकाता है। उसी जल के अमृतोपम अंश का तुम सेवन करो। ४ ॥

माता पिता यदि वाणी दोष या अन्य पाप दोष से मुक्त होने के लिए ओदन पकाते हैं तो वह ओदन अपने प्रभाव से आकाश और पृथ्वी मे व्याप्त होता है ॥ ५ ॥

हे दम्पत्ति द्यावा पृथ्वी मे यजमान जिन लोकों को प्राप्ति करते हैं, उनमे जो दीप्यमान और श्रेष्ठ लोक हैं इस लोक या द्यावा पृथ्वी मे तुम संतान से सपन्न हुए जरावस्था तक जीवन यापन करो ॥ ६ ॥

हे पति-पत्नी! तुम पूर्व की ओर प्रयाण करो जिधर पुण्यात्मा ही चढ पाते हैं। तुमने जो पका हुआ ओदन अग्नि मे रखा है, उसकी रक्षा के निमित्त स्थित रहो ॥ ७ ॥

हे दम्पत्ति! तुम दक्षिण की ओर जाकर इस पात्र की परिक्रमा करते हुए पधारो। उस समय पितरो से सहमत होते हुए यमराज तुम्हारे ओदन के लिए अनेक प्रकार के कल्याण प्रदान करें ॥ ८ ॥

पश्चिम दिशा मे स्वामी और सुखप्रद सोम है, अतः यह दिशा श्रेष्ठ है। इसमे तुम पके हुये ओदन को रखकर पुण्य कर्मों का फल प्राप्त करो। फिर इस पके हुए ओदन के प्रभाव से पृथ्वी और स्वर्ग मे तुम दोनो प्रकट होओ ॥ ९ ॥

श्रेष्ठ उत्तर दिशा जो प्रजाओं से युक्त है हमको श्रेष्ठता प्रदान करे। पक्व स्कन्द ओदन के रूप में प्रकट होता है। हम भी द्यावा पृथ्वी में अपने सभी अंगों सहित प्रकट हों ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववारेर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥१३॥

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम् ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम् ॥ १५ ॥

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम ।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः ॥ १७॥

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु ।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम् ॥१८॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

यह वरणीय, अटल अखंड पृथ्वी जो विराट रूप है हमारे लिए कल्याणकारी हो। यह हमारे पुत्रो का कल्याण करे और नियुक्त पहरेदार के समान यह इस परिपक्क ओदन की रक्षा करे॥ ११॥

हे पृथ्वी! जैसे पिता अपने पुत्र का स्नेहालिंगन करता है उसी भाँति तुम इस ओदन का आलिंगन करो। यहाँ कल्याण कारी वायु प्रवाहित हो। तुम हमारे ओदन को तपाओ और हमारे शुभ सकल्प को जानो॥ १२॥

काक ने धोखे से इसमे छिद्र बनाया हो अथवा दासी ने भीगे हुए हाथ से मूसल उलूखल का स्पर्श किया हो तो यह जल कल्याणकारी हो। १३॥

यह दृढ पाषाण हविधारक है। पवित्रे द्वारा शुद्ध होकर राक्षसो को नष्ट करे। हे ओदन तू चर्म पर आता हुआ शुभकारी हो। इन दम्पति को इनकी सन्तति सहित पाप दोषो न छू पावे। १४॥

वह राक्षसो और पिशाचो का दमन करता हुआ वनस्पति देवताओ' सहित हमको प्राप्त हुआ। वह उच्च घोष वाला हमको समस्त लोकों को जीतने वाला बनावें। १५॥

इन अन्नो में जो पतला परन्तु महा कान्तिवान है ऐसे सात चावलो को पशु के समान लोगो ने ग्रहण किया है। यह तेंतीस देवताओ द्वारा सेवन किया जाता है। यह ओदन हमे स्वर्ग की प्राप्ति करावे॥ १६॥

हे ओदन! तू हमे स्वर्ग लिए जा रहा है वहाँ हम स्त्री-पुरुषों सहित प्रकट हो पाप देवता निर्वृत और शत्रु वहाँ हमको अपने अधीन न करें। इसी कारण तू मेरे साथ ही चल, मैं तेरे कर को थामता हूँ॥ १७॥

हे वनस्पते ! पाप से उत्पन्न शोक रूप अन्धकार का हरण करता हुआ तू मिष्ट भाषण करता है। हम अपने पापो से मुक्त हो। यह वनस्पति देवता मेरी और स्वर्ग लोक प्राप्त कराने वाले ओदन की भी हिंसा न करें ॥ १८ ।

हे ओदन ! तू घृत पृष्ट हुआ परलोक मे हमारे साथ प्रकट होने को हमारे पास पधार और वर्षा ऋतु मे प्रवृद्ध उपकरण वाले सूप को प्राप्त हो। वे तुझसे तुष को दूर करें। तू सबके द्वारा आदर पाने योग्य है॥ १९ ॥

द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष इन तीनो लोको ब्राह्मण द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। हे दम्पत्ति ! चावलो को फटकना प्रारम्भ करो। यह धान भी फटकते हुए सूप को प्राप्त हो ॥ २० ॥

पृथग् रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा ॥ २१ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषां ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥ २२ ॥

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥ २४ ॥

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

आ यन्ति दिव पृथिवी मचन्ते भूम्या सचन्ते जध्यन्तरिक्षम् ।
शद्वा सतोम्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोक
नयन्तु ॥ २६ ॥
उरेव पञ्वीरुत समितास उत शुक्राः शचयश्चामृतास ।
ता ओदन दपतिभ्या प्रशिष्टा आप शिक्षन्ता पचता
सुनाथाः ॥ २७ ॥
सख्या ना स्तोका पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैं समिता ओषधीभिः
असख्याता ओप्यमाना सुवर्णा सर्वं व्यापु शुचय.
शुचित्वम् ॥ २८ ॥
उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति वहुलांश्च बिन्दून् ।
प्रोपेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥ २९ ॥
उत्थापय सीदतो वुध्न एनानद्भिरात्मानमभि स स्पृशन्ताम् ।
अमासि पात्रैरुदक प्रदेतन्मितास्तण्डुला प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ।

तू एक ही रूप आकृति का है जब कि पशु विभिन्न आकृतियो वाले होते हैं। तू पापाण के द्वारा अपनी भूसी को अलग कर ॥ २१ ॥

हे मूसल ! तू पृथ्वी से निर्मित है, अत तू पृथ्वी ही है। पृथ्वी और तेरा शरीर एक जैसा ही है। अत मैं पृथ्वी द्वारा पृथ्वी पर ही प्रहार करता हूँ। हे ओदन ! मूसल से प्रहारित होने से तेरे शरीरांग में जो पीडा होती है, उससे तू तुष से पृथक होकर छूट जा। मैं तुझे मत्र द्वारा अग्नि के समर्पित करता हूँ ॥ २२ ॥

जिस भांति माता अपने पुत्र को प्राप्त करती है, उसी भांति मैं तुझ मूसल रूप पृथ्वी को पृथ्वी से ही युक्त करता हूँ। वेदी मे भी ओखली रूप कुम्भी है अत. दुखी न हो। तू यज्ञ के आयुधो द्वारा घृत से मिलाई जा चुकी है ॥ २३ ॥

अग्नि पाचन कर्म में तेरी सहायता करे इन्द्र पूर्व से, मरुद्गण दक्षिण की ओर से, वरुण पश्चिम से तथा सोम उत्तर दिशा की ओर से तेरी रक्षा करें ।। २४ ।।

पुण्य कर्मों के फलस्वरूप शोधित हुए जल पवित्रकारी हैं। वे मेघ रूप में आकाश मे जाते और फिर पृथ्वी पर आकर मनुष्यो को प्राप्त होते हैं। प्राणी को सुखी करने वाले पात्र में स्थित होते है। अग्नि इन आसिक्त होने वाले जलो को सब ओर के प्रकाशित करें ।। २५ ।।

आकाश से आने वाले यह जल पृथ्वी की सेवा करते हैं और पृथ्वी से पुनः आकाश को लौट जाते है। यह पवित्र जल पवित्रता प्रदान करने वाला है। यह हमको भी दिव्य लोक की प्राप्ति करावे ।। २६ ।।

यह श्वेत वर्ण वाले, दीप्यमान अमृतवत परमात्मा रूप हैं। हे जलो ! इस दम्पत्ति द्वारा डाले जाने पर ओदन को पवित्र करते हुए पकाओ ।। २७ ।।

प्राण अपान वायु के समान स्वल्प औषधियों से युक्त पृथ्वी का सेवन करते हैं और शोभनीय प्राणियो में प्रविष्ट अपार जल शुद्ध करते हुए सब मे व्याप्त होते हैं ।। २८ ।।

तप्त करने पर यह जल ध्वनि उत्पन्न करते, फेन और बूँदो को उड़ाते हुए युद्ध जैसा उपक्रम करते हैं। हे जलो ! जैसे पति को देखकर स्त्री उससे युक्त होती है, वैसे ही तुम ऋतुयाग के निमित्त चावलो से युक्त होओ ।। २९ ।।

हे ओदन की अधिष्ठात्री देवी ! मूसल के नीचे दुःखी होते इन चावलो को उठाओ। यह जल से मिश्रित हो। हे यजमान ! तू जलो को पात्रो द्वारा नाप रहा है। इधर यह

चावल भी नप चुके हैं। इन्हें जल मे मिश्रित करने की आज्ञा प्रदान कर ।। ३० ॥

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरोषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१॥
नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदयश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥
वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः ।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥ ३३ ॥
षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्ने ॥ ३४ ॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दम्पती जीवन्तो जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥
सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान् ।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥ ३६ ॥
उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत् ।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ् कृणोत ॥३७॥
उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः ।
तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥ ३८ ॥
यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः ।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९॥
यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः ।
सर्वांस्तां उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥ ४० ॥

करछुली को चलाओ तथा जो पक चुके हैं, उन्हें ले लो। यह किसी की हिंसा न करते हुए प्रत्येक पर्व पर औपविल्य फल को प्रदान करें। जिन लताओ का राजा सोम है, वे लतायें दुखी करने वाली न हो ॥ ३१ ॥

ओदन के लिए नूतन कुशाऐ बिछा दो। वह कुशासन हृदय और नेत्रो को आकर्षणीय हो देवगण उस पर पंक्ति बद्ध बैठकर ओदन का भक्षण करें ॥ ३२ ॥

हे वनस्पते ! कुशा फैला दिया है, तुम आसीन हो। देवताओ ने तुम्हें अग्निष्टोम के समान समझा है। स्वधिति ने त्वष्टा के समान इसे सुन्दर रूप प्रदान किया है और अब वह पात्रो में दृष्टि गोचर होता है। ३३ ।

इस निधि की रक्षा करने वाला यजमान इस पके हुए ओदन सेवन का फल स्वर्ग साठ वर्ष पश्चात पावे। हे यज्ञ देवता ! इस यजमान को दिव्य लोक को प्राप्ति कराते हुए इसके पितर पुत्र आदि को भी इसके समीप रखो ॥ ३४ ॥

हे ओदन ! तू धारणकर्ता है अतः भूमि के धारक स्थान मे स्थित हो। तुझ अच्युत को देवता च्युत न करें। तुझे तुझे जीवित पुत्रो वाले जीवित दम्पति अग्निधान के द्वारा पुष्ट करें ॥ ३५ ॥

तू सब लोको को विजय करता हुआ पधार। हमारी सभी कामनाओ को पूर्ण करो। दम्पत्ति करछुली को चलाते हुए ओदन को निकाल कर पात्र मे रखें ॥ ३६ ॥

तुम इसे परोसकर फैलाओ तथा इसमे घृत डालो। हे देवगण ! दुग्धपान करने वाले वत्स को देखकर दुग्धप्रद गायें उसके प्रति घोष करती हैं, वैसे ही तुम इस परिपक्व ओदन को देखकर ध्वनि प्रकट करो ॥ ३७ ॥

हे यजमान ! ओदन ओदन परोस कर तूने इस लोक को फल प्रद बना लिया। इसके प्रभाव से यही ओदन तुझे दिव्य लोक मे अधिक बडा होकर प्राप्त हो। हे पति पत्नी ! यह श्रेष्ठ महिमाशाली विचरणशील ओदन तुम्हे स्वर्ग मे स्थान प्राप्त करावें। देवगण इस यजमान को देवताओ के समीप पहुँचावे ॥ ३८ ॥

हे पत्नी ! तू इस ओदन को पकाती है। यदि तू पति से पूर्व स्वर्ग प्राप्त करले तो स्वर्ग मे तुम दोनो मिल लेना। तुम एक ही लोक मे निवास करो और वहाँ यह ओदन भी तुम्हारे साथ हीं रहे ॥ ३९ ॥

इस स्त्री के सब पुत्रो को इस पात्र के समीप बुलाओ। वे बालक अपनी नाभि को जानते हुए यहाँ आवें ॥ ४० ॥

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्ग षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥ ४१ ॥
निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्ग स्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥ ४२ ॥
अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥ ४३ ॥
आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्य निहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४ ॥
इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥ ४५ ॥

यद्क्षेषु वदा यत् समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या ।
समान तन्तुमभि स३सानौ तस्मिन्त्सर्वं शमल सादयाथः ॥ ५२ ॥

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूम पर्युत्पातयासि ।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ॥ ५३ ॥

तन्व स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अपाजैत कृष्णां रुशतीं पूनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते ।
एत परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते ।
एत परि दद्म-त नो गोपायतास्माकमैतो ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह स भवेम ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते ।
एत परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतो ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह स भवेम ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै ।
एत परि दद्म त नो गोपायतास्माकमैतो. ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह स भवेम ॥ ५८ ॥

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र
ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः ।
एत परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतो ।
दिष्ट नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह स भवेम ॥ ५९ ॥

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते ।
एत परि दद्मस्त नो गोपायतास्माकमैतो ।
दिष्ट नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह स भवेम ॥ ६० ॥

यह पशु चर्म से ढके दृष्टिगत होते है, इनकी त्वचा पहले पुरुष पै थी । हे दम्पत्ति ! क्षात्र तेज से तुम अपने को पूर्ण करो और इस ओदन के मुख को वस्त्र से आच्छादित कर दो ॥ ५१ ॥

द्यूत कर्म अथवा युद्ध में धन की कामना से जो तुमने झूँठ बोला है, उस अपने पाप दोष को समान ततुओ से बने वस्त्र द्वारा ढकते हुए उसमे डाल दो ॥ ५२ ॥

तू कामवर्षक हो । तू देवताओं के निकट जाकर अपनी त्वचा को धूम्र के समान उछाल । तू घृत पृष्ठ होते हुए अनेक प्रकार से उपासित होता हुआ, समान उत्पत्ति वाला बनकर इस पुरुष को स्वर्ग मे प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

यह ओदन स्वर्ग मे अपने को अनेक आकार का बना लेने मे समर्थ है । जैसे आत्मा, ज्ञानीजन को अनेक प्रकृति का बना लेता है और कृष्णा रुशती को पवित्र करता जाता है, वैसे ही मैं तेरे रूप का अग्नि मे होम करता हूँ ॥ ५४ ॥

हम तुझे पर्व, दिशा अग्नि असित सर्प और आदित्य को अर्पित करते हैं । तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त

इसकी रक्षा करो। इसे जरावस्था तक हमको भाग्य रूप मे प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग का आनन्द लें ॥ ५५ ॥

हम तुझे दक्षिण दिशा, इन्द्र, तिरश्चिमर्प और यम को देते है। तुम हमारे यहाँ से जाने तक इसकी रक्षा करो। इसे वृद्धावस्था तक भाग्य रूप में हमें प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। इस पके हुए ओदन सहित हम स्वर्ग के आनन्द प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

हम तुझे पश्चिम दिशा, वरुण पृदाकु सप और अन्न को अर्पित करते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसको रक्षा करो। इसे जरावस्था पर्यन्त हमको भाग्य रूप मे प्राप्त कराओ। हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे और मरने पर इस ओदन सहित स्वग मे जाकर कर आनन्द प्राप्त करे ॥ ५७ ॥

हम तुझे उत्तर दिशा सोम, स्वज नामक सर्प और अशनि को अर्पित करते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसकी रक्षा करो। इसे जरावस्था तक सौभाग्य रूप मे हमे प्राप्त कराओ हमारी वृद्धावस्था ही इसे मृत्यु दे। मरणोपरान्त हम इस पके ओदन सहित स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करें। ५८ ॥

हम तुझे ध्रुव विष्णु दिशा, कल्माष ग्रीव सर्प, और इषुमती ओषधियो को देते हैं। तुम हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त इसकी रक्षा करो। इस बुढापे तक सौभाग्य रूप मे हमे प्राप्त कराओ। हमारा बुढापा इसे मृत्यु दे। मरणोपरान्त हम इस परिपक्व ओदन सहित स्वर्ग प्राप्त कर आनन्द भोगें ॥५९॥

हम तुझे ऊर्ध्व दिशा, वृहस्पत्ति, श्वित्र सर्प और इषुमान वप को अर्पित करते हैं। हमारे यहाँ से प्रस्थान करने पर्यन्त

तुम इसकी रक्षा करो। इसे बुढापे तक हमे सौभाग्य रूप मे प्राप्त कराओ। हमारा बुढापा ही इसे मृत्यु प्रदान करे तथा मरने के पश्चात हम इस परिपक्व ओदन सहित स्वर्ग पहुँच कर आनन्द प्राप्त करें ॥ ६० ॥

सूक्त ४ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—कश्यप । देवता - वशा । छन्द – अनुष्टुप्)

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥
प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २ ॥
कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥
विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥
पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥
यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥
यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥
यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥
यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥

जायमानाभि जायते देवान्त्स ब्राह्मणान वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १० ॥

याचना करने वाले ब्राह्मणों को देता हूँ ऐसा कहकर उत्तर दे तत्पश्चात वे ब्राह्मण कहे कि यह कार्य यजमान को सन्तान आदि से पूर्ण करें ॥ १ ॥

जो व्यक्ति ऋषि आदि युक्त याचित ब्राह्मणों को देवताओं के निमित्त गोदान नहीं करता वह अपनी सन्तान का बेचने वाला होता हुआ पशु विहीन हो जाता है ॥ २ ॥

वशा के कूटा नामक अंग से दान न देने वाले व्यक्ति के पदार्थ अशेष हो जाते हैं, अदानी श्लोणा से काट को पीडित करता है। वण्डा से उसका घर जल जाता है और काणा से धन तिरोहित हो जाता है ॥ ३ ॥

हे वशे ! तू दुरदम्ना कहलाती है। गौ के स्वामी को वशा के अधिष्ठान से विलोहित शकल और सम्विध प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

गौ के स्वामी को वशा के पाँवों के अधिष्ठान से विक्लिन्दु नाम की विपत्ति मिलती है। उसके सूँघने मात्र से अनजाने ही इसके समस्त पदार्थ विनष्ट हो जाते है ॥ ५ ॥

इसके कानों का आप्रवण करने वाला देवताओं में काटा जाता है। जो अपने को लक्ष्य करने वाला मानता है वह अपने को छोटा बना लेता है ॥ ६ ॥

यदि किसी भोग के निमित्त इसके बालों को काटता है तो उसके युवा पुत्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं और श्रगाल उसके वत्सों का विनाश करता है ॥ ७ ॥

गौ के स्वामी के सामने यदि गौ के बालो को कौआ अपमानित करता है तो उसके पुत्र नष्ट होते है और क्षय रोग का शिकार होता है ।। ८ ।।

यदि इसके गोबर आदि को दासी फेकती है, तो पुरुष उस पाप दोष से मुक्त नही होता और कुरूपता को प्राप्त होता है । ९ ।

वशा देवताओ और ब्राह्मणो के लिए ही प्रकट होती है, अत ब्राह्मणो को दान देना ही अपनी रक्षा करना है, ऐसा विद्वान लोग कहते है ।। १० ।।

य एना वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गा न दित्सति ।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥
यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि स ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचिता च न दित्सति ।। १३ ।।
यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ।। १४ ।।
स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥
चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ।। १६ ॥
य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यत ॥ १७ ॥
यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ।। १८ ।।

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामा: समृध्यन्ते यामदत्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेड न्येति मानुष ॥ २० ॥

विद्वानो का कथन है कि जो गौ को परम प्रिय समझते हुए उसकी सेवा करते हैं, उसके लिए वह अघ्न्या होती है ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति देवताओ की गाय को ऋषि प्रवर युक्त ब्राह्मणो को नही देना चाहता, वह ब्रह्म कोप के कारण देवताओं द्वारा नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यदि वशा इसके लिए उपभोग्य हो तो वह अन्य की इच्छा करे। जो व्यक्ति याचक को वशा नही देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ॥ १३ ॥

थाती के समान ही वशा ब्राह्मणो की होती है, वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, यह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे माँगते हैं ॥ १४ ॥

वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के सामने आते हैं। इनको रोकना अपने को ही हानि पहुँचाना है ॥१५॥
हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप मे तीन वर्ष तक भक्षण को फिर इस धेनु को वशा मानता हुआ ब्राह्मणो की खोज करे ॥ १६ ॥

इस देवताओ की थाती रूप वशा को जो अवशा कहता है, वह भव और शर्व के बाणो का शिकार होता है ॥ १७ ॥

जो इसके स्तनो और ऐनो को न जानते हुए वशा का दान करता है, तो यह उसे दोनो से फल देने वाली होती है ॥ १८ ॥

जो इसकी याचना करने पर भी नही देता तो पुरदम्न दशा उसे पकडती है। जो इसे अपने पास ही रखना चाहता है, उसके अभीष्ट पूरे नही होते। १९ ॥

ब्राह्मण का मुख बना कर ही देवता वशा की याचना करते हैं। न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का शिकार होता है ॥ २० ॥

हेड पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहित भाग मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

यदन्ये शत याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥

दुरदभ्नैनमा शये याचिता च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥
देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेड न्येति मानुषः ॥ २० ॥

विद्वानो का कथन है कि जो गौ को परम प्रिय समझते हुए उसकी सेवा करते हैं, उसके लिए वह ब्रह्मज्या होती है ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति देवताओ की गाय को ऋषि प्रवर युक्त ब्राह्मणो को नही देना चाहता, वह ब्रह्म कोप के कारण देवताओ द्वारा नाश को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

यदि वशा इसके लिए उपभोग्य हो तो वह अन्य की इच्छा करे। जो व्यक्ति याचक को वशा नही देता तो यह अप्रदत्त वशा उसे नष्ट कर देती है ॥ १३ ॥

थाती के समान ही वशा ब्राह्मणो की होती है, वह चाहे जिसके घर प्रकट हो जाय, यह ब्राह्मण उसके सामने जाकर उसे माँगते हैं ॥ १४ ॥

वशा के सामने आने वाले ब्राह्मण अपने ही धन के सामने आते हैं। इनको रोकना अपने को ही हानि पहुँचाना है ॥१५॥
हे नारद ! यह धेनु अविज्ञात गदा रूप मे तीन वर्ष तक भक्षण को फिर इस धेनु को वशा मानता हुआ ब्राह्मणो की खोज करे ॥ १६ ॥

इस देवताओ की थाती रूप वशा को जो अवशा कहता है, वह भव और शर्व के बाणो का शिकार होता है ॥ १७ ॥

जो इसके स्तनों और ऐनो को न जानते हुए वशा का दान करता है, तो यह उसे दोनो से फल देने वाली होती है ॥ १८ ॥

जो इसकी याचना करने पर भी नही देता तो पुरदम्न दशा उसे पकडती है । जो इसे अपने पास ही रखना चाहता है, उसके अभीष्ट पूरे नही होते । १९ ॥

ब्राह्मण का मुख बना कर ही देवता वशा की याचना करते हैं । न देने वाला मनुष्य उनके क्रोध का शिकार होता है ॥ २० ॥

हेड पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहित भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

यदन्ये शत याचेयुर्ब्राह्मणा गोपति वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

य एवं विदुषेऽदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥

यावदस्या गोपतिर्नोपश्रृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥

आविरात्मान कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः ॥ ३० ॥

जो व्यक्ति देवताओ के थाती रूप भाग को अपना परम प्रिय समझता है, वह ब्राह्मणो को वशा दान न करने के कारण पशुओ के क्रोध का भजन बनता है ॥ २१ ॥

गौ के स्वामी से अन्य चाहें सैकडो ब्राह्मण वशा मांगे, परन्तु देवताओ के कथनानुसार वशा विद्वान की होती है ॥ २२ ॥

जो पुरुष विद्वान को गौ न देता हुआ अन्य को दान करता है तो उसके निमित्त पृथ्वी देवगणो सहित अप्राप्य होती है । २३ ॥

जिसके सम्मुख वशा प्रकट होती है, देवता उससे वशा मांगते है । यह जानकर नारद भी देवगणो सहित वहां पहुँच गये ॥ २४ ॥

ब्राह्मणो द्वारा याचित वशा को जो पुरुष अत्यन्त प्रिय मानता हुआ नही देता तो वही वशा उसे सन्तान हीन और पशु रहित कर देती है ॥ २५ ॥

ब्राह्मण अग्नि के लिए सोम, काम मित्रावरुण के निमित्त याचना करते हैं। वशा न देने पर ये उसे ही काटते हैं ॥ २६ ॥

गौ का स्वामी जब तक गौ के सम्बन्ध मे कोई सकल्प न करे तब तक उसकी गौओ मे विचरे, फिर उसके घर मे वास न करे ॥ २७ ॥

जो सकल्प रूप वाणो के पश्चात भी अपनी गोओ मे विचरण करता है, वह देवताओ का तिरस्कारक उनके ही द्वारा अपनी आयु और अपने वैभव को नष्ट करता है । २८ ॥

देवताओं की धरोहर रूप वशा अनेक प्रकार से विचरण करती हुई जब स्थान को नष्ट करना चाहती है तब विभिन्न रूपों को प्रकट करती है ॥ २९ ॥

जब वह अपने स्थान को नष्ट करना चाहती है तब वह ब्राह्मणों द्वारा मांगे जाने की इच्छा करते हुए विभिन्न रूप प्रकट करती है ॥ ३० ॥

मनसा स कल्पयति यद् देवा अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१ ॥
स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छन्ति ॥ ३२ ॥
वशा माता राजन्यस्य वशा सम्भूतमहृण ।
तस्या आहुरनर्पणं यद ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ॥३३॥
यथाज्य प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्य वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४ ॥
पुरोडाशावत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥
सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुष दुहे ।
अथाहुर्नारक लोक निरुन्धानस्य याचिताम ॥ ३६ ॥
प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहत मा मन्यमानो मृत्यो पाशेषु बध्यताम् । ३७ ॥
यो वे त मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्राश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥
महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विष दुहे ॥ ३९ ॥
प्रिय पशूना भवति यद् ब्रह्मभ्य प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रिय यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥ ४० ॥

जब वह चाहती है, तब उसकी इच्छा देवताओ के पास जाती है तब ब्राह्मण वशा की याचना करने के लिये उसके पास आते हैं ॥ ३१ ॥

पितरो के लिये स्वधा करने से देवताओ के लिये यज्ञ करने से और वशादान से क्षत्रिय माता के क्रोध का भाजन नही बनता ॥ ३२ ॥

राजन्य की माता वशा है, इनका समूह पहले प्रकट हुआ था। ब्राह्मणो को दान करने से पहले वह अनर्पण कहलाती है ॥ ३३ ॥

ग्रहण किया घृत जैसे श्रुचा से अग्नि के लिए पृथक होता है वैसे ही ब्राह्मणो को वशा न देने वाला, अग्नि के लिये पृथक होता है ॥ ३४ ॥

इस लोक मे भली भाँति दुहाने वाली वशा इस यजमान के पास रहती है और दान करने वाले की समस्त इच्छाओ को पूर्ण करती है ॥ ३५ ॥

यम के राज्य मे यह वशा समस्त इच्छाओ की पूर्ति करने वाली है और माँगी हुई वशा के न देने पर विद्वान लोग नरक प्राप्ति की बात कहते हैं ॥ ३६ ॥

क्रोध युक्त वशा गौ स्वामी को भक्षण करती सी विचरण करती है। वह कहती है कि मुझे गर्भघातिनी को अपनी मानने वाला मूर्ख मृत्यु पाश मे बन्धित हो । ३७ ॥

जो गर्भघातिनी वशा को अपनी मानता या उसका पचन करता है, बृहस्पति उसके पौत्र पुत्रादि को लेने की इच्छा करते हैं । ३८ ॥

यह वशा अन्य गौओ मे ताप की वृद्धि करती हुई विचरण

करती है। यदि स्वामी इसका दान नही करता तो यह उसके लिए विष का दोहन करती है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मणो को वशा दे देने पर दाता पशुओं का प्रिय होता है। वशा का भी वह प्रिय होता है। वह देवताओ मे हवि रूप से प्रदान की जाती है ॥ ४० ॥

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासा विलिप्त्य भीमामुदाकुरुत नारद ॥ ४१ ॥
ता देवा अमीमासन्त वशेयामवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥
कति नु वशा नारद यास्त्व वेत्थ मनुष्यजा ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वास कस्या नाश्नीयाद ब्राह्मण ॥ ४३ ॥
विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयाद ब्राह्मणो स आशमेन भूत्याम ॥ ४४ ॥
नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥
विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशसेत भूत्याम् ॥ ४६ ॥
त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ता प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्य सोऽनाव्रस्क प्रजापतौ ॥ ४७ ॥
एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेन याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥
देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेद तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥
उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥
ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥
यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम्
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ ५३ ॥

यज्ञ से प्रकट होकर देवताओ ने वशा का निर्माण किया। नारद ने तब विलप्ती भामा को स्वीकार किया ॥ ४१ ॥

उस समय देवताओं ने कहा कि यह वशा अवशा है। परन्तु नारद ने उसे वशाओ मे परम वशा बताया ॥ ४२ ॥

हे नारद ! तुम ऐसी कितनी वशाओ को जानते हो जो मनुष्यो में प्रकट होती है ? विद्वान होने के कारण ही मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ अब्राह्मण किसके प्राशन से बचे ॥ ४३ ॥

हे बृहस्पति ! जो अब्राह्मण वैभव की इच्छा करे वह विलिप्त सूत वशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४४ ॥

हे नारद ! तुम्हें नमन है। विद्वान की स्तुति के अनुकूल ही वशा है। इनमे भयकर वशा कौन सी है जिसका दान न करने पर पराजय प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

हे बृहस्पते ! वैभव की कामना वाला अब्राह्मण विलिप्ती सूत वशा और वशा का प्राशन न करे ॥ ४६ ॥

वशाऐ तीन प्रकार की है—विलिप्ती, सूतवशा और वशा इन्हे ब्राह्मणो को दान कर दे तो वह प्रजा-पति के लिये क्षोभ-जनक नही होता ॥ ४७ ॥

अदाता के ग्रह मे यदि भीमावशा है तो उस वशा की याचना करने पर यह माने कि हे ब्राह्मणो ! तुम्हारे लिए यह हवि रूप है ॥ ४८ ॥

क्रुद्ध देवो ने वशा से कहा कि इसने हमको दान नही किया अत: यह अदाता पराजित होता है ॥ ४९ ॥

इन्द्र की प्रार्थना करने पर भी यदि वशा को न दे तो उसके इस पाप दोष के कारण देवता उसे अहकार मे व्याप्त कर नष्ट कर देते है ॥ ५० ॥

जो वशा का दान न करने को कहते है, वे मूर्ख इन्द्र के क्रोध से स्वय को नष्ट करते हैं ॥ ५१ ॥

जो लोग गौ के स्वामी से न दान करने को कहते है, वे मूर्ख रुद्र के आयुध का शिकार होते हैं ॥ ५२ ॥

हुत या अहुत वशा का पचन करने वाला देवता और ब्राह्मणो का तिरस्कारक होता है। वह इस लोक मे बुरी दशा को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

सूक्त ५ (१) (पाँचवाँ अनुवाक)

(ऋषि—कश्यप: । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, उष्णिक्)

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तऋते श्रिता ॥ १ ॥

सत्येनावृत्ता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे-
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥

ब्रह्म पदवाय ब्राह्मणोऽधिपतिः ॥ ४ ॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मण क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मी: ॥ ६ ॥

तप के द्वारा निर्मित ब्रह्माश्रित इस धेनु को ब्राह्मण ने श्रम से प्राप्त किया ॥ १ ॥

यह सत्य, संपत्ति और यश से पूर्ण संयुक्त है ॥ २ ॥

यह श्रद्धा से पर्यूढ स्वधा से परिहित, दीक्षा से रक्षित तथा यज्ञ से स्थित रहती है। इसकी ओर क्षत्रिय का देखना मृत्युवत है ॥ ३ ॥

इसके द्वारा ब्रह्म पद की प्राप्ति होती है। इस गौ का स्वामी ब्राह्मण ही है ॥ ४ ।

ब्राह्मण की इस प्रकार की गौ का चुराने वाला, ब्राह्मण को दुखी करने वाले क्षत्रिय की ॥ ५ ॥

लक्ष्मी वीर्य और प्रिय वाणी नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

सूक्त ५ (२)

(ऋषि – कश्यप । देवता – ब्रह्मगवी । छन्द—त्रिष्टुप; अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्ति)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बल च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ७ ॥

ब्रह्म च क्षत्र च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च- द्रविणं च ॥ ८ ॥

आयुश्च रूप च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥

पयश्च रसश्चान्न चान्नाद्य च ऋतं च सत्य चेष्ट च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥

तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मण क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥

ओज तेज, पराक्रम, वाणी इन्द्रियाँ लक्ष्मी और धर्म ॥ ७ ॥

ब्रह्म, क्षात्रतेज, राष्ट्र कान्ति यश और धन ॥ ८ ॥

आयु, रूप, नाम, कीर्ति प्राणायान, नेत्र एव कान ॥९॥

दूध, रस, अन्न, अग्नि, ऋत, सत्य, इष्ट पूर्त और प्रजा ॥ १० ॥

उस क्षत्रिय से यह सभी छिन जाते है जो ब्राह्मण की गौ को चुराकर उसकी आयु को क्षीण करता है ॥ ११ ॥

सूक्त ५ (३)

(ऋषि—कश्यप । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप, उष्णिक, जगती, वृहती)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यघविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२॥
सर्वाण्यस्या घोराणि सर्वे च मृत्यव ॥ १३ ॥
सर्वाण्यस्या क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥
सा ब्रह्मज्य देवपीयु ब्रह्मगव्या दीयमाना मृत्यो
पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥
मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥
तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥
हेत. शफानुत्खिदन्ती महादेवोपेक्षमाणा ॥ १९ ॥
क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥
मृत्युर्हिङ् कृण्वत्युग्रो देव· पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥
सर्वज्यानि कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥
सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्या मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

ब्राह्मण की यह गाय बडी भयकर होती है। कूल्बज से ढके हुए हिंसात्मक कर्म से युक्त यह कृत्या का रूप धारण करने वाली होती है ॥ १२ ॥

इसमें सभी भयकर कम और मृत्यु प्रद कारण व्याप्त रहते है ॥ १३ ॥

इसमे सब प्रकार के क्रूर कर्म और पुरुषो के सब प्रकार के वधं व्याप्त रहते हैं ॥ १४ ॥

ब्राह्मण से छीनी हुई इस प्रकार की गौ ब्राह्मणत्व को अपमानित करने वाले व्यक्ति को मृत्यु पाश मे बाध लेती है ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण की आयु को कम करने वाले के लिए क्षीणताप्रद यह गौ सैकडो प्रकार से हिंसात्मक अस्त्र होती है ॥ १६ ॥

अत. विज्ञजन ब्राह्मण की धेनु को घोर में जानें ॥१७॥

वह अग्नि के समान ऊर्ध्व की ओर जाती और वज्र सदृष्य दौडती है ॥ १८ ॥

वह खुरो से ध्वनि करती हुई महादेव की आयुध रूप बन जाती है ॥ १९ ॥

वह रभाती हुई तीव्र घोष करती है और तीक्ष्ण वज्र जैसा हो जाती है ॥ २० ॥

हिं शब्द उच्चारण करती हुई गौ मृत्यु के समान होती है और सब ओर पूंछ का घुमाती हुई उग्र रूप धारण कर लेती है ॥ २१ ॥

सब प्रकार से आयु को नष्ट करने वाली यह धेनु कानो हिलाती है। वह अपने मूत्र को त्यागती हुई क्षय रोग को उत्पन्न करती है ॥ २२ ॥

जब दूध निकाला जाता है तब मारक अस्त्र के समान होती है और दुही जाने के बाद शिर रोग रूप वाली, हो जाती है ।। २३ ।।

परामृष्ट होने पर परस्पर लड़ाती और निकट खड़ी होने पर विशीर्ण करती हैं । २४ ।।

पीटने पर दुर्गतिप्रद तथा मुख ढकने पर चिन्ह अंकित करने वाली होती है ।। २५ ।।

बैठती हुई वह धेनु अघविषा होती है और बैठी हुई विनाशक व्याधि उत्पन्न करती है । २६ ।।

यह ब्राह्मण की गाय ब्राह्मण की हानि करने वाले का पीछा करती हुई उसके प्राणों का हनन करती है ।। २७ ।।

सूक्त ५ (४)

(ऋषि—कश्यप । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द— गायत्री, अनुष्टुप, त्रिष्टुप् बृहती, उष्णिक)

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥
देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ।। २९ ।।
पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ।। ३० ।।
विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ।। ३१ ।।
अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ।। ३२ ।।
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ।। ३३ ।।
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ।। ३४ ।।
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ।। ३५ ।।
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ।। ३६ ।।
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ।। ३७ ।।
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ।।३८।।

यह ब्राह्मण की अपहरण की हुई गौ पुत्र पुत्रादि का बँटवारा कराती हुई छेदन करने वाली होती है ॥ २८ ॥

चुराते समय यह अस्त्र रूप तथा चुराने के बाद नष्ट करने वाली बन जाती है ॥ २९ ॥

पाप रूप यह धेनु कठोरता उत्पन्न करती है ॥ ३० ॥

प्रयस्यती विष सदृश्य और अयस्ता जीवन को विपत्ति मे डालने वाली होती है ॥ ३१ ॥

पचनकाल में व्यसन प्रद और पकने पर कुस्वप्न वाली होती है ॥ ३२ ॥

पर्याक्रियमाणा जड से उखाड फकती है और पराकृता क्षीण करने वाली होती है । ३३ ॥

उद्ध्रिय माणा शोकाकुल बनाने वाली तथा उद्धृता सर्प सदृश्य विषैली होती है जो अपनी गन्ध से सज्ञा शून्य कर देती है ॥ ३४ ॥

उपहृता पराभूति होती है और उपह्रियमाणा अभूति होती है ॥ ३५ ॥

पिश्यमाना क्रोधित शर्व के समान होती है और पिशिला शिमिदा होती है ॥ ३६ ॥

प्राशन की जाती हुई गौ दरिद्रता और प्राशन किए जाने के पश्चात अधोगति प्रदान करने वाली पापदेवी निर्ऋति का रूप धारण कर लेती है ॥ ३७ ॥

ब्राह्मण को हानि पहुँचाने पर ब्राह्मण की धेनु इहलोक तथा परलोक दोनो से हीन कर देती है ॥ ३८ ॥

सूक्त ५ (५)

(ऋषि– कश्यप. । देवता—ब्रह्मगवी । छन्द—पंक्ति, अनुष्टुप्, वृहती)

तस्या आहनन कृत्या मेनिराशसन वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥
अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥
अग्नि' क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवीं ब्रह्मज्य प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥
सर्वास्यागा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि पापदति ब्रह्मगवी ब्रह्मजस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
य एव विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गमादत्ते ॥ ४६ ॥

इस धेनु का आशसन मारने वाला अस्त्र है। इसका आहनन कृत्या है और गोवर युक्त आधा पका हुआ चारा शपथ के समान है ॥ ३९ ॥

यह चुराई गई गाय अपने वश मे नही रहती ॥ ४० ॥

ब्राह्मण की धेनु क्रव्याद् अग्नि बन कर ब्रह्मज्य मे प्रविष्ट हो उसका भक्षण करती है ॥ ४१ ॥

उसके समस्त अङ्ग और सन्धि स्थलो को छिन्न भिन्न करती है ॥ ४२ ॥

इसके पिता के बांधवो का भी छेदन करती और माता के बांधवो को अपमानित कराती है ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण की गाय, क्षत्रिय द्वारा न वापिस करने पर ब्रह्मज्य के सब विवाहित प्रियजनो को सहारित करती है ॥४४॥

वह उसे सन्तान हीन एव गृहहीन करती है। वह अपरापरण होकर विनाश को प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

उपरोक्त दशा क्षत्रिय की होती है जो विद्वान ब्राह्मण की गौ को चुरा लेता है ॥ ४६ ॥

सूक्त ५ (६)

(ऋषि – कश्यप। देवता ब्रह्मगवी। छन्द अनुष्टुप्, बृहती; उष्णिक् गायत्री)

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्यादहन परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नानाः ।
पाणिनोरसि कुर्वाणा पापमैलब- ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी दिद नु ताविति ॥ ५० ॥
छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्यु च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ५३ ॥
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्र ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥
आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन प्र यच्छसि ॥ ५७ ॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ५८ ॥
मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ५९ ॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधस ॥६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥

जो क्षत्रिय उस गाय को ले जाता है उसको नेत्रों को गृद्ध निकालते हैं ॥ ४७ ॥

उसे भाभीभूत करने वाली चिता के समीप केश वाली स्त्रियां अपने वक्षो को पोटती आंसू बहाती है ।। ४८ ।।

उसके घरो मे शीघ्र ही गीदड आना आरम्भ कर देते हैं ।। ४९ ।।

उसके सवन्ध मे ऐसा कहा जाने लगता है कि यह उसका घर था ।। ५० ।।

तू इस गाय चुराने वाले का छेदन कर और उसे मार डाल ।। ५१ ।।

हे आंगिरस ! तू इस चुराने वाले ब्रह्मज्य का विनाश कर ।। ५२ ।।

तू कूल्वज से आवृत विश्वदेवी कृत्या प्रख्यात है ।।५३।

तू मन्त्र रूपी वज्र से भली भांति विनाश करने वाली है ।। ५४ ।।

तू मृत्यु रूप धारण कर दौड ।। ५५ ।।

तू चोरी करने वाले की कान्ति कामना पूर्त और शुभात्मक शब्दो को नष्ट करती है ।। ५६ ।।

उस ब्राह्मण की हानि करने वाले को क्षीण आयु करने के लिए पकड कर मृत्यु को पहुँचाती है । ५७ ।

हे अघन्ये ! ब्राह्मण के शाप के कारण तू ब्रह्मज्य के पावो के लिए बन्धन रूप हो ।। ५८ ।।

तू अस्त्र रूप बाणो के समूह को प्राप्त होती हुई उसके पाप के फलस्वरूप अघविषा होजा ।। ५९ ।।

हे अघन्ये ! तू उस देवद्वेषी के अपराध पूर्ण कार्यों को निष्फल करने के निमित्त उसे सिर विहीन कर ।। ६० ।।

तेरे द्वारा प्रमूर्ण और मर्दन किए हुए उस दुष्ट को अग्नि भस्म कर डाले ।। ६१ ।।

सूक्त ५ (७)

(ऋषि— कश्यप । देवता— ब्रह्मगवी । छन्द,—अनुष्टुप्, गायत्री, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्ये आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥
यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृताणसो देवपीयोरराधसः ॥ ६५ ॥
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
प्र स्कन्धान प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥
लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥
अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥
अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥
सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥

हे अघन्ये ! ब्रह्मज्य को काट, भस्म कर, उसका जड सहित नाश कर ॥ ६ ,६३ ॥

हे अघन्ये ! उस दोषी देव हिंसक, कार्य मे बाधक ब्रह्मज्य के कन्धो को एव सिर को भी तेज धार वाले शस्त्र से काट डाल जिससे वह सुदूर स्थित पाप लोको के लिए प्रस्थान करें ॥ ६४,६५,६६,६७ ॥

इनके बालो को काटकर चमडे को उधेड दे ॥ ६८ ॥

इसके मांस को काट कर नसो को सुखा दो ॥ ६९ ॥

इसकी अस्थियो मे दाह और मज्जा मे क्षय व्याप्त कर ॥ ७० ॥

इसके शरीर के अंगो और सन्धि स्थलो को ढीला कर दे ॥ ७१ ॥

वायु इसे अन्तरिक्ष और पृथ्वी से भी दूर भगा दें और क्रव्याद् अग्नि इसे जला डाले । ७२ ॥

सूर्य भी इसे स्वर्ग मे ढकेल दें और जला डालें । ७३ ॥

॥ द्वादश काण्ड समाप्तम् ॥

त्रयोदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम् रोहित , आदित्य', मरुत , अग्नि, अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पङ्क्ति:, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती)

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥
उद्वाज आ गन् यो अप्स्वन्तर्विश आ रोह त्वद्योनयो या. ।
सोमं दधानोऽप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ वेशयेह ॥ २ ॥
यूयमुग्रा मरुत पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून् ।
आ वो रोहितः शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो मरुतः स्वादुसंमुदः ॥ ३ ॥
रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम् ।

ताभिः सरब्धमन्वविन्दन् षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः ॥ ४ ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोऽहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् ।
तस्मै ते द्यावा पृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान ।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन् ॥ ६ ॥

रोहितोद्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्व स्तभितं तेन नाकः ।
तेनान्तरिक्ष विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च ।
दिव रूढ्वा महता महिम्ना स ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥ ८ ॥

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम् ।
तासा ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥ ९ ॥

यास्ते विशस्तपसः सबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन समाता वत्सो अभ्येतु रोहित ॥ १० ॥

हे सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष मे प्रस्त प्रकट होओ । सुन्दर सत्य रूप वाणी से युक्त होकर इस राष्ट्र मे पधारो । ऐसे इन सूर्य ने ससार को प्रकाश प्रदान किया, वह तुम्हे राष्ट्र के पालन कर्ता के रूप मे पुष्ट करे ॥ १ ॥

जल मे वास करने वाली प्रजाये और शक्तिशाली अन्न तुम्हे प्राप्त हो । तुम उन पर चढो और सोम को धारण करते हुए जल, औषधि, मनुष्य और पशुओ को इस राष्ट्र मे प्रविष्ट करो ॥ २ ॥

हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के मित्र हो । तुम शत्रु का नाश करो ।

तुम स्वादिष्ट पदार्थों से तुष्ट होने वाले हो और सुन्दर वृष्टि को प्रदान करते हो। सूर्य तुम्हारी वात सुनें ॥ ३ ॥

सूर्य प्रकट होते हुए चढ रहे हैं। वह उत्पादको के शरीरांग मे पत्नियो के गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं। छ. ऊर्वियो की प्राप्ति के लिए नित्य प्रति राष्ट्र को देखते हुए वे उर्वियो को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ।

तेरे राष्ट्र पर सूर्य उदय हो गये। अत. तू युद्ध का भय न कर। द्यावा पृथ्वी धन प्रदाता ऋचाओ द्वारा तेरे निमित्त कामनाओं का दोहन करें ॥ ५ ।

सूर्य ने आकाश पृथ्वी को प्रकट किया प्रजापति ने उसमे तन्तु को बढाया। वहाँ एक पाद अज ने सहारा लेकर द्यावा पृथ्वी को वल से युक्त किया ॥ ६ ।

सूर्य ने आकाश पृथ्वी को कठोरता प्रदान किया, दुख विहीन स्वर्ग को स्थिरता प्रदान की। उसी ने अन्तरिक्ष तथा अन्य सब लोको का निर्माण किया और देवताओ ने इसी से अमरता प्राप्त की ७ ॥

रुह और प्ररूह को भली भाँति प्रकटकरने वाले सूर्य सब शरीरा को स्पर्श किया। वह सूय अपनी महिमा से तेरे राष्ट्र को घृत-दूध से पूर्ण करें। ८ ।

अपनी जिन रोहण प्ररोहण और अरोहण शील प्रजा और लता आदि द्वारा तुम अन्तरिक्ष के प्राणियो का पालन पोषण करते हो, उनके दूधवत सार कर्म के द्वारा मित्र वल से प्रवृद्ध हुए तुम सूर्य के राष्ट्र मे चेतन शील रहो । ९ ॥

तप बल से उत्पन्न एव गायत्री रूप वत्स द्वारा यहाँ लाई प्रजायें मगलमय हृदय से तुम मे प्रविष्ट हो तथा इनका सूय वत्स तुम्हारे पास पधारे ॥ १० ॥

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद्विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
रोहितं देवा यान्ति सुमनस्यमानाः स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्य दधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः ।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

आ त्वा रुरोह बृहत्युत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः ।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम् ।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नो वैश्वकर्मणाः परि ये संबभूवुः ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

वाचस्पते सौमनस मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु प्रजाः ।
इहैव प्राण सख्ये नो अस्तु तत्वा परमेष्ठिन्
पर्यहमायुषा वचसा दधामि ॥ १९ ॥
परि त्वा धातु सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा ।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥ २० ॥

जब वे सूर्य उर्ध्व होकर स्वर्ग मे पहुँचते है, तब वे अपने विभिन्न रूपो को प्रकट करते है। उनकी ही तीक्ष्ण ज्योति से अग्नि ज्योतिमान है। वे तीसरे लोक मे प्रिय फलो को प्रकट करते है ॥ ११ ॥

सहस्रो सीग वाले घृत से आहूत, काम्यवर्षक, सोमपृष्ठा सुवीर जातवेदा अग्नि हमस अलग न हो। मुझे गौओ और पुत्र पौत्रादि से सपन्न करें ॥ १२ ॥

सूर्य यज्ञ का प्राकस्य करते हैं। वे यज्ञ के मुखरूप है, मन वचन और कर्म से मैं उन सूर्य के निमित्त हवि अपित करता हूँ। आनन्द मग्न सब देवगण सूर्य के निकट पहुँचते हैं। वे मुझे सग्राम के निमित्त श्रेष्ठ मनोवल प्रदान करें ॥ १३ ॥

सूर्य ने विश्वकर्मा के निमित्त यज्ञ का पोषण किया, उस यज्ञ के द्वारा वह तेज मुझमे प्रविष्ट हो रहे हैं। मैं तुम्हारी नाभि को लोक की मज्जा पर बताता हूँ ॥ १४ ॥

हे अग्ने। बृहती पक्ति और ककुप छदो ने तथा उष्णहा और अक्षर ने तुममे प्रवेश किया है और वपटकार ने भी तुम मे प्रवेश कर लिया है। सूर्य भी तुममे अपने तेज सहित प्रवेश करते है ॥ १५ ॥

सूर्य पृथ्वी के गर्भ को आकाश और अन्तरिक्ष को भी आवृत कर लेते हैं। यह समस्त जग के वधक सभी स्वर्गों मे प्रतिष्ठित होते हैं ॥ १६ ॥

हे वाचस्पते ! हमको पृथ्वी योनि, एवं गंगा सुखकारी हो प्राण सखा रूप हो हममें व्याप्त हो। हे प्रजापते ! अग्नि तुम्हें आयु और तेज से युक्त होकर धारण करें ॥ १७ ॥

हे वाचस्पते ! हमारे कर्म द्वारा जो पाँच ऋतुऐं उत्पन्न हुई उनमे हमारा प्राण मित्र रूप से स्थित हो। हे प्रजापते ! तुम्हे सूर्य अपने तेज और आयु से धारण करे ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हम प्रसन्न चित्त रहे। तुम हमारे गोष्ठ में गौओ को प्रतिष्ठित करो और हमारी योनियो मे सन्तानो को उत्पन्न करो। प्राण सखा रूप हो हममे व्याप्त हो मैं आयु और तेज से तुम्हें धारण करता हूँ ॥ १६ ॥

हे नृप ! सविता देव तुम्हारा सब भाँति पोषण करें। अग्नि, मित्र और वरुण तुम्हें शक्ति प्रदान करें। तुम समस्त शत्रुओ को अपने अधीन करते हुए इस राष्ट्र में आकर सत्य मिष्ट वाणी को पुष्ट करो ॥ २० ॥

यं त्वा पृपती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः ।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वा पृतना अभि
ष्याम ॥ २२ ॥

इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्था पृषती येन याति ।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति
कवयोऽप्रमादम् ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम् ।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव ।

यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिव च तस्माद् देव। अधि सृष्टी सृजन्ते ॥ २५ ॥
रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुह ॥ २६ ॥
वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्र सोम पिबतु क्षेमो अ स्त्वग्नि. प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व । २७ ॥
समिद्धो अग्नि समिधानो घृतवृद्धा घृनाहुत ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान हन्तु ये मम ॥ २८ ॥
हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो न पृतन्यति ।
क्रव्यादाग्निना वय सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥
अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान ।
अधा सपत्नात् मामकानग्नेस्तेजोऽभिरादिषि ॥ ३० ।

हे सूर्या ! प्रपती तुम्हें प्रष्टि रथ मे धारण करती है। तुम जलो में चलते हुए कल्याण के निमित्त गमन शील हो ॥ २१ ॥

आरूढ होते रोहित की रोहिणी अनुव्रता है, वह सुन्दर वर्ण वाली वृहती और सुन्दर तेज से युक्त है, उसी के द्वारा हम अनेक रूपो वाले प्राणियो पर विजय प्राप्त करते हैं। उसी के अनुग्रह से हम सेनाओ को अपने अधीन करें ॥ २२ ॥

यह रोहिणी और रोहित का निवास स्थान है इसी मार्ग द्वारा पृषती जाती है। गन्धर्व उसे ऊपर ले जाते हैं। चतुर व्यक्ति इसका सचेष्टता से रक्षण करते हैं ॥ २३ ॥

वेगवान और ज्ञान युक्त सूर्या के अश्व उसके अमर रथ को आसानी से खीचते हैं। अभीष्ट पूरक सूर्या पृषती स्वर्ग मे पहुँच गये ॥ २४ ॥

वे रोहित इच्छाओ को पूर्ण करने वाले हैं तथा तीक्षण

किरणो से युक्त हैं। जो अग्नि देव सूर्य की ओर रहते और द्यावा पृथ्वी को स्थिर रखते हैं, उन्हो के बल से देवगण सृष्टि की रचना करते हैं ॥ २५ ॥

वे सूर्य समुद्र के द्वारा आकाश पर आरोहण करते और रोहणशील पदार्थों पर भी चढते है ॥ २६ ॥

तू देवताओ की पयस्वनी उपासनीय गौ का मान सम्मान करने के कारण अनयस्पृक् है। अग्नि तेरा कल्याण करें और इन्द्र सोमरस का पान करें। तत्पश्चात तू शत्रुओ को रणक्षेत्र से भगा दे ॥ २७ ॥

यह अग्नि प्रज्वलित होकर घृत द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए है। इनमे घृत की आहुति अर्पित की गई है। वे शत्रुओ को पराजित करने वाले हैं, अत मेरे शत्रुओ का विनाश करें ॥ २८ ॥

इन सब शत्रुओ का अग्नि देव विनाश करे। जो शत्रु सेना सहित आकर हमारा विनाश करना चाहे उसे अग्नि देव जला डाले। हम क्रव्याद् अग्नि के द्वारा शत्रुओ को भस्म करते हैं ॥ २९ ॥

हे इन्द्र तुम अपने बाहुबल से हमारे शत्रुओ का विनाश करो और हे अग्ने! तुम अपनी ज्वालाओ से उन्हे भस्म कर डालो ॥ ३० ॥

अग्नेसपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपान बृहस्पते ।
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥
उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम् ।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्स ब्रह्म सन्त ब्रह्मणा वर्धयन्त ॥ ३३ ॥
दिव च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविण च रोह ।
प्रजां च रोहामृत च रोह रोहितेन तन्व स स्पृश·व । ३४ ॥
ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम् ।
तैष्टे रोहित· सविदानो राष्ट्र दधातु सुमनस्यमान ॥ ३५ ॥
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।
तिर समुद्रमति रोचसे अर्णवम् ॥ ३६ ॥
रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति सधनाजिति।
सहस्र यस्य जनिमानि सप्त च वोचेय ते नाभि भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥
यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशा· पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयास सवितेव चारु ॥ ३८ ॥
अमुत्र सन्निह वेत्थेना सस्तानि पश्यसि ।
इत पश्यन्ति रोचन दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥
देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चर स्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते त विदु कवयः परे ॥ ४० ॥

हे अग्ने ! तुम हमारे शत्रुओ को पतन करो । हे बृहस्पते! तुम उन्नति को प्राप्त समान जन्म वाले शत्रु को शोकाकुल करो हे इन्द्राग्नि ! और मित्रावरुण देवताओ ! हमारे विरोधी शत्रु पतित हो ॥ ३१ ॥

हे उदयशील सूर्य ! तुम हमारे शत्रु को नष्ट करो । इन्हें पाषाणो से मार डालो । यह मृत्यु के समान घोर अन्धकार को प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

विराट के वत्स सूर्य अन्तरिक्ष पर चढते है । सूर्य रूप

वत्स जब ब्रह्म हो जाते है तब भी वे मत्र द्वारा प्रवृद्ध किये जाते हैं। ३३ ।

हे राजन् ! तुम पृथ्वी पर प्रतिष्ठित रहो राष्ट्र और धन के स्वामी बनो । प्रजाओ के लिए छत्र के समान आश्रय प्रदान करो । तुम अमृत पर अधिष्ठित होते हुए सूर्य से स्पर्श करने वाले होओ और स्वर्ग पर चढो ।। ३४ ।।

राष्ट्र का पोषण करने वाले जो देवता सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाते हैं, उनसे सहमति होते हुए रोहित देव तुम्हारे राष्ट्र को शक्ति सपन्न करें ।। ३५ ।।

हे सूर्य यह मन्त्राभिदीक्षित यज्ञ तुम्हारा वहन करते हैं, और मार्ग मे गमनशील अश्व भी तुम्हारा वहन करते है । तुम आडे होकर समुद्र को परम शोभायुक्त बनाते हो ।। ३६ ।।

वसुजित, गोजित सधनजित नामक रोहित मे आकाश पृथ्वी व्याप्त है । मैं उनके सात हजार प्रादुर्भावो का वर्णन करता हुआ उन्हे लोक की मज्जा का बन्धन मानता हूँ ।।३७।।

तुम अपनी कीर्ति के द्वारा दिशा प्रदिशाओ में विचरण करते हो। कीर्ति के द्वारा ही मनुष्यो और पशुओ मे गमन करते हो । मैं सविता देव के समान ही अखडनीया पृथ्वी की गोद मे कीर्तिवान बनू ।। ३८ ।।

तुम लोक परलोक मे वास करते हुए भी यहाँ की सब बातो को जानते हो । तुम यहाँ और वहाँ के सब प्राणियो को देखते हो और सभी प्राणी स्वर्ग मे स्थित सूर्य के यहाँ से दर्शन करते है ।। ३९ ।।

देवत होकर भी तुम देवो को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए अन्तरिक्ष मे विचरण करते हो । समान अग्नि को प्रज्वलित करने वाले उच्च कोटि के विद्वजन उनसे परिचित हैं ।। ४० ।।

अन्न. परेण पद एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्। ४१ ॥

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

आरोहन् द्यामभृत प्राव मे वच ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥

वेद तत् ते अमर्त्यं यत् त आक्रमणं दिवि ।
यत् ते सधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहित. ॥ ४६ ॥

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥

एक पाँव से अन्न तथा दूसरे पाद से बछडे को धारण करती हुई शुभ्र वर्णा गौ उठती है, वह किसी अर्धभाग मे जाकर अलग रहती है, समूह मे जाकर नही रहती ॥ ४१ ॥

वह मध्यम से एकाकार हुई एक पदी मध्यम आदित्य के साथ द्विपदी, चारो दिशाओ से सयुक्त होकर चतुष्पदो अावान्तर दिशाओ से मिलकर अष्टपदी और दिशा विदिशा एव सूर्य से सयुक्त होकर नवपदी हो जाती है। वह मेघ का क्षरण करने वाली, महान जल वाली लोक की पक्ति रूप है ॥ ४२ ॥

हे सूर्य ! तुम अमृत हो सूर्य लोक में चढते हुए मेरे वचन को पूर्ण करो। मत्र मय यज्ञ, और मार्गगामी अश्व तुम्हारा वहन करते हैं ॥ ४३ ॥

हे अविनाशी सूर्य ! सूर्य मण्डल मे विचरण करने का और आकाश मे उपासको सहित जो तुम्हारा रहने का स्थान है, उससे मैं भली-भांति परिचित हूँ ॥ ४४ ॥

सूर्य, आकाश, पृथ्वी और जल के साक्षी रूप है, वे सब प्राणियो के दर्शनात्मक शक्ति है। वही द्यावा पृथ्वी पर आरोहण करते हैं ॥ ४५ ॥

उर्विदो ने परिधि का रूप धारण किया तथा वेदो के रूप मे पृथ्वो की कल्पना हुई। वहाँ इन अग्नियो, हिमो और दिनो को सूय ने स्थापित किया ॥ ४६ ॥

सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले पुरुष हिम और दिन का आधान कर पर्वतो को यूप बनाते हुए वर्षाज्य अग्नि की उपासना करते थे ॥ ४७ ॥

रोहित के स्वग प्राप्ति कराने वाले मत्र से अग्नि को दीप्त करते है। इसो के द्वारा हिम दिवस और यज्ञ का प्राकट्य हुआ ॥ ४८ ॥

सूर्यात्मक स्वर्ग की कामना करने वाले पुरुष मत्राहुत और मत्र प्रवृद्ध अग्नियो को मत्र से बढाते हुए उन प्रज्वलित अग्नियो की उपासना करते हैं ॥ ४९ ॥

सत्य में अन्य अग्नि है, जल में दूसरी अग्नि जलती है। सूर्यात्मक स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा करने वाले पुरुषों ने मंत्रों द्वारा बढ़ाई हुई उन अग्नियों की उपासना की थी ॥ ५० ॥

य वात परि शुम्भति य वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥ ५२ ॥
वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वां अकल्पयत् ॥ ५३ ॥
गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत् ।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥
स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत ।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥
यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥
यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥
यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुःष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥
मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥
यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः । तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥

ऐसे व्यक्ति जिसे वायु इन्द्र और ब्रह्मणस्पति सुशोभित

करना चाहते हैं, स्वर्गात्मक सूर्य की प्राप्ति की इच्छा रखते हुए मंत्र प्रवृद्ध अग्नियों की उपासना करते हैं ॥ ५१ ॥

पृथ्वी को वेदी बनाकर आकाश को दक्षिणा रूप मे देकर और दिन को ही अग्नि मानकर रोहित ने वर्षा रूपी घृत से संसार को आत्मा सदृश बना लिया है ॥ ५२ ।

पृथ्वी को वेदी, दिन को अग्नि और वर्षा को घृत बनाया गया। स्तुतियो से प्रवृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पर्वतो को उन्नत किया। स्तुतियो से समृद्ध हुए अग्नि ने ही इन पर्वतो को ऊँचा बनाया ॥ ५३ ॥

स्तुतियो मे प्रवृद्ध करते हुए रोहित ने पृथ्वी से कहा कि भूत और आगे जो कुछ भी हो, सब तुझमे ही उत्पन्न हो ॥५४॥

आरम्भ मे यज्ञ भूत और भवितव्य के रूप मे ही प्रकट हुआ। जो कुछ रोचमान है वह सब उसी से उदय हुआ और रोहित ने भी उसे पुष्ट किया ॥ ५५ ॥

जो सूर्य की ओर मूत्र त्यागता है तथा जो गौ का अपने पांव से स्पर्श करता है, मैं उसकी जड को नष्ट करता हूँ। उसके ऊपर कभी छाया नही करता ॥ ५६ ।

जो मेरे और अग्नि के मध्य होकर गमन करता है अथवा जो मेरी छाया को पार करता है, मैं उसका मूलच्छेद कर दूंगा तथा उसके ऊपर कभी छाया नही करता ॥ ५७ ॥

हे सूर्य ! हमारे तुम्हारे बीच मे जो बाधक बनकर आता है, उसे मैं पाप दुःस्वप्न और बुरे कर्मों मे प्रवृत्त करता हूँ ॥ ५८ ॥

हे इन्द्र ! जिस यज्ञ विधि मे सोम का प्रयोग किया जाता

है, हम उस पद्धति से विमुख न हो तथा हमारा राष्ट्र शत्रु हीन हो । ५९ ॥

जो यज्ञ देवताओ मे सुख्यापक है, हम उस यज्ञ की वृद्धि करने वाले हो ॥ ६० ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि– ब्रह्मा । देवता—अध्यात्मम्, रोहित., आदित्य । छन्द – त्रिष्टुप्; अनुष्टुप्, जगती, पंक्ति, गायत्री)

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
आदित्यस्य नृचक्षसो महिव्रतस्य मीढुष ॥ १ ॥
दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिसा सुपक्षमाशुं पतयन्तमर्णवे ।
स्तवाम सूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति सर्वा ॥ २ ॥
यत् प्राङ प्रत्यङ स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया ।
तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे ॥ ३ ॥
विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वी ।
स्रुताद यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ॥ ४ ॥
मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गां अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥
स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्य ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठा शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वी ॥६॥
सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वी ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त ।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥ ८॥
उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत् ।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥
उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान्
परिभूर्भ्राजमानः ॥ १० ॥

महान कर्मशील सेचन समर्थ साक्षि रूप सूर्य की उज्ज्वल किरणें आकाश में दीप्यमान होती हुई सूर्य को ऊंचा करती हैं ॥ १ ॥

ज्ञानमयी दिशाओं में अपने तेज से घोष कराने वाले सुन्दर पक्ष युक्त किरणों द्वारा प्रकाश प्रदान करने वाले, लोक रक्षक सूर्य की हम स्तुति करते है ॥ २ ॥

हे सूर्य ! तुम अन्नपूर्ण आहुतियो से पूर्व पश्चिम दिशाओं मे जाते हो। अपने तेज से दिन और रात्रि को विभिन्न रूप प्रदान करते हो। तुम विश्व भर मे एक मात्र उच्चतम हो। यह तुम्हारी अत्यन्त प्रशंसनीय कीर्ति है ॥ ३ ॥

जिन तेजोयुक्त और भवसिंधु के पार कराने वाले सूर्य को सदा किरणे वहन करती हैं जिन्हे ब्रह्म समुद्र से ऊपर को सूर्य लोक में लाता है। ऐसे तुम्हे हम 'आजि' मे प्रवेश करते हुए देखते हैं ॥ ४ ॥

हे सूर्य ! तुम द्वारा पृथ्वी मे दिन और रात्रि का मान करते हुए विचरण करते हो। तुम शीघ्रता से सुखपूर्वक कठिन मार्गो को पार करो। तुम्हारे 'आजि' मे प्रवेश कर लेने पर तुम्हें कोई अपने वश मे न कर सके ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! तुम जिस रथ से दोनो सिरो को शीघ्र प्राप्त करते हो, उस रथ का कल्याण हो। तुम्हारे सौ, सात या अनेक अश्व तुम्हे वहन करते हैं ॥ ६ ।

हे सूर्य ! तुम अग्नि के समान दीप्तवान तीव्रगामी रथ पर आरूढ होओ। तुम्हारे इस रथ को सौ, सात या अनेक हरित वर्ण के अश्व खीचते हैं । ७ ॥

सूर्य अपने गमन के लिए स्वर्णिम त्वचा वाले सप्त विशाल हर्यश्वो को योजित करने और तम का विनाश करते हुए लोक से दूर उन्हे छोड कर सूर्य लोक मे वापिस आ जाते हैं । ८ ॥

वे सूर्य महान केतु के द्वारा आते हैं । वे ज्योति का सहारा लेकर तम का विनाश करते हैं वे सुन्दर वर्ण वाले अदिति के पुत्र सब लोको में प्रख्यात हैं ॥ ९ ॥

हे सूर्य ! उदय होते ही किरणो को व्याप्त करके सभी सुन्दर पदार्थों का तुम पोषण करते हो। तुम गमन करते हुए दोनो समुद्रो तथा सभी भुवनो को दीप्यमान करते हो ॥ १० ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातो अर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्य हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥
दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥
उभावन्तौ समर्षसि वत्स समातराविव ।
नन्वेतदित पुरा ब्रह्म देवा अमी विदु ॥ १३ ॥
यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च य ॥ १४ ॥
त समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्ष देवानां नव रुन्धते ॥ १५ ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूर्याय विश्वचक्षसे । १७ ॥
अदृश्रन्न य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा । १८ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥

अपनी माया के द्वारा बालकों की भाँति क्रीडा करते हुए यह दोनों समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं। इनमे से एक समस्त लोको को प्रकाश प्रदान करता है तथा दूसरो को स्वर्णिम अश्व वहन करते हैं ॥ ११ ॥

हे सूर्य ! तीनो तापो से युक्त अत्रि ऋषि ने तुम्हे मास समूह के निमित्त स्वर्ग लोक मे स्थापित किया, तुम वही हो। तुम तपते हुये आते और सब भूतो को प्रकाश प्रदान करते हो ॥ १२ ॥

जिस भाँति बालक सुगमता से अपने माता पिता के समीप पहुँचता है उसी भाँति तुम दोनो समुद्र के समीप पहुँचे हो। तभी देवगण पुरातन ब्रह्म स अवगत होते हैं ॥ १३ ॥

समुद्र तक जाने वाले पथ का सूर्य दान करते हैं। इनका पूर्व अन्य मार्ग है वह अत्यन्त व्यापक और महान है ॥ १४ ॥

हे सूर्य ! तुम उस पथको तीव्रगामी अश्वो द्वारा प्राप्त करते हो। तुम उससे सचेष्ट रहते हुए देवताओ के अमृत पान मे बाधक नही होते । १५ ॥

सभी जन्म जात प्राणियो के ज्ञाता सूर्य को सभी के दर्शन के निमित्त किरणें ऊपर उठाती हैं ॥ १६ ॥

रात्रि के अवसान पर जैसे चोर पलायन कर जाते हैं, उसी भाँति नक्षत्र भी सबके द्रष्टा सूर्य के कारण रात्रि के साथ ही गमन कर जाते है ॥ १७ ॥

सूर्य को ज्ञान प्रदान करने वाली किरणे अग्नि की भाँति प्रकाशित होती हुई प्रत्येक व्यक्ति के पीछे दृष्टिगत होती है ॥ १८ ॥

हे सूर्य ! तुम नौका सदृश्य हो । तुम सबको देखते ज्योति प्रदान करते और विश्व को प्रकाशित करने वाले हो ॥ १९ ॥

हे सूर्य ! तुम प्रत्येक मानवी और दिव्य प्रजाओ के सम्मुख उदय होते हो। सभी को देखने के लिए स्पष्टत प्रकट होते हो ॥ २० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्त जनां अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभि ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केश विचक्षणम् ॥ २३ ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युव सूरो रथस्य नप्त्य ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभि ॥ २४ ॥
रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुन स देवानामधिपतिर्बभूव ॥ २५ ॥
यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत
विश्वत पृथ ।
स बाहुभ्यां भरति स पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥२७॥
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो
वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे
अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥

हे पाप नाशक सूर्य! तुम पूर्वोत्पन्न शुभ कर्म वाले पुरुषों के मार्ग में जाने वाले शुभ कर्म वालों को अपनी अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से देखते हो ॥ २१ ॥

एकप'द् द्विरदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात ।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्व समासते ॥२७॥
अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमान ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो
वि भासि ॥ २८ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥
रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्त' ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिष स्वर्जित् ॥ ३० ॥

हे पाप नाशक सूर्य ! तुम पूर्वोत्पन्न शुभ कर्म वाले पुरुषो के मार्ग मे जाने वाले शुभ कर्म वालो को अपनी अनुग्रह पूर्ण दृष्टि से देखते हो ॥ २१ ॥

हे सूर्य ! सब जीवो पर अनुग्रह करने के लिए तुम उन्हे देखते हुए और रात दिन को बनाते हुए आकाश पृथ्वी और अन्तरिक्ष मे अनेक भांति विचरण करते हो ॥ २२ ॥

हे सूर्य ! तेजस्वी रश्मियो वाले रथ मे सात हरित वर्ण अश्व तुम्हे वहन करते हैं ॥ २३ ॥

सूर्य ने पवित्राप्रद सात अश्वो को अपने रथ मे योजित किया है वह उनके द्वारा अपनी युक्तियो से प्रस्थान करते हैं ॥ २४ ॥

सूर्य अपने तेजसे स्वर्ग मे आरोहण करते हैं वे योनि को प्राप्त होते और उदय होते है । वही देवताओ के अधिपति है ॥ २५ ॥

अनेक मुख वाले, सबके द्रष्टा मन और भुजा वाले, अलौकिक देवता सूर्य अपनी फैलती हुई रश्मियो से द्यावा

पृथ्वी को प्रकट करते हुए अपनी भुजाओं से सबका पालन पोषण करते हैं ॥ २६ ॥

एक पाद द्विपादों से त्रिपादों में प्राप्त होता है फिर द्विपाद षटपादों में विक्रमण करता है वह एक पाद ब्रह्म को इष्ट मानते हैं ॥ २७ ॥

अज्ञान रहित सूर्य गमन करते हुए जब विश्राम लेते हैं तब अपने दो रूप बनाते हैं। हे सूर्य! तुम प्रकट होकर सब लोकों को अधीन करते हुए दीप्यमान होते हो ॥ २८ ॥

हे सूर्य! तुम महान हो तुम्हारी महिमा भी महान है, यह सब सत्य है ॥ २९ ॥

हे सूर्य! तुम स्वर्ग, अन्तरिक्ष पृथ्वी और जल में भी प्रकाशित होते हो। तुम अपनी दीप्ति से दोनों समुद्रों को व्याप्त करते हो। तुम स्वर्ग विजय करने वाले पूज्य देवता हो ॥ ३० ॥

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत् ॥३१॥
चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहो रात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥
तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः ।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ३५ ॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥ ३६ ॥
दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः ।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥
सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥
रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९ ॥
रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम् ।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥

सूर्य दक्षिण दिशा को ओर गमन करते हुए शीघ्र ही मार्ग को तै करते हैं। यह महान देव महान ज्ञानी है। यह अपने बल पर प्रतिष्ठित होते हुए अपने ज्ञान के बल से ही चेतनशील विश्व को अपने अधीन करते हैं॥ ३१ ॥

महिमा शाली सूर्य परम ज्ञानी और उपासनीय हैं, वे शोभनमार्ग से गमन करते हैं। द्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष को प्रकाशित करते हुए दिन और रात्रि को आश्रय प्रदान करते है। इन्ही के बल से सब पार होते हैं ॥ ३२ ॥

यह सूर्य तिरछे होकर प्रकाशित होते हैं। यह शरीर को उष्णता प्रदान करते हैं, यह सुन्दर गमनशील, दीप्यमान ऐश्वर्यवान और अन्न को पुष्ट करने वाले हैं। यह दिशाओ को प्रकट करते है ॥ ३३ ॥

यह देवताओ के ध्वजा रूप सूर्य दर्शन करने योग्य हैं। यह प्रकट होकर दिशाओ को प्रकाश प्रदान करते हैं। यह

समस्त अधकारो का विनाश करते हुए अपने प्रकाश से ही दिन को प्रकट करते हैं। यह पापो को दूर करने वाले है ॥ ३४ ॥

किरणो का प्रशसनीय यूप मित्रावरुण का नेत्र रूप है। सूर्य समस्त जीव-धारियो का आत्मारूप है। यह सभी भूतो मे प्रविष्ट सूर्य द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने मे समेटे हुए हैं ॥ ३५ ॥

ऊपर की ओर गमन शील अरुण वर्ण वाले शोभनीय सूर्य के हम आकाश के मध्य गमन करते हुए सर्वदा दर्शन करें। हे सूर्य ! तुम दीप्यमान को दुखो से मुक्त अत्रि ऋषि प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

मैं भयभीत होकर आकाश मे तीव्रगामी सूर्य का स्तवन करता हुआ उनके आश्रय को प्राप्त होता हूँ। हे सूर्य ! हम तुम्हारी श्रेष्ठ अनुग्रह बुद्धि मे रहे एव मृत्युभय से मुक्त हो। हमें दीर्घआयु प्रदान करो ॥ ३७ ॥

इन पाप विनाशक, श्रेष्ठ गमन शील, स्वर्ग गामी सूर्य के दोनो अयन सहस्त्रो दिवस तक भी नियमवद्ध रहते हैं यह सूर्य समस्त देवगणो को अपने में लीनकर, भूतमात्र को देखते हुए गमन करते हैं ॥ ३८ ॥

रोहित काल थे, वही प्रजापति थे, वही यज्ञो के मुखरूप हैं और वही रोहित अब स्वर्ग का पालन करते हैं ॥ ३९ ॥

वे स्वर्ग मे तपने वाले रोहित अपनी किरणो के द्वारा समुद्र मे और पृथ्वी मे विचरण करते हैं। वे दर्शनीय है। ४०।

सर्वा दिश समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिव ।
दिव समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥
आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।

चित्रश्चिकित्वान् महिषो वात माया यावतो लोकानभि यद् विभाति ।। ४२ ।।

अभ्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिष कल्पमान ।
सूर्यं वय रजसि क्षियन्तं गातुविद हवामहे नाधमाना ।। ४३ ।।

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्व बभव ।
विश्व सपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदह ब्रवीमि ।। ४४ ।।

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्र ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इद शृणोतु यदह ब्रवीमि ।। ४५ ।।

अबोध्यग्नि. समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहाना प्र भानव सिस्रते नाकमच्छ ।।४६।।

वे स्वर्ग के स्वामी हैं, वे समस्त दिशाओ मे विचरण करते और स्वर्ग से समुद्र की ओर गमन करते है। यह सब जीवो की और पृथ्वी की रक्षा करते है ।। ४१ ।

यह सूर्य और अश्वो पर अपने दो रूप बनाते हैं। यह पूज्यनीय, महिमामय, और रोचमान हैं। यह सुन्दर गमन शील सभी लोको को दीप्यमान करने वाले है ।। ४२ ।।

दिन समियो के द्वारा सूर्य का एक रूप सामने आता और दूसरा चला जाता है। स्वर्ग पथ मे गमन शील, अन्तरिक्ष निवासी सूर्य का हम आह्वान करते हैं ।। ४३ ।।

जिनकी दृष्टि कभी क्षीण नही होती, पृथ्वी के पोपण-कर्ता और महिमामय सूर्य ससार के चहुँ ओर व्याप्त हैं। वे जगत के दृष्टा महान ज्ञानी और पूजने योग्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ।। ४४ ।।

पृथ्वी समुद्र और अन्तरिक्ष मे अपनी दीप्ति द्वारा व्याप्त

सूर्य सत्र के कर्मों के द्रष्टा है। उनको कीर्ति सब ओर व्याप्त हैं। वे श्रेष्ठ विद्यावान और पूजनीय है। वे मे. वचनो को सुने ॥ ४५ ॥

गौ की भाँति आने वाली उषा के समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओ द्वारा ज्ञातव्य होते है। इनकी उर्ध्वगामी किरणें स्वर्ग की ओर शीघ्रता से गमन करती हैं। मैं उन्ही सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥४६॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्, रोहित, आदित्य। छन्द -कृति, अष्टित्रिष्टुप्)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापि कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिश षड्उर्वीर्या प्रतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति।
उद्वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥
यः प्राणेन द्याव पृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठर य पिपर्ति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापति रग्निर्वैश्वानर. सह पङ्क्त्या श्रितः।
य. परस्य प्राण परमस्य तेज आददे।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षड्उर्वी· पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षरा. ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
यस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वासं ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत य. ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पति· ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान ॥ ७ ॥
अहोरात्रे विमितं त्रिशदङ्ग त्रयोदश मास यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वांस ब्राह्मण जिनाति ।
उद वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्ण नियान हरय सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ९ ॥
यत् ते चन्द्र कश्यप रोचनावद् यत् सहित पुष्कल चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिता. सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १० ॥

इस द्यावा पृथ्वी को जिन्होने उत्पन्न किया, जो समस्त लोको को आवृत्त करते है जिनमे छ उर्वियाँ और दिशाऐ स्थित हैं तथा जिन दिशाओ को वे ही दीप्यमान करते हैं, उन क्रोधित सूर्य का जो तिरस्कार करता है

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षडुर्वी पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षरा. ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
यस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत य. ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान ॥ ७ ॥
अहोरात्रै विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदश मास यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ९ ॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिता. सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १० ॥

इस द्यावा पृथ्वी को जिन्होने उत्पन्न किया, जो समस्त लोको को आवृत्त करते है जिनमे छ उर्वियाँ और दिशाऐ स्थित हैं तथा जिन दिशाओ को वे ही दीप्यमान करते है, उन क्रोधित सूर्य का जो तिरस्कार करता है

चित्रिश्चिकित्वान् महिषो वात माया यावतो लोकानभि यद्
विभाति ॥ ४२ ॥
अन्यन्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिष. क्लपमान ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविद हवामहे नाधमाना. ॥ ४३ ॥
पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्व बभव ।
विश्व संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदह ब्रवीमि । ४४ ॥
पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्र ज्योतिषा विभ्राजन् परि
द्यामन्तरिक्षम ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इद शृणोत यदह ब्रवीमि ॥ ४५ ॥
अबोध्यग्नि समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम ।
यह्वाइव प्र वयामुज्जिहाना प्र भानव सिस्रते नाकमच्छ ।.४६॥

वे स्वर्ग के स्वामी हैं, वे समस्त दिशाओं में विचरण करते और स्वर्ग से समुद्र की ओर गमन करते हैं। यह सब जीवों की और पृथ्वी की रक्षा करते हैं ॥ ४१ ।

यह सूर्य और अश्वों पर अपने दो रूप बनाते हैं। यह पूज्यनीय, महिमामय, और रोचमान हैं। यह सुन्दर गमन शील सभी लोकों को दीप्यमान करने वाले है ॥ ४२ ॥

दिन रात्रियों के द्वारा सूर्य का एक रूप सामने आता और दूसरा चला जाता है। स्वर्ग पथ में गमन शील, अन्तरिक्ष निवासी सूर्य का हम आह्वान करते हैं ॥ ४३ ॥

जिनकी दृष्टि कभी क्षीण नहीं होती, पृथ्वी के पोषण-कर्ता और महिमामय सूर्य सभी ओर व्याप्त हैं। वे जगत के दृष्टा महान ज्ञानी और पूजने योग्य हैं। वे मेरे वचन को सुनें ।४४॥

पृथ्वी समुद्र और अन्तरिक्ष मे अपनी दीप्ति द्वारा व्याप्त

सूर्य सबके कर्मों के द्रष्टा है। उनकी कीर्ति सब ओर व्याप्त है। वे श्रेष्ठ विद्यावान और पूजनीय हैं। वे मे‹ वचनो को सुने ॥ ४५ ॥

गो की भाँति आने वाली उषा के समय यह अग्नि मनुष्य की समिधाओ द्वारा ज्ञातव्य होते हैं। इनकी उर्ध्वगामी किरणें स्वर्ग की ओर शीघ्रता से गमन करती है। मैं उन्ही सूर्य का आश्रय ग्रहण करता हूँ ॥४६॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—अध्यात्मम्, रोहित, आदित्य। छन्द -कृति, अष्टित्रिष्टुप्)

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापि कृत्वा भुवनानि वस्ते ।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिश षड्उर्वीर्या प्रतङ्गो अनु विचाकशीति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद्वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १ ॥
यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वास ब्राह्मण जिनाति ।
उद्वेपय रोहत प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २ ॥
यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा ।
उद् वेपय रोहित प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥३॥
यः प्राणेन द्याव पृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठर य पिपर्ति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एव विद्वांस ब्राह्मण जिनाति ।
उद्‌ वेपय रोहत प्रक्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ४ ॥
यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापति रग्निर्वैश्वानर. सह पङ्क्त्या श्रित. ।
य. परस्य प्राणं परमस्य तेज आहदे ।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥५॥
यस्मिन् षडुर्वी पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः ।
यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥६॥
यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ७ ॥
अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥८॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ९ ॥
यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु ।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १० ॥

इस द्यावा पृथ्वी को जिन्होंने उत्पन्न किया, जो समस्त लोकों को आवृत्त करते हैं जिनमें छः उर्वियाँ और दिशाएं स्थित हैं तथा जिन दिशाओं को वे ही दीप्यमान करते हैं, उन क्रोधित सूर्य का जो तिरस्कार करता है

या विज्ञ ब्राह्मण की हत्या करता है, उस ब्राह्मण को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करो तथा उसे क्षीण करते हुए बधन मे ग्रस्त कर लो ॥ १ ॥

जिस देवता के प्रभाव से ऋतु अनुसार वायु प्रवाहित होती है तथा समुद्र प्रभावित होते हैं ऐसे क्रोधित सूर्य का जो तिरस्कार करता या विज्ञ ब्राह्मण को हत्या करता है उस ब्रह्मज्य को ही हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और बन्धन मे ग्रसित करलो ॥ २ ॥

जो मनुष्य मे प्राण भरते है, जो मनुष्यो की हिंसा करते हैं, जिनके द्वारा सब प्राणी श्वास प्रश्वास लेते हैं, उन क्रोधित देवता का जो अपमान करता है, जो विद्वान ब्राह्मण की हत्या करता है उस ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो एव बन्धन मे बाँध लो ॥ ३ ॥

जो देवता, प्राण, आकाश एव पृथ्वी को तुष्ट करता और अपमान से समुद्र के पेट को पालता है उन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और बन्धन मे बाँध लो ॥ ४ ॥

जिसमे विराट परमेष्टी वैश्वानर-पक्ति, प्रजा और अग्नि सहित वास करते हैं, जिसने प्राण और श्रेष्ठ तेज को धारण किया है, उन क्रोध में भरे देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव। कम्पित करते हुए क्षीण करो बन्धन मे डालो ॥ ५ ॥

पाँच दिशाऐं, छ उर्वियाँ चार जल और यज्ञ के तीन अक्षर जिसके आश्रयभूत है, जो द्यावा पृथ्वी के मध्य में अपने

क्रुद्ध पूर्ण नेत्रो से देखता है, उन क्रोधवन्त रोहितदेव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने पाश मे बाँध लो ॥ ६ ॥

जो ब्रह्मण स्पति हैं जो अन्न के पालक और भक्षक भी हैं, जो भूत भवितव्य और भुवनो के स्वामी हैं उन क्रोधवन्त देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे र हित देव ! कम्पित करते हुए क्षीण करो और अपने पाश मे बाध लो ॥ ७ ॥

जिन्होने तीस दिन रात्रि का समूह बनाकर तेरहवें अधिक मास को बनाया, ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण से हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करो और उसे क्षीण करते हुए अपने पाशो मे बाँध लो ॥ ८ ॥

सूर्य की सुन्दर किरणे जल को सोख कर स्वर्ग को जाती और दक्षिणायन मे जल स्थान से वापिस होती हैं । उन क्रोधित देवता के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो एवं अपने बन्धन मे बाँध लो ॥ ९ ॥

हे कश्यप ! तुम्हारे रोचमान चित्रभानु मे सप्त सूर्य सयुक्त हैं । ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कार और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव । कम्पित करते हुए उसे क्षीण करो और अपने बन्धन मे बाध लो ॥ १० ॥

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तर प्रति गृह्णाति पश्चात्
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम् ।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ ११ ॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सध्रीची ।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम् ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १३ ॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १४ ॥

अयं स देवो अप्स्वन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।

यस्योर्ध्वा दिवं तन्वस्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः ।
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १८ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम् ।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ १९ ॥

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २० ॥

जिसके समान मति होकर वृहत आवृत्त करता और रथन्तर उसे धारण करता है, यह दोनो ही दीप्तियो से सदव आच्छादित रहते है । ऐसे क्रोधित देव के तिरस्कारक और

विद्वान ब्राह्मण की हिंसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करते हुए उसे क्षीण करो और अपने पाशो मे जकड लो ॥ ११ ॥

देवगणो द्वारा रोहित को जन्म देते समय ब्रहत एक ओर रथन्तर और दूसरी ओर से पक्ष हुआ। यह दोनो ही महान पराक्रमी और सध्रीची हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने पाशो मे जकड लो ॥ १२ ॥

वह वरुण सायकाल अग्नि होता और प्रात काल प्रकट होता हुआ सखा रूप हो जाता है। वह सविता रूप से अन्तरिक्ष मे और इन्द्र रूप से स्वर्ग मे प्रतिष्ठित होता है। ऐसे क्रोधवन्त देव के अपमान कर्ता एव विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो एव उसे अपने पाशो मे जकड लो ॥ १३ ॥

इस पाप विनाशक, स्वर्गगामी सूर्य के दोनो अयन सहस्रो दिवस तक नियम बद्ध रहते है। यह सब देवताओ को स्वय मे लीन करके सब जीवो को देखते हुए गमन करते हैं। ऐसे क्रोधित देव के तिरस्कारक एव विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो एव अपने पाशो मे जकड लो। १४ ॥

सब लोको को जिसने दीप्यमान किया वे देव जल मे निवास करते हैं। वही सहस्रो के मूल रूप और तीनो तापो से मुक्त अत्रि है। ऐसे क्रोधयुक्त देव का अपराधी एव विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान

करते हुए क्षीण करो एव उसे अपने पाशो मे जकड़ लो ॥ १५ ॥

स्वर्ग मे अपने तेज से प्रकाशित हुए सूर्य को उनकी तीव्र-गामिनी रश्मियाँ निर्मल रस प्राप्त कराती है, उनके उर्ध्व देह भाग रूप किरणें स्वर्ग को उष्णता प्रदान करती हैं और जो स्वर्णिम किरणो द्वारा प्रकाश फैलाते हैं उन क्रोधवन्त देव का अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशो मे जकड़ लो ॥१६॥

जिनसे प्रभावित होकर सूर्य के अश्व सूय का वाहन करते है और जिनसे प्रभावित होकर विज्ञजन यज्ञादि कर्मों की ओर प्रवृत्त होते हैं, जो एक ज्योति होते हुए भी अनेक रूप से दीप्यमान हैं। ऐसे क्रोधवन्त देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण के हिसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने बन्धन मे जकड लो। १७ ॥

खिसकने वाली किरणे अन्य दीप्तियो को तेजाहित करके रथ चक्र वाले सूर्य के रथ मे युक्त होती हैं। यह सूर्य सप्त ऋषियो द्वारा नमस्कार प्राप्त कर विचरण करते हैं। वह ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त, इन तीन ऋतुओ वाले वर्ष को बनाते है। सब लोक इसी काल के आश्रम मे रहते हैं। ऐसे इन क्रोधवन्त देवता के अपराध कर्ता और विद्वान ब्राह्मण की हिसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और उसे अपने बन्धन में बाँध लो ॥ १८ ॥

आठ प्रकार से प्रवाहित होने वाले वह्नि उग्र हैं वे देवताओ के पोषणकर्ता और वृद्धियो को उत्पन्न करते है और

जल का परिमाण करते हुए वायु समस्त दिशाओं को पवित्र करते हैं। ऐसे इन क्रोधवन्त देवता के तिरस्कार और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और पाशों से बांधो ॥ १९ ॥

गायत्री, अमृत गर्भ और समस्त दिशाओं में पूजनीय जल तन्तु को वायु शुद्ध करते है। उन क्रोधित देव के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव! कम्पायमान करते हुए तुम उसे क्षीण करो और अपने पाशों से बांधो ॥ २० ॥

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २३ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः।

तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २४ ।

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे स पश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठमानः ।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति ।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्या वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥

हे अग्ने ! हम तुम्हारी तीनों उत्पत्तियों से परिचित है। तुम्हारी तीन गतियाँ भस्म करने वाली है। हम तीनों लोकों और स्वर्ग के तीनों भदों को भी जानते हैं। ऐसे उन क्रोधित देवता के अपमान कर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने बन्धन मे जकड लो ॥ २१ ॥

जो उत्पन्न होकर भूमि को आवृत्त करता और जल को अन्तरिक्ष मे स्थित करता है ऐसे उन क्रोधित देव के तिरस्कारक और विद्वान ब्राह्मण की हिसा करने वाले ब्रह्मज्य को हे रोहित देव । तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और अपने बन्धनो मे उसे बांध लो ॥ २२ ॥

हे अग्ने ! तुम ज्ञान यज्ञो में प्रदीप्त किये जाते हो और स्वर्ग में अर्चन साधन रूप होते हो। क्या प्रश्निम तृक मरुद्गणो ने तुम्हारी उपासना की थी तथा वे देवता रोहित से मिले थे ? ऐसे उन क्रोधित देवता के अपमानकर्ता और विद्वान ब्राह्मण के

हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पित करते हुए क्षीण करो और उसे अपने पाशो से बाँध लो ।। २३ ।।

शक्ति प्रदाता, आत्म बल प्रेरक, जिनके बल की देवता पूजा करते है और जो प्राणमात्र के ईश्वर हैं, ऐसे क्रोधित देव के अपमानकर्ता और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान करते हुए क्षीण करो और उसे अपने पाशो मे बाँध लो ।। २४ ।।

एक पाद द्विपादो मे, द्विपाद त्रिपादो मे और फिर द्विपाद षट्पादो मे विक्रमण करता है, वे एक पादात्मक ब्रह्म की उपासना करते हैं। ऐसे उन क्रोधित देव के अपराधी और विद्वान ब्राह्मण के हिंसक ब्रह्मज्य को हे रोहित देव ! तुम कम्पायमान करते हुए उसे क्षीण करो और उसे अपने बन्धनो मे जकड लो ।। २५ ।।

काली निशा का पुत्र अर्जुन सूर्य हुआ वह आकाश में चढता है और वही रोहित रोहणशील पदार्थों पर आरूढ होता है ।। २६ ।।

सूक्त ४ (१) चौथा अनुवाक

(ऋषि– ब्रह्मा । देवता अध्यात्मम् । छन्द—अनुष्टुप् गायत्री, उष्णिक्)

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ।। १ ।।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृतः ।। २ ।।
स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ।। ३ ।।
सोऽर्यमा स वरुण स रुद्र. महादेव ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत· ।। ४ ।।

सो अग्नि स उ सूर्य स उ एव महायमः ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ५ ॥
त वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ६ ॥
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गण स एति शिक्याकृतः ॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा नवधा हिता ॥ १० ॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥
तमिद निगत सह स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

यही सूर्य आकाश के पृष्ठ पर दीप्यमान होते हुए पधारते है ॥ १ ॥

इन्होने अपनी किरणो से आकाश को आवृत कर लिया और वे किरणो से युक्त होकर उदय हो रहे हैं ॥ २ ॥

वही धाता, विधर्ता वायु और अच्छिद्र आकाश हैं ॥ ३ ॥

वही अर्यमा, वही वरुण वही रुद्र और वही महादेव हैं ॥ ४ ॥

वही अग्नि, वही सूर्य और वही महान यम हैं ॥ ५ ॥

एक सिर वाले दस वत्स उन्ही की पूजा करते हैं ॥ ६ ॥

वह प्रकट होते ही चमकने लगते हैं और पीछे से उनकी पूजनीय किरणे उनके चारो ओर व्याप्त हो जाती हैं ॥ ७ ॥

छीके के आकार वाला इनका एक ही गण मारुत आ रहा है ॥ ८ ॥

इन्होंने अपनी किरणों से आकाश को आवृत कर लिया है, यह महान इन्द्र के द्वारा किरणों से ढके हुए पधार रहे हैं ॥ ९ ॥

उनके विष्टभ नौ, कोश नौ, प्रकार से ही अवस्थित है ॥ १० ॥

वह चल अचल सब प्रजाओं के द्रष्टा और सभी के साक्षी हैं ॥ ११ ॥

यह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एक वृत्त अकेला एक है ॥ १२ ॥

सब देवता इन एक को ही वरण करते हैं ॥ १३ ॥

सूक्त ४ (२)

(ऋषि – ब्रह्मा । देवता — अध्यात्मम् । छन्द — त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप, गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १६ ॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १७ ॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १८ ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १९ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २० ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २१ ॥

सो अग्नि स उ सूर्य स उ एव महायम. ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ५ ॥
स वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ६ ॥
पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति ।
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत ॥ ७ ॥
तस्यैष मारुतो गण स एति शिक्याकृत. ॥ ८ ॥
रश्मिभिर्नभ आभृत महेन्द्र एत्यावृत । ९ ॥
तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा नवधा हिता ॥ १० ॥
स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।। ११ ॥
तमिद निगत सह. स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥
एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥

यही सूर्य आकाश के पृष्ठ पर दीप्यमान होते हुए पधारते है ॥ १ ॥

इन्होने अपनी किरणो से आकाश को आवृत कर लिया और वे किरणो से युक्त होकर उदय हो रहे हैं ॥ २ ॥

वही धाता, विधर्ता वायु और अच्छिूत आकाश हैं ॥ ३ ॥

वही अर्यमा, वही वरुण वही रुद्र और वही महादेव हैं ॥ ४ ॥

वही अग्नि, वही सूर्य और वही महान यम हैं ॥ ५ ॥

एक सिर वाले दस वत्स उन्ही की पूजा करते हैं ॥ ६ ॥

वह प्रकट होते ही चमकने लगते हैं और पीछे से उनकी पूजनीय किरणें उनके चारो ओर व्याप्त हो जाती हैं ॥ ७ ।

छीके के आकार वाला इनका एक ही गण मारुत आ रहा है ॥ ८ ॥

इन्होने अपनी किरणो से आकाश को आवृत कर लिया है, यह महान इन्द्र के द्वारा किरणो से ढके हुए पवार रहे हैं ॥ ९ ॥

उनके त्रिष्टभ नौ, कोश नौ, प्रकार से ही अवस्थित हैं ॥ १० ॥

वह चल अचल सब प्रजाओ के द्रष्टा और सभी के साक्षी हैं ॥ ११ ॥

यह सब उसे ही प्राप्त होता है, वह एक वृत्त अकेला एक है ॥ १२ ॥

सब देवता इन एक को ही वरण करते है ॥ १३ ॥

सूक्त ४ (२)

(ऋषि – ब्रह्मा । देवता – अध्यात्मम् । छन्द—त्रिष्टुप्, पक्ति, अनुष्टुप, गायत्री, उष्णिक्)

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ १४ ॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १५ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १६ ॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १७ ॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १८ ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ १९ ॥

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २० ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २१ ॥

कीर्ति, यश, आकाश जल, ब्रह्मतेज, अन्न और अन्न को पचाने को क्रिया उसे ही प्राप्त होती है जो इन एकवृत से परिचित है ॥ १४-१५ ॥

इन एक वृत का जानने वाला द्वितीय तृतीय या चतुर्थ नही कहलाता है ॥ १६ ॥

इन वृत का जानने वाला पचम षष्ठ या सप्तम नही कहलाता ॥ १७ ॥

जो इन एक वृत को जानता है, वह अष्टम या नवम् नही कहलाता ॥ १८ ॥

इन एक व्रत का जानने वाला चल अचल सभी का द्रष्टा होता है ॥ १९ ॥

यह अलौकिक एक वृत ही है, यह सब उसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

इनमे सभी देवता एक वृत कहलाते हैं ॥ २१ ॥

सूक्त ४ (३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द-त्रिष्टुप्, गायत्री, पक्ति, अनुष्टुप्)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चंस चान्न-चान्नाद्यं च य एत देवमेकवृत वेद ॥ २२ ॥

भूत च भव्य च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥

य एत देवमेकवृत वेद ॥ २४ ॥

स एव मृत्यु सोमृतं सोभ्यव स रक्षः ॥ २५ ॥

स रुद्रो वसुवनिवसुर्देये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहित ॥ २६ ॥

तस्येमे सवे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥

तस्यानू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥

ब्रह्म, तप, कीर्ति, यश जल, आकाश ब्रह्मतेज अन्न और अन्न पचाने की क्रिया ।। २२ ।।

भूत भविष्य श्रद्धा रुचि स्वर्ग और स्वधा ।। २३ ।।

एक वृत के जानने वाले को उक्त सभी प्राप्य है ।। २४ ।।

वही मृत्यु अमृत, अम्व और वही राक्षस है ।। २५ ।।

वही रुद्र, वसुओ मे वसुवानि और नमस्कार युक्त वाणी मे वषट्कार है ।। २६ ।।

सभी कष्टो को देने वाले भी उनकी ही आज्ञा मे चलते हैं ।। २७ ।।

चन्द्रमा सहित यह सब नक्षत्र भी उसी के अधीन रहते हैं ।। २८ ।।

सूक्त ४ (४)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ।। २९ ।
स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत । ३० ।।
स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ।। ३१ ।।
स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ।। ३२ ।।
स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ।। ३३ ।।
स वै दिग्भ्योऽजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ।। ३४ ।।
स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ।। ३५ ।।
स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ।। ३६ ।।
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ।। ३७ ।।
स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ।। ३८ ।।
स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ।। ३९ ।।

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥
स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥
पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥
यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥ ४३ ॥
तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्व शतम् ॥ ४४ ॥
उपो ते बद्धे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥

वह दिन से तथा दिन उनसे उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥

रात्रि भी उनसे प्रकट हुई तथा वे रात्रि से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥

अन्तरिक्ष उनसे उत्पन्न हुआ, तथा वे अन्तरिक्ष से प्रकट हुए ॥ ३१ ॥

वायु से वे प्रकट हुए तथा वायु उनसे उत्पन्न हुआ ॥३२॥

आकाश से वे प्रकट हुए और आकाश उनसे प्रकट हुआ ॥ ३३ ॥

दिशाओं से वे उत्पन्न हुए और उनसे दिशाऐं उत्पन्न हुई ॥ ३४ ॥

पृथ्वी उनसे प्रकट हुई और वे पृथ्वी से प्रकट हुए ॥३५॥

अग्नि से वे उत्पन्न हुए और उनसे अग्नि उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥

जल उनसे प्रकट हुआ और वे जल से प्रकट हुए ॥ ३७ ॥

वे ऋचाओं से उत्पन्न हुए तथा ऋचाऐं उनसे उत्पन्न हुई ॥ ३८ ॥

यज्ञ से वे उत्पन्न हुए तथा उनसे यज्ञ प्रकट हुआ ॥ ३९ ॥

यज्ञ उनका है वे यज्ञ एव यज्ञ के शीर्ष रूप हैं ॥ ४० ॥

वही चमकते और कड़कते हैं, वही उपल गिराते हैं ॥४१॥

तुम दुष्टों को सज्जन पुरुषों को, राक्षसों को और औषधियों को उत्पन्न करते हो, मंगलमयी वृष्टि रूप में बरसते और उत्पन्न हुओं की वृद्धि करते हो ॥ ४२ ४३ ॥

तुम मघवन हो, तुम सैकड़ों शरीरों से मुक्त हो और महिमा द्वारा महान हो ॥ ४४ ॥

तुम सैकड़ों बँधे हुओं के बाँधने वाले तथा अन्त रहित हो ॥ ४५ ॥

सूक्त ४ (५)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्)

भूयानिन्द्रो नमुराद् भूयानिन्द्रासि मृत्युभ्यः ॥ ४६ ॥
भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरिति-त्वोपास्महे वयम् ॥ ४७ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४८ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ४९ ॥
अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५० ॥
अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५१ ॥

वे इन्द्र नमुर से महान हैं। हे इन्द्र ! तुम मृत्यु के कारणों से भी श्रेष्ठ हो ॥ ४६ ॥

हे इन्द्र ! तुम दान प्रतिबंधिका शक्ति से भी उत्कृष्ट हो,

तुम परम ऐश्वर्यवान और अधिपति हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ४७ ॥

हे इन्द्र! मुझे कीर्ति, तेज और ब्रह्मतेज से देखो। तुमको नमस्कार है ॥ ४८-४९ ॥

जल, पौरुष, महत्ता और सपन्नता के रूप मे हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥ ५० ॥

जल, अरुण, रजत, रज और सहरूप मे हम तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम हमको अन्नवान होकर देखो। हम तुम्हे नमस्कार करते है ॥ ५१ ॥

सूक्त ४ (६)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता-अध्यात्मम् । छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, वृहती)

उरुः पृथु सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५२ ॥
प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ।
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ।
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५३ ॥
भवद्वसुरिदद्वसु. सयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ॥ ५४ ॥
नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५६ ॥

उरु, प्रथु, सुभू और भुव रूप में हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ५२ ॥

प्रथ, वर, व्यच तथा लोक रूप मे हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ५३ ॥

भवद्वसु, इदद्वसु, सयद्वसु और आयद्वसु के रूप म हम तुम्हारी पूजा करते हैं ।। ५४ ।।

हे इन्द्र ! मुझे अन्न, यश, तेज और ब्रह्मतेज से देखो। तुम्हारे निमित्त मैं नमस्कार करता हूँ ।। ५५-५६ ।।

।। त्रयोदश काण्ड समाप्तम् ।।

चतुर्दश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि - सावित्री सूर्या । देवता—आत्मा, सोम, विवाह, वधूवास सस्पर्शमोचनम्, विवाहमन्त्राशिष । छन्द—अनुष्टुप्, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् जगती, जगती, बृहती, उष्णिक्)

सत्येनोत्तभिता भूमि सूर्येणोत्तभिता द्यौ ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥
सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहित ॥ २ ॥
सोम मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योषधिम् ।
सोम य ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिव ॥ ३ ॥
यत् त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुन ।
वायु सोमस्य रक्षिता समाना मास आकृति ॥ ४ ॥
आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

रम्यासीदनदेयी नाराशमी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन् प्रतिधय कुरीर छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः । ८ ॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् प ये शमन्तीं मनसा सवितादद्दात् ॥ ९ ॥
मनो अस्या अन आसीत् द्यौरासीदुत च्छदि ।
शुक्रावनडवाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् । १० ॥

सत्य के कारण ही पृथ्वी सूर्य और आक श मे चन्द्रमा स्थित हैं। सूर्य से आकाश स्थित है ॥ १ ॥

सोम के कारण यह पृथ्वी उपासनीय है उन्ही से सूर्य वलयुक्त है । इसीकारण यह सोम नक्षत्रों के समीप स्थित हैं ॥ २ ॥

जो सोमरूप औषधि को पीसकर पीते हैं वे अपने को सोमपायी समझते है। यह सोमयाग ही सोम नही है। ज्ञानीजन जिस सोम के ज्ञाता हैं, उसे साधारण प्राणी भक्षण नही कर सकते ॥ ३ ॥

हे सोम ! लोग तुम्हारा पान करते हैं फिर भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहते हो। सवत्सरो से मास रूप वायु इस सोम का रक्षण करता है ॥ ४ ॥

हे सोम ! बृहती छन्दात्मक कर्मों से तथा अाच्छद विधानो से तुम रक्षित हो, और सोम कूटने के पापाण के शब्द से स्थिर होते हो। ससारी जीव तुम्हारा सेवन करने मे असमर्थ हैं ॥ ५ ॥

जब सूर्या पति के निकट पहुँची, तब ज्ञान उपबर्हण, चक्षु अभ्यजन और द्यावा पृथ्वी कोश बने ॥ ६ ॥

न्योचिनी रैभ्या सूर्या के साथ गई। वह गाथाओ से सजकर सूर्या के वस्त्रो को लेकर चलती थी ॥ ७ ॥

उस समय छन्द स्त्रीत्व के लक्षण केश जाल बने स्तुतियाँ प्रतिधि हुए, अग्नि पुरोगव और अश्विनीकुमार सूर्या के पति हुए ॥ ८ ॥

पति की इच्छा रखने वाली सूर्या को जब सूर्य ने प्रदान किया तो सोम वधूयु हुए और अश्विनीकुमार वर हुए ॥ ९ ॥

जब सूर्या का पति से साक्षात्कार हुआ तब मन रथ हुआ, शुभ्रना वृषभ तथा द्यो गृह हुए ॥ १० ॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावा त सामनावतास्म ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचर ॥ ११ ॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत. ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयति पतिम् ॥ १२ ॥

सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघास हन्यन्ते गाव फल्गुनीषु व्यूह्यान ॥ १३ ॥

यदश्विना पृच्छामानावयात त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
क्वैक चक्र वामासीत क्वदेष्ट्राय तस्थथु ॥ १४ ॥

यदयात शुभस्पती वरेय सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वाम जानन् पुत्र पितरमवृणीत पूषा ॥ १५ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदु ।
अथैक चक्र यद्ग ग_ा तदद्धातव इद् विदु ॥ १६ ॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धु पतिवेदनम्
उर्वारुकामिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुत ॥ १७ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामत सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयामिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

**प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योन ते अस्ते सहस
म्भलायै ॥ १९ ॥
भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्व विदथमा
वदासि ॥ २० ॥**

ऋक साम से अभिहित दो गो-साम प्राप्त हुए। आकाश के मार्ग ने उन्हे तेरे कान बनाया ॥ ११ ॥

हे सूर्य ! दीप्यमान सूर्य और चन्द्रमा चक्र तथा व्यान अक्ष बने। तब तू मनस्मय रथ पर चढ़ कर स्वामी गृह को गमन करने लगी ॥ १२ ॥

सविता ने सूर्या को दहेज दिया। फाल्गुनी नक्षत्र मे वृषभो से रथ को वहन कराया जाता तथा मघा नक्षत्र मे उन्हे चलाया जाता है ॥ १३ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! जब तुम सूर्याका वहन करनेके लिए अपने तीन चक्र वाले रथ से पधारे थे जब तुमसे प्रश्न किया गया था कि तुम्हारा एक पहिया कहाँ है ? तुम अपने अपने कर्मो मे व्यस्त हुओ मे से किनके पास ठहरे थे ? हे अश्विनी कुमारो ! सूर्या को उत्कृष्ट जान कर जब तुम उससे विवाह करने को पधारे तब विश्वेदेवों ने तुम्हे जाना और नरक से रक्षा करने वाले सूर्य ने पालक का वरण किया ॥ १५ ॥

हे सूर्य ! तेरे दोनो पहिए ऋतु अनुसार ब्राह्मणो द्वारा जाने जाते हैं। तेरे एक गूढ चक्र के जानने वाले विद्वान ही है ॥ १६ ॥

श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवो से युक्त रखने वाले और पति प्राप्त कराने वाले अर्यमा देव को हम उपासना करते है। ककडी के

डठल से पृथक होने के समान मैं इस कन्या को यहाँ प्रथक करता हूँ परन्तु इसे पतिकुल से अलग नही करता ॥ १७ ॥

मैं इसे अलग करता हूँ, पतिकुल से भली भाँति युद्ध करता हूँ। हे इन्द्र! यह कन्या सौभाग्य शालिनी और श्रेष्ठ पुत्री हो ॥ १८ ॥

सूर्य ने जिस वरुण पाश से तुझे बाँध रखा था, मैं तुझे उससे युक्त करता हूँ। तू मिष्ट भाषिणी, सत्य रूप, उत्कृष्ट कर्मो के फल वाले लोक मे सुखी हो। १६ ॥

सौभाग्य प्रदत्ता भग देव तेरा कर पकड कर और अश्विनीकुमार तुझे रथ मे ले जाँय। तू अपने गृह को प्राप्त कर, पोषण करने वाली तथा सबको अपने अधीन करने वाली हो तथा मधुर भाषिणी रहे ॥ २० ॥

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्व स स्पृशस्वाथ जिर्विविदथमा वदासि ॥ २१ ॥
इहैव स्त मा वि योष्ट विश्वमायुर्व्यश्नतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदयानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥
पूर्वापर चरतो मायथैतो शिशू क्रीडन्तौ परि यातार्णवम्
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूं रन्यो विदधज्जायसे नवः ॥ २३ ॥
नवोनवो भवसि जायमानोऽह्ना केतुरुषसामेष्यग्रम्।
भाग देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २४ ॥
परा देहि शामुल्य ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥
नीललोहित भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातय पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥
अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद् वध्वो वासस स्वमङ्गमभ्यूर्णुते ॥ २७ ॥

आशसन विशसनमथो अधिविकर्त्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति ॥ २८ ॥
तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥
स इत् तत् स्योन हरति ब्रह्मा वास सुमङ्गलम् ।
प्रायश्चित्ति यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥

तू अपने गृह मे गार्हपत्य अग्नि के लिए सचेष्ट रहे । अपने इस पति स्पर्श करने वाली हो । तेरी सन्तान के लिए प्रिय पदार्थ प्रवृद्ध हो । तू पूर्णायु पर्यन्त बोलने वाली हो । २१ ॥

तुम दोनो साथ रहो कभी पृथक न हो जीवन पर्यन्त अनेक भाँति के भोजन तुम्हे प्राप्त होते रहे । अपनी सन्तति के साथ क्रीडा रत हो तथा कल्याण से युक्त होते हुए सदा प्रसन्न रहो ॥ २२ ॥

यह सूर्य और चन्द्रमा शिशु क्रीडा सदस्य पूर्व पश्चिम मे गमन करते हैं । इनमे से एक लोको को देखता हुआ ऋतुओ को उत्पन्न करता और नये रूप से उदय होता है ॥ २३ ॥

हे चन्द्र ! तुम मास मे स्थित हुए सर्वदा नूतन ही हो । अपनी कला को घटाते बढाते प्रतिपदा आदि तिथियो को बनाते हो । तुम उषाकाल मे सबसे आगे आकर देवगणो को भाग देते और दीर्घ जीवन प्रदान करते हो ॥ २४ ॥

यह कृत्यासी पति मे प्रविष्ट होती है । हे वर ! तुम शामुल्य देते हुए ब्राह्मण को धन दो ॥ २५ ॥

इस नीले लाल वस्त्र मे कृत्या को आसक्ति उद्भूत होती है । इस वधू के प्रियजन समृद्ध होते है किन्तु पति की समृद्धि अवरुद्ध हो जाती है ॥ २६ ॥

वधु के वस्त्र से अपने को आवृत करने वाला पति पाप दोष का भागी होता है और उसका शरीर घृणा स्पद हो जाता है ॥ २७ ॥

आशसन, विशसन, और आधी विकर्त्तन सूर्या के इन रूपो का अवलोकन करो इन्हे ब्रह्मा ही सुशोभित करता है ॥ २८ ॥

यह वस्त्र प्यास लगाता है, कटु है अपाष्ठवद् है और विष तुल्य है। सूर्या का ज्ञाता ब्रह्मा ही वधु के वस्त्र के योग्य है ॥ २९ ॥

जिस वस्त्र से प्रायश्चित होता है, जिससे पत्नी मरती नही, उस कल्याणकारी वस्त्र का धारण करने वाला ब्रह्मा है ॥ ३० ॥

युव भग स भरत समृद्धमृतं वदन्ताबृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु सभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

इहेदसाथ न परो गमाथेम गाव प्रजया वर्धयाथ।
शुभ यतीरुस्त्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवा क्रन्निह वो मनासि ॥ ३२ ॥

इम गावः प्रजया स विशाथाय देवाना नं मिनाति भागम्।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥ ३३ ॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो देभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
स भगेन समर्यम्णा स धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम्।
यद् गोस्वश्विना वचस्तेनेमा वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमा वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान् ।। ३७ ।।
इदमहं रुशन्तं ग्राभं तनूदूषिमपोहामि ।
यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि ।। ३८ ।।
आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नी रुदजन्त्वापः ।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन् प्रतीक्षन्ते श्वसुरो देवरश्च ।। ३९ ।।
शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म ।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं सं स्पृशस्व ।। ४० ।।

तुम दोनो सत्य भाषण करते हुए सौभाग्यशाली होओ । हे ब्रह्मणस्पते ! तुम इसके लिए पति को स्वीकार करो और वह भी अपनी अनुमति प्रकट करो ।। ३१ ।।

तुम मत जाओ, यहाँ बैठो, यह मंगल मयी गौ हैं । तुम दोनो ही सन्तान से प्रवृद्ध हो, विश्वे देवता तुम्हारे मनो को पवित्र बनावे ।। ३२ ।।

यह गौऐं इसे प्राप्त हो । इस देवभाग को बँटवारा नही होता । तुम्हे पूषा मरुद्गण धाता और सविता देव भी इसको प्रेरित करे ।। ३३ ।।

जिन पथो से हमारे मित्रगण गमन करते हैं, वे मार्ग निष्कटक और सुगम हो । धाता तुम्हे तेज और सौभाग्य प्रदान करे ।। ३४ ।।

जो तेज गौओ मे, पाशो मे और सुरा मे है उस तेज से हे अश्विद्वय ! तुम इसके रक्षक बनो ।। ३५ ।।

हे अश्विनीकुमारो ! जिस तेज से सुरा और पाशो का अभिसिचन हुआ और जिस वर्च से जवन महानन्या का, उस तेज से मेरी रक्षा करो ।। ३६ ।।

जो ज्वलित न होकर भी जलो मे हिसक कर्मो से सपन्न हैं, जिसकी यज्ञो मे ब्राह्मण स्तुति करते है और जो जलो के पोपक है ऐसे तुम मधुर जलो को प्रदान करो, इसी के द्वारा इन्द्र देव वृद्धि को प्राप्त होते है ।। ३७ ॥

शरीर को दूषित करने वाले मल को मैं पृथक करता हूँ और कल्याणकारी शोधनीय पदार्थों को ग्रहण करता हूँ ।। ३८ ।।

ब्राह्मण इसके स्नान करने के निमित्त जलो को लावें। वीरो को सहार करने वाले जल इसे प्राप्त हो । हे पूषा देव ! अर्यमा से यह अग्नि प्राप्त करे । इसके ससुर और देवर इसकी प्रतीक्षा मे हैं ।। ३९ ।।

हे वधु ! तेरे लिए जल मगलमय हो, सुवर्ण सुखकारी हो आक्रोश सुखदाता हो, तू मगल प्राप्त करती हुई अपने पति शरीर का स्पर्श कर ॥ ४० ।।

खे रथस्य खेऽनस. खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणो. सूर्यत्वचम् ।। ४१ ।।
आशासाना सौमनस प्रजा सौभाग्य रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा स नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥
यथा सिन्धुर्नदीना साम्राज्य सषुवे वृषा ।
एवा त्व सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्त परेत्य ॥ ४३ ।।
सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषु ।
ननान्दु समाज्ञ्येधि सम्राज्युत श्वश्र्वा ।। ४४ ।।
या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्तॉं अभितोऽददन्त ।
तास्त्वा जरसे स व्ययन्त्वायुष्मतीद परि धत्स्व वास ।। ४५ ।।
जीव रुदन्ति वि नयन्त्यध्वर दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः

वाम पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे ।। ४६ ॥

स्योन ध्रुव प्रजायै धारयामि तेऽश्माम देव्या पृथिव्या उपस्थे ।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयु सविता कृणोतु ।। ४७ ।।

येनाग्निरस्या भूत्या हस्त जग्राह दक्षिणम् ।
तेन गृह्णामि ते हस्त मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया धनेन च ।। ४८ ।।

देवस्ते सविता हस्त गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु ।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टि कृणोतु ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथास ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्य त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।। ५० ।।

हे शतकर्मा इन्द्र ! रथाकाश मे तीन बार शोधित करके मैंने अपाला को सूर्य के समान चमकती हुई त्वचा से युक्त किया है ।। ४१ ।।

तू सन्तान धन सौभाग्य और सुख की इच्छा रखने वाली होकर पति के अनुकूल रह और इस अमृतमय सुख को अपने अधीन कर । ४२ ।।

अमृत की वृष्टि करने वाला समुद्र नदियो के राज्य को पाता है, उसी भांति तू पतिगृह को प्राप्त कर महारानी के समान हो ।। ४३ ।।

तू ससुर देवर ननद और सास सभी मे महारानी बन कर रह ।। ४ ।।

जिन स्त्रियो ने इस वस्त्र को कात बुन कर तैयार किया है, वे रमणियां मुझे जरावस्था वाली बनावे । हे आयुष्मती ! तू इस वस्त्र को धारण कर ।। ४५ ।।

कन्या रूप यज्ञ को जब पुरुष ले जाते है, सन्तान रूपक तनु वाला पुरुष कन्या का दुख करता है और कन्यापक्ष के प्राणी उसके लिए रुदन करते है। हे वधु ! इसे करने वाले पितरो को विमुख करते हैं। अत तू ससुर आदि वर पक्ष और मास पक्ष का आलिगन कर ॥ ४६ ॥

मैं इस पाषाण को पृथ्वी पर स्थापित करता हूँ। तू शोभनीय रूप वाली, सबको प्रसन्न करने वाली इस पाषाण पर आसीन हो। सविता देव तुझ दीर्घ आयु प्रदान करे ॥ ४७ ॥

हे पत्नी ! जिस कारण अग्नि ने इस भूमि के सीधे हाथ को ग्रहण किया है उसी भाँति मैं तेरे कर को पकडता हूँ। तू दुखित न हो, मेरे साथ सन्तान और धन, सहित निवास कर ॥ ४८ ।

सविता देव तेरे हाथ को ग्रहण कर, सोम तुझे सन्तानवती बनावे, अग्नि तुझे सौभाग्य प्रदान करते हुए जरावस्था तक पति के साथ जीवन यापन करने वाली बनावे । ४९ ॥

हे वधु ! तू मेरे साथ जरावस्था तक जीवन यापन करने वाली हो। इसलिए मै तेरे हाथ को पकडता हूँ। तू सौभाग्य शालिनी हो। भग अर्यमा सविता और लक्ष्मी ने तुझे गृहस्थ धर्म के लिए मुझे प्रदान किया है ॥ ५० ॥

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाह गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥
ममेयमस्तु पोष्या मह्य त्वादाद् बृहस्पति ।
मया पत्या प्रजावति स जीव शरद शतम् ॥ ५२ ॥
त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे क बृहस्पते प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमा नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्ता प्रजया ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रवरुणा भगो अश्विनोभा ।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमा नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिः प्रथम सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारी पत्ये स शोभयामास ॥ ५५ ॥

इद तद्रूप यदवस्त योषा जाया जिज्ञासे मनसा चरन्तीम् ।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वै क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६ ॥

अह वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वय श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वावध्नात् सविता सुशेवाः ।
उरु लोक सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्य सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमा नारी सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥ ५९ ॥

भगस्ततक्ष चतुर पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥

सुकिंशुक वहतु विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृत सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पतिभ्यो वहतु कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥

अभ्रातृघ्नी वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्य सवितर्वह ॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्ट कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।
शालाया देव्या द्वारं स्य न कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ।

अनाव्याधा देवपुरा प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥

हे जाये ! तू धर्म पूर्वक मेरी पत्नी है और मै तेरा पति हू क्यो कि भग और सूर्य ने तेरा हाथ ग्रहण किया है ॥ ५१ ॥

वृहस्पति ने तुझे मुझे प्रदान किया है। तू मेरे साथ रहती हुई सन्तानवती हो और शतायु पर्यन्त मेरी पोष्या रह ॥ ५२ ॥

हे शुभे ! त्वष्टा ने इस मगलमय वस्त्र को वृहस्पति के आदेश से बनाया। सविता और भग देवता सूर्या के समान ही इस स्त्री को इस वस्त्र द्वारा सन्तान आदि से पूर्ण करें ॥ ५३ ॥

अश्विद्वय, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, द्यावा पृथ्वी वृहस्पति, वायु मरुद्गण ब्रह्म और सोम देवता इस स्त्री को सन्तान आदि से सपन्न करे ॥ ५४ ॥

हे अश्विद्वय ! वृहस्पति ने सूर्या के सिर का केश विन्यास किया था, उसी भाँति हम वस्त्रादि द्वारा इस स्त्री को पति के लिए अलकृत करते हैं ॥ ५५ ॥

इस रूप को योषा धारण करती है। मैं योषा से परिचित हूँ। मैं इसकी नूतन चाल वाली सखियो के अनुसार चलूँगा। यह केशो का सँवारना किस विद्वान ने किया ? ॥ ५६ ॥

मैं इसके मन रूपी हृदय को जानता हुआ और इसके सौन्दर्य का अवलोकन करता हुआ अपने से आवद्ध करता हूँ। मै चौर्य कर्म नही करता। स्वय मन लगाकर केशो को सँवारता हुआ वरुण-पाशो से मुक्त करता हूँ ॥ ५७ ॥

जिस सविता ने तुझे वरुण पाश मे बाँधा है, उससे मैं

तुझे पृथक करता हूँ। हे जाये ! मैं तेरे साथ ससार के इस व्यापक पथ को सुगम बनाता हूँ ।। ५८ ।

जल पदान करो राक्षसो का सहार करो इस स्त्री को शुभ कार्य मे स्थित करो। धाता ने इसे पति प्रदान किया है, विद्वान भग इसके सन्मुख हो ।। ५९ ।।

भग ने इसके चारो पद और चारो उपालो को निर्मित किया, मध्य मे वध्रो को रचा वे हमारे लिए कल्याणकारी हो ।। ६० ।।

हे वधु ! तू वरणीय, दीप्तमान, श्रेष्ठ रूप से प्रज्वलित दहेज पर आरोहण कर और इसे पति और उसके पक्ष के सब पालको के लिए शुभकारी बना ॥ ६१ ॥

हे वृहस्पते ! हे इन्द्र ! हे सविता देव ! इस वधु का भाई पति पशु आदि को नष्ट करने वाली न बनाओ । इसे पुत्र 'धन आदि से सपन्न रूप मे हमे प्राप्त कराओ । ६२ ।।

हे देव ! इस वधु को ले जाने वाले रथ को हानि न पहुँचाओ, हम शाला के द्वार पर इस वधु के मार्ग को मगलमय बनाते है ॥ ६३ ।।

आगे पीछे भीतर बाहर मध्य मे सब ओर ब्राह्मण रहे। तू देवताओ के निवास वाली रागविहीन शाला को प्राप्त हो और स्वामी गृह मे सौभाग्यवती होती हुई प्रसन्नता से जीवन यापन कर ।। ६४ ।।

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—सावित्री सूर्या। देवता—आत्मा, यक्ष्मनाशनी, दम्पत्यो परिपन्थिनाशनी, देवा । छन्द—अनुष्टुप, जगती, अष्टि, त्रिष्टुप्, वृहती, गायत्री पक्ति, उष्णिक्, शक्वरी)

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्या वहतुना सह ।
स न पतिभ्यो जाया दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अरंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां
अशीमहि ॥ ५ ॥

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्यम् ।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं
हतम् ॥ ६ ॥

या ओषधयो या नद्यो यानि क्षेत्राणि या वना ।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः ॥ ७ ॥

एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम् ।
यस्मिन् वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु ॥ ८ ॥

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दम्पती वाममश्नुतः ।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः ।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुह्यमानम् ॥ ९ ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनां अनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ १० ॥

हे अग्ने ! दहेज के साथ सूर्या को तुम्हारे लिए ही लाये थे । तुम हमको सन्तानशालिनी पत्नी प्रदान करो ॥ १ ॥

अग्नि ने आयु और तेज के सहित हमे पत्नी प्रदान की है इसका पति दीर्घ आयु वाला हो और वह शतायुष्य हो। २।

तू पहले सोम की पत्नी हुई, फिर गन्धर्व की और अग्नि तेरा तीसरा पति हुआ। मैं मनुष्य रूप मे तेरा चौथा पति हूँ ॥ ३ ॥

सोम ने तुझे गन्धर्व को दिया गन्धर्व ने अग्नि को तथा अग्नि ने तुझे मुझे दिया तथा धन पुत्रो से भी सपन्न किया ॥ ४ ॥

हे उपा कालीन वैभव वाले अश्विद्वय ! तुम्हारे हृदय मे जो अभीष्ट रहते हैं वह तुम्हारी अनुग्रह पूण बुद्धि द्वारा इसको प्राप्त हो। तुम हमारे प्रिय तथा रक्षक बनो। हम सूर्य के अनुग्रह स घरो मे भोग करने वाले हो ॥ ५ ॥

तुम शोभनीय मन वीरो से युक्त धन का पोषण करो। हे अश्विद्वय ! तुम इस तीथ को सफल करते हुए मार्ग से प्राप्त दुमति आदि को पृथक कर दो ॥ ६ ॥

हे वधु ! औषधि नदी क्षेत्र और वन तुझे सन्तान वती बनाने मे योग दे और तेरे स्वामी को दुष्टजनो से रक्षा करें ॥ ७ ॥

हम इस कल्याणमय वाहन वाले पथ पर गमन करते है इसमे वीरो का क्षय नही होता अपितु अन्यो का धन प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

पुरुपो ! मेरी वात सुनो, वनस्पतियो मे गन्धर्व हैं अप्सरायें हैं, वे इमे सुखकारी हो और इस दायक रूप धन को विनष्ट न करें। इन आशीर्वादत्मक वाणी से यह दोनो उत्तम पदार्थों का उपभोग करें ॥ ९ ॥

चन्द्रमा के समान प्रसन्नता प्रदान करने वाले दायद की ओर जो विनाशक साधन आते है वे जहाँ से आते हो, वही उन्हे यज्ञीय देवगण पहुँचावे ॥ १० ॥

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातय ॥ ११ ॥

स काशयामि वहतु ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्ध विश्वरूपं यदस्ति स्योन पतिभ्यः सविता त । कृणोतु ॥ १२ ॥

शिवा नारीयमस्तमागन्निम धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापति प्रजया वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम ।
सा वः प्रजा जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेत ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराड स विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

उद् व ऊर्मि शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा स त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्य. सुयमा सुवर्चा ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्नि गार्हपत्य सपर्य ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठेत· किमिच्छन्तीदमागा अह त्वेडे अभिभू स्वाद् गृहात ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रस्था ॥ १९ ॥

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्नि वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

दम्पत्ति के समीप आने की कामना रखने वाले दस्यु इन्हे प्राप्त न कर सके। हम इस कठिन मार्ग को आसानी से पार करे और हमारे शत्रुओ को बुरी गति प्राप्त हो ॥ ११ ॥

मै दायद को मन्त्रो नेत्रो और नक्षत्रो के द्वारा प्रकाशित करता हू। इसमे अनेक प्रकार के जो पदार्थ है उन्हे सविनादेव प्राप्त करने वालो को सुखकारी बनावे। १२ ॥

इस नारी के लिए धाता ने ग्रह रूप लोक का निर्माण किया है। यह कल्याणी इसे प्राप्त हो गई है। इस वधु को अश्विद्वय अर्यमा भग और प्रजापति सन्तान से सम्पन्न करें ॥ १३ ॥

हे पुरुष! तू उस उर्वरा नारी मे बीजा रोपण कर। ऋषभ के समान तेरे वीर्य और दूध को धारण करती यह तेरे निमित्त सन्तान उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

हे सरस्वति। तू विष्णु के समान विराट है इसलिए तू प्रतिष्टत हो। हे सिनीवाली! तू भग देवता की सुन्दर मति मे रहती हुई सन्तानोत्पत्ति कर ॥ १५ ॥

हे जलो! अपने कर्म की तरगो को शान्त करो, लगामो को ढीला करो। यह श्रेष्ठ कर्म वाले अवधनीय वाहन 'अशुन' न करने लगें ॥ १६ ॥

हे वधु। तू कोमल दृष्टि रखते हुए पति को क्षीण न करने वाली है। तू वीर पुत्रो को जन्म देती हुई और मन मे प्रमोद मनाती हुई एव सब के लिए सुखकारी होती हुई इस घर को प्राप्त हो। हम भी तेरे द्वारा प्रवृद्ध हो ॥ १७ ॥

हे वधू! पति और देवरो को हानि न पहुँचाने वाली, पशुओ को हितकारी, प्रजावती, शोभनीय छटा वाली, सुखकारी

होती हुई देवरों का अहित न सोचने वाली होती हुई तू अग्नि की उपासना करे। १८।

हे निर्ऋते! यहाँ से उठकर भाग। तू किस वस्तु की कामना लेकर यहाँ आई है? मैं तुझे अपने गृह से भगाता हुआ तेरा सन्मान करता हूँ। तू शत्रु रूपिणी शून्य की इच्छा लेकर यहाँ उपस्थित हुई है परन्तु तू यहाँ आनन्द न कर॥ १९॥

गृहस्थ रूप आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व यह वधू अग्नि की आराधना कर रही है। हे स्त्री! अब तू सरस्वती को और पितरों का नमस्कार कर॥ २०॥

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्॥ २१॥
यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥ २२॥
उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु॥ २३॥
आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एष॥ २४॥
वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान्॥ २५॥
सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्॥ २६॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥ २७॥
सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्मै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन॥ २८॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै स दत्ताथास्त विपरेतन ॥ २९ ॥

रुक्मप्रस्तरण वह्य विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥ ३० ॥

इस स्त्री के लिए मृगचर्म निर्मित आसन मे मगल और रक्षा को स्थापित कर। यह भगदेव इससे प्रसन्न रहे। हे सिनी वालि ! यह स्त्री सन्तान उत्पन्न करती रहे ॥ २१ ॥

तुम्हारे द्वारा रखे गये तृण और मृगचर्म पर यह प्रजावती और पति को कामना करने वाली नारी आसीन हो ॥ २२ ॥

रोहित मृगचर्म पर 'बल्वज' को विस्तृत करो, उस पर आसीन होकर यह प्रजावती स्त्री अग्नि देव की उपासना करें ॥ २३ ॥

हे नारी ! इस मृगचर्म पर आसीन होकर अग्निदेव के समीप बैठ। यह देवता समस्त दिशाओ का सहार करने मे समर्थ है। तू इस गृह मे अपनी प्रथम सन्तान को उत्पन्न कर जो तेरा सबसे बडा पुत्र कहा जायेगा ॥ २४ ॥

इस माता से अनेक पुत्र उत्पन्न होकर गोद मे बैठे। हे कल्याणमयी स्त्री ! तू अग्नि के समीप बैठकर इन समस्त देवताओ को शोभायमान बना ॥ २५ ॥

तू मगलमयी, पति को सुखकारी, गृह कार्य मे कुशल, सास और श्वसुर की सेवा करती हुई गृह मे प्रविष्ट हो ॥२६॥

तू पति के लिए सुखकारी हो घर के लिये कल्याण कारी हो, श्वसुर के लिए भी मगलमयी हो। तू सब सन्तानो को सुख प्रदान कर और उनका पालन करने वाली हो ॥२७॥

यह वधु मगलमयी है सब एकत्र होकर इसे देखो।

इसके अभीभाग्य को दूर करते हुए सौभाग्य प्रदान करो ॥ २८ ॥

कुत्सित विचारों वाली स्त्रियाँ तथा वृद्धाएं इसे तेज प्रदान करती हुई चली जांय ॥ २९ ॥

मन प्रसन्न विस्तर युक्त इस सुन्दर सेज पर सूर्या सुख प्राप्ति के उद्देश्य से चढ़ी थी ॥ ३० ॥

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥ ३१ ॥

देवा अग्रे न्यपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्वस्तनूभिः ।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह ॥ ३२ ॥

उत्तिष्ठेतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वर्तुना कृणोमि ॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः ।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम ।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः ।
मर्य इव योषामधि रोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७ ॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥ ३८ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।

प्रजा कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥ ३९ ॥
आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

हे कामिनी ! तू आनन्द पूर्वक इस सेज पर चढ और पति के लिये सन्तान उत्पन्न कर। तू समान बुद्धि से सम्पन्न रह और प्रतिदिन उषाकाल मे जागने वाली हो। ३१ ॥

पूर्वकाल मे देवताओ ने भी पर्यंक पर आरोहण कर अपने अंगो को पत्नी के अगो मे युक्त किया था। हे स्त्री ! तू सूर्या की भाति ही पति का सग करती हुई सतान उत्पन्न करने वाली हो ॥ ३२ ॥

हे विश्वावसो ! यहाँ से उठ ! हम तुझे नमस्कार करते है। पितृगृह गमन करती हुई 'जामिम' ही तेरा भाग है, उसी की उत्पत्ति को तू जान ॥ ३३ ॥

प्राणियो के प्रसन्न होने वाले स्थान मे हविर्धान और सूर्य को देखकर अप्सराऐ प्रसन्न होती है, वही तेरी उत्पत्ति का स्थान है अत वही जा। मै तुझे नमन करता हुआ गन्धर्वों के आने के साथ ही विदा करता हूँ ॥ ३४ ॥

गधर्व के क्रोधवन्त नेत्र को नमस्कार। हे विश्वावसो ! हमारे मत्र और नमस्कार को ग्रहण करते हुए तुम इस नारी को अप्सराओ मे दूर रखो ॥ ३५ ॥

हम आनन्द प्रदान करने वाले हो। हम गन्धर्वों को ऊपर को प्रेरित करते है। वह देवता परम सधस्थ को प्राप्त होगया। जहाँ प्रभु विस्तृत होती है, हमने भी उस स्थान को प्राप्त कर

तुम दोनो माता पिता बनने के निमित्त ऋतुकाल मे सगन करो। वीर्य द्वारा माता पिता बनो। मानवी ढग से आरोहण करते हुए सन्तान उत्पन्न करो ॥ ३७ ॥

हे पूषा देव! जिसमे बीजारोपण होता है उस कल्याणी स्त्री को प्रेरणा दो। वह प्रेम प्रकट करती हुई अगो को व्यापक करती हुई सन्तान उत्पन्न करने के कर्म मे प्रवृत हो ॥ ३८ ॥

तू अपनी पत्नी का स्पर्श कर आनन्द मग्न होते हुए तुम दोनो प्रजा उत्पन्न करने का कार्य सपन्न करो। सविता देव तुम्हे दीर्घ जीवी बनावे ॥ ३९ ॥

अर्यमा तुम्हे दिन रात से मिलावें। प्रजापति तुम्हारे निमित्त प्रजा को रचें। हे वधु! तू अमगलो से दूर रहती हुई इस गृह मे प्रवेश कर और मनुष्यो और पशुओ के लिए सुख-दायिनी बन ॥ ४० ॥

देवैर्दत्त मनुना साकमेतद् वाधूय वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षासि तल्पानि हन्ति ॥ ४१ ॥

य मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूय वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युव ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभाती ॥ ४३ ॥

नव वसाना· सुरभि सुवासा उदागा जीव उषसो विभाती ।
आण्डात् पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।
आप· सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहस· ॥ ४५ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकर नमः ॥ ४६ ॥
य ऋते चिदभिश्रिष पुरा जत्रुभ्य आतृद. ।
सधाता सधि मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७ ॥
अपास्मत् तम उच्छतु नील पिशङ्गमुत लोहित यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् ता स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावती: कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशा ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ।। ४९ ॥
या मे प्रियतमा तनू सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्व वनस्पते नीवि कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥ ५० ॥

देवताओ ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था। जो वधू के वस्त्र को दान मे विद्वान ब्राह्मण को देता है वह राक्षसो का नाश करने मे समर्थ होता है ॥ ४१ ॥

जो वर और वधु को वस्त्र ब्रह्मभाग के रूप मे मुझे दिया गया है, हे बृहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से इसे मुझे दे चुके हो ॥ ४२ ॥

हम दोनो ही हास्य से प्रसन्नता को और प्रसन्नता मे बोध को प्राप्त हो। हम सुन्दर गतिशील बने और सन्तति से पूर्ण हो उषाओ का पार करते रहे ॥ ४३ ॥

मै स्नान सुन्दर और सुगन्धित वस्त्र पहन कर उषाकालो को जीवित रहता आऊ। अण्डे से जिस भाँति पक्षी युक्त होता है, उसी मै भी समस्त पाप दोषो से मुक्त हो जाऊँ ॥४४॥

शोभायमान आकाश पृथ्वी के मध्य रहत अनन्त प्राणी निवास करते है। यह विस्तृत कर्मशील द्यावा पृथ्वी और यह

सप्त प्रकार के प्रवाहित जल हमको पापदोषों से मुक्त करें ॥ ४५ ॥

सूर्य, देवगण, मित्रावरुण, सभी भूतों के जो जानने वाले हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

'जन्तुओं' के निमित्त जो 'अभिक्षिप' के बिना 'आर्तदन' करता है, जो पुरुषसु विह्वत का निकालने वाला है और सबका सन्धि को मिलाता है । ४७ ॥

नीला, पीला, लाल धुआँ हमारे पास से दूर हो । भस्म करने वालो प्रपत वा को स्थण में स्थापित करता हूँ ॥ ४८ ॥

हे वनस्पते ! वस्त्रों से सुशोभित मेरा शरीर दमकता रहे, तू उसके आगे नीवी कर, हम कभी नाश को प्राप्त न हों ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उशती कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यती ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकर नमः ॥ ४६ ॥
य ऋते चिदभिश्रिष पुरा जत्रुभ्य आतृद ।
सधाता सधि मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ ४७ ॥
अपास्मत् तम उच्छतु नील पिशङ्गमुत लोहित यत् ।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सजामि ॥ ४८ ॥
यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशा ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि
सादयामि ॥ ४९ ॥
या मे प्रियतमा तनू सा मे बिभाय वासस ।
तस्याग्रे त्व वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वय रिषाम ॥ ५० ॥

देवताओ ने मनु सहित इस वधु के वस्त्र को दिया था। जो वधू के वस्त्र को दान मे विद्वान ब्राह्मण को देता है वह राक्षसो का नाश करने मे समथ होता है ॥ ४१ ॥

जो वर और वधु को वस्त्र ब्रह्मभाग के रूप मे मुझे दिया गया है, हे बृहस्पति तुम इन्द्र और ब्रह्मा की सहमति से इसे मुझ दे चुके हो ॥ ४२ ॥

हम दोनो ही हास्य से प्रसन्नता को और प्रसन्नता मे बोध को प्राप्त हो। हम सुन्दर गतिशील बने और सन्तति से पूर्ण हो उषाओ का पार करते रहे ॥ ४३ ॥

मैं नूतन सुन्दर और सुगन्धित वस्त्र पहन कर उषाकालो को जीवित रहता आऊ। अन्डे से जिस भाँति पक्षी युक्त होता है, उसी मै भी समस्त पाप दोषो से मुक्त हो जाऊँ ॥ ४४ ॥

शोभायमान आकाश पृथ्वी के मध्य चल अचल प्राणी निवास करते है। यह विस्तृत कर्मशील द्यावा पृथ्वी और यह

सप्त प्रकार के प्रवाहित जल हमको पापदोषों से मुक्त करें ॥ ४५ ॥

सूर्या देवगण, मित्रावरुण, सभी भूतों के जो जानने वाले है उन सबको मैं नमस्कार' करता हूँ ॥ ४६ ॥

'जन्तुओं' के निमित्त जो 'अभिश्रिप' के बिना 'आर्तदन' करता है, जो पुरुषसु विह्वृत को निकालने वाला है और सबकी संधि को मिलाता है ॥ ४७ ॥

नीला, पीला, लाल धुँआं हमारे पास से दूर हो। भस्म करने वाली प्रषत वा को स्थाण मे स्थापित करता हूँ ॥ ४८ ॥

हे वनस्पते! वस्त्रों से सुशोभित मेरा शरीर दमकता रहे, तू उसके आगे नीवी कर, हम कभी नाश को प्राप्त न हो ॥ ५० ॥

ये अन्ता यावती सिचो य ओतवो ये च तन्तव ।
वासो यत् पत्नीभिरुत तन्न स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥
उशती कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यती ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥
बृहस्पतिनाव सृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५४ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५५ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

किनारे, सिच, तन्तु, आतु, और पत्नियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमारे लिए सुखकारी और सुखद स्पर्श वाला हो ॥ ५१ ॥

पितृगृह से पतिगृह को जाने वाली यह कन्याएं कामना करती हुई दीक्षा को छोड़ती है । ५२ ॥

बृहस्पति की यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा शक्ति सपन्न की गई है । हम उसे गौओं के तेज से युक्त करते है ॥ ५३ ॥

बृहस्पति की रची हुई यह औषधि विश्वेदेवताओं द्वारा पुष्ट की गई है । हम इसे गौओ के तेज से मिलाते है ॥ ५४ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा पुष्ट की गई है हम इसे गौओ के सौभाग्य से युक्त करते है ॥ ५५ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं में वर्तमान यश से संयुक्त करते हैं ॥ ५६ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा पुष्ट हुई हैं। हम इसे गौओं के वर्तमान दुग्ध से संयुक्त करते हैं ॥ ५७ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट हुई है, हम इसे गोरस से मिश्रित करते है ॥ ५८ ॥

कन्या के जाने से शोकाकुल केश वाले पुरुष तेरे घर में रुदन करते हुए घूमे है। उस पाप से अग्निदेव तुझे मुक्त करे ॥ ५९ ॥

तेरी पुत्री अपने बालों को बिखेर कर रोई है। उस पाप से सविता और अग्नि तेरी रक्षा करें ॥ ६० ॥

यज्जामयो यद् युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्टवा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥
यत् ते प्रजाया पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघ कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥
संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्रण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां स सृजामसि ॥ ५७ ॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां स सृजामसि ॥ ५८ ॥
यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तोघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६० ॥

किनारे, सिच, तन्तु, ओतु, और पत्नियों द्वारा बुना हुआ वस्त्र हमारे लिए सुखकारी और सुखद स्पर्श वाला हो ॥ ५१ ॥

पितृग्रह से पतिग्रह को जाने वाली यह कन्याएं कामना करती हुई दीक्षा को छोड़ती है ॥ ५२ ॥

व्रहस्पति की यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा शक्ति सपना की गई है । हम उसे गौओं के तेज से युक्त करते है ॥ ५३ ॥

व्रहस्पति की रची हुई यह औषधि विश्वेदेवताओं द्वारा पुष्ट की गई है । हम इसे गौओं के तेज से मिलाते है ॥ ५४ ॥

वृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओं द्वारा पुष्ट की गई है हम इसे गौओं के सौभाग्य से युक्त करते है ॥ ५५ ॥

वृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओं द्वारा पुष्ट की गई है, हम इसे गौओं मे वर्तमान यश से सयुक्त करते हैं ॥ ५६ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वे देवाओ द्वारा पुष्ट हुई हैं। हम इसे गौओ के वतमान दुग्ध से सयुक्त करते हैं ॥ ५७ ॥

बृहस्पति द्वारा रचित यह औषधि विश्वेदेवाओ द्वारा पुष्ट हुई है, हम इसे गोरस से मिश्रित करते है ॥ ५८ ॥

कन्या के जाने से शोकाकुल केश वाले पुरुष तेरे घर मे रुदन करते हुए घूमे है। उस पाप से अग्निदेव तुझे मुक्त करे ॥ ५६ ॥

तेरी पुत्री अपने बालो को बिखेर कर रोई है। उस पाप से सविता और अग्नि तेरी रक्षा करे ॥ ६० ॥

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्टवा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६१ ॥
यत् ते प्रजाया पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघ कृतम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥
इय नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरद शतम् ॥ ६३ ॥
इहेमाविन्द्र स नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तको विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥
यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्या या चक्रु रास्नाने ता नि दध्मसि ॥ ६५ ॥
यद् दुष्कृत यच्छमल विवाहे वहतौ च यत् ।
तत् सम्भलस्य कम्बले मृज्महे दुरित वयम् ॥ ६६ ॥
सभले मल सादयित्वा कम्बले दुरित वयम् ।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्रण आयूषि तारिषत् ॥ ६७ ॥
कृत्रिमः कण्टक शतदन् य एषः ।
अपास्या केश्य मलमप शीर्षण्य लिखात् ॥ ६८ ॥

अङ्गादङ्गाद वयमस्या अप यक्ष्म नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवी मोत देवान् दिव मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम् ।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यम मा प्रापत् पितृश्च सर्वान् ।। ६९ ।।
स त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः स त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम् ।
स त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ।। ७० ।।

तेरी बहिनें अथवा अन्य नारियाँ शोकाकुल हो, रुदन करती हुई तेरे गृह मे घूमी है, इस पाप दोप से सविता और अग्निदेव तुझे मुक्त करे ।। ६१ ।।

तेरे घर, सन्तान और पशुओ मे दुख व्याप्त करने वालो ने जो दुख व्याप्त किया है,उस पापसे सविता और अग्निदेव तेरी रक्षा करे ।। ६२ ।।

खीलो की आहुति समर्पित करती हुई यह वधु इच्छा करती है कि मेरा पति दीर्घायु एव शतायुष्य हो ।। ६३ ।।

हे इन्द्र ! इस पति पत्नी को चकवी-चकवे के समान प्रीति प्रदान करो। इन्हे सुन्दर गृह और सतान से सपन्न करो। यह जीवन पर्यन्त विभिन्न सुखो को भोगते रहे ।। ६४ ।।

संधान, उपधान, या उपवासन जो दोष लगा है, और विवाह कर्म मे जिन्होने अभिचार कृत्य किया है, इन सब पापो को स्नान करने के स्थान मे स्थित करते हैं। ६५ ।।

विवाह के समय या दहेज मे जो दोष बना है, उसे हम मधुर बोलने वाले के कम्बल मे स्थित मे करते हैं ।। ६६ ।।

कम्बल मे दुरित और सभल मे मल को स्थित करके

यह यज्ञ कर्ता पुरुष पवित्र हुए । अब देवगण हमे पूर्णायु प्रदान करे ॥ ६७ ॥

यह बनावटी रूप से निर्मित किया गया सेकडो दातो वाला कधा इसके शीष स्थान पर पहुँचता हुआ सिर के मैल को पृथक करे ॥ ६८ ॥

इसके अ ग प्रत्यग से विनाशक दोष को पृथक करता हूँ परन्तु वह दोष मुझे न लगे । द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष देव-गण और जल को भी यह दोप व्याप्त न हो । हे अग्ने ! यह दोष पितरो और उनके अधिष्ठाता देव यमराज को भी व्याप्त न हो ॥ ६९ ॥

हे जाये ! पृथ्वी के दूध के समान सार तत्व से और औपधियो के मूल तत्व से मै तुझे आबद्ध करता हूँ । तू प्रजा और धन से पूर्ण होती हुई धन प्रदान करने वाली बन ॥ ७० ॥

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् द्यौरहृ पृथिवी त्वम् ।
ताविह स भवाव प्रजामा जनयाव है ॥ ७१ ॥

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदर्शा इम वहतुमागमन् ।
ते अस्य वध्वै सपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ३७ ।

येद पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविण चेह दत्त्वा ।
ता वहन्त्वगतस्यानु पन्था विराडिय सुप्रजा अत्यजैषीत् । ७४ ॥

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयु सविता कृणोतु ॥ ७५ ॥

हे जाये ! मै साम हूँ, तू ऋक है । मै आकाश हूँ तू पृथ्वी है । मैं विष्णु रूप और तू लक्ष्मी रूप है । हम यहाँ साथ-साथ वास करते हुए सन्तान उत्पन्न करे ॥ ७१ ॥

हम दोनो को नदियाँ प्रकट रखें । हम कल्याणकारी दान के दाता पुत्र को प्राप्त करें । हम असीम अन्न प्राप्ति के लिए दोनो मिलकर रहते हुए प्राणो से अहिंसित रहे ॥ ७२ ॥

वधू को देखने की इच्छा से इस दायद के निकट उपस्थित होन वाले पिता इस शीलवती वधू को सतानयुक्त मगल प्रदान करने वाले हो ॥ ७३ ॥

पहले रस्सी के समान बाँधने को जो नारी इस मार्ग को प्राप्त हुई थी, उस पहले न चले हुए मार्ग मे इस वधू को संतान और धन के द्वारा ले जाँय । यह गुणवती प्रवृद्ध होती रहे ॥ ७४ ॥

हे सुबुद्ध ! जगाई जाने पर तू शत वर्ष की दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए जाग । गृह लक्ष्मी बनने के लिए घर चल । सविता देव तुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ७५ ॥

॥ इति चतुर्दश काण्ड समाप्तम् ॥

पंचदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, गायत्री)

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥

तदेकमभवत् त तल्ललामभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् । तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३ ॥

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

न लमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

समूहपति ने जाते समय प्रजापति को सकेतना दी ॥ १ ॥

प्रजापति ने अपने मे आत्मा को देखकर सभी प्राणियो की उत्पत्ति की ॥ २ ॥

प्रजापति ही ज्येष्ठ, महेष, ललाम, ब्रह्मा, तप और सत्य हुआ और उसी से यह उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

वह वृद्धि को पा महान और महादेव बना ॥ ४ ॥

वह सभी का स्वामी समूहपति बना और जो धनुष उसने धारण किया वही इन्द्र धनुष कहलाया ।। ५ ।।

वह देवों का स्वामी और ईशान रूप मे हुआ ।। ६ ।।

उसका पेट नीलिमा और पीठ लालिमा लिये हुये है ।। ७ ।।

अप्रिय शत्रु को वह नीलिमा से और द्वेषी पुरुष को लालिमा रक्त से विदीर्ण करता है । ब्रह्मवादी ऐसा कहते हैं ।। ८ ।।

सूक्त (२)

(ऋषि – अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, गायत्री, जगती, बृहती, उष्णिक्)

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ।। १ ।।

तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ।। २ ।।

बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ।। ३ ।।

बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवाना प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ।। ४ ।।

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञान वासोऽहरुष्णीष रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणि ।। ५ ।।

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।। ६ ।।

मातरिश्वा च पावमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोद ।। ७ ।।

कीर्तिश्च यशश्च पुरः सरावेन कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एव वेद ।। ८ ।।

वह पूर्व दिशा को उठकर जा रहा है ॥ १ ॥

वृहत् साम, रथान्तर साम, सूर्य और सब देवगण उसको अग्रसर कर चलते हैं ॥ २ ॥

ऐसे विद्वान ब्राह्मण का निन्दा करने वाला वृहत्साम, रथन्तर साम, सूय और समस्त विश्व देवो की हिसा करता है ॥ ३ ॥

उसका आदर सत्कार करने वाला पुरुष वृहत्साम, रथन्तर साम, सूर्य और समस्त विश्व देवगणो की प्रिय पूर्व दिशा मे अपना प्रिय काम नियुक्त करता है ॥ ४ ॥

श्रद्धा पुश्चली, विज्ञान-वस्त्र, दिन पाग, रात्रि केश, मित्र मागध, हरित पर्वत, कल्याणी, उसकी मणि कहलाती है ॥ ५ ॥

भूत वर्तमान, भविष्य पणिकन्द और मन से विलग होता है ॥ ६ ॥

मातरिश्वा, और पवमान विवथवाह, रेष्मा क्रीड़ा और वायु सारथी से सोभायमान होते है ॥ ७ ॥

कीर्ति और यश प्रमुख होते हैं। ऐसे ज्ञाता को कीर्ति और यश की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

स उदतिष्ठत् स दक्षिणा दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥

त यज्ञायज्ञिय च वामदेव्य च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांस व्रात्यमुपवदति ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूना च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

उषा· पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञान वासोऽहरुष्णीष रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणि ॥ १३ ॥
अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोद· ।
कीतिश्च यशश्च पुरः सरावैन कीर्त्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एव वेद ॥ १४ ॥

वह उठकर दक्षिण दिशा मे चल दिया ॥ ९ ॥

यज्ञायज्ञिय, साम यज्ञ, यजमान, पशु और वाम देव्य, उसको अग्रगणी कर चले ॥ १० ॥

ऐसे समूह पति की निन्दा वाला, यज्ञा-यज्ञिय, यजमान साम, यज्ञ, पशु और वामदेव का दोषी कहलाता है ॥ ११ ॥

आदर करने पर उसका यज्ञायज्ञिय, साम, यज्ञ, यजमान, पशु और वामदेव्य की प्रिय दक्षिण दिशा मे उसका भी अत्यन्त प्रिय काम, वना होता है ॥ १२ ॥

विज्ञान वस्म, दिनपगडी, रात्रिकेश, उषा पुन्चली, मन्त्र मागध और हरित प्रवर्त और कल्याणी मणि युक्त होता है ॥ १३ ॥

अमावस्या पूर्णिमा उसके परिष्कन्द कहलाते हैं ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥
स वैरूपं च वैराज चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥
वैरुपाय च वै स वैराजाय चाद्‌भयश्च वरुणाय च राज्ञ आवृश्चते य एवं विद्वास व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥

वरूपस्य च वै स वै राजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः-प्रिय धाम भवति तस्य प्रतीच्या दिशि ॥ १८ ॥

इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्रीकेशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणि ॥ १९ ॥
अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोद ।
कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति-य एवं वेद ॥ २० ॥

उसने उठकर पश्चिम दिशा को गमन किया ॥ १५ ॥

जल वरुण वैरुप, वैराज, उसको अग्रगणी मान कर चले ॥ १६ ॥

इस प्रकार के समूह पति निन्दक जल, वरुण, वैरुप वैराज का दोषी माना जाता है ॥ १७ ॥

(सत्कार करने वाला) जल, वरुण, वैरूप, वैराज का प्रिय और उसका दक्षिण मे प्रियधाम होता है ॥ १८ ॥

आदर को प्रकट करने वाला पृथ्वी पुञ्चली विज्ञान वस्त्र, दिनपगडी, रात्रिकेश, हास्य मागध, हरित प्रवर्त, कल्याणी मणि युक्त होता है ॥ १९ ॥

रात्रि एवम् दिवस परिष्कन्द रूप माने जाते है ॥ २० ॥

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिसमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥
तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांस व्रात्यमुपवदति ॥ २३ ॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमाय च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥ २४ ॥
विद्युत पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणि ॥ ५ ॥

श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दो मनो विपथम् ।। २६ ।।
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वात
सारथी रेष्मा प्रतोद: ।। २७ ।।

कीर्तिश्च यशश्च पुर सरावैन कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ।। २८ ।।

वह उठकर उत्तर दिशा की ओर चला गया ।। २१ ।।

इस प्रकार के समूहपति का निन्दक सप्तर्षि सोम, श्वेत, नौधस का दोषी कहलाता है ।। २२ ।।

सप्तर्षि, सोम, श्वेत, और नौधस उसको अग्रसर करके चलते है ।। २३ ।।

उत्तर मे सप्तर्षि, सोम श्वेत और नौध को प्रिय लगने वाला धाम होता है ।। २४ ।।

विद्युत पुश्चली, विज्ञान वस्त्र, दिन पगडी, रात्रिकेश, स्तनयित्नु मागध, हरित पर्वत और कल्याणी मणि युक्त होती है ।। २५ ।।

श्रुत विश्रुत, परिष्कन्द और मन विपग होता है ।। २६ ।।

वात सारथी, रेष्मा क्रीडा, मातरिश्वा, और पवमान विपथ वाह कहलाते है ।। २७ ।।

कीर्ति और यश अग्रसर होते हैं । ऐसा ज्ञाता पुरुष ससार मे कीर्ति और यश युक्त होता है ।। २८ ।।

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य छन्द—गायत्री, उष्णिक्, जगती, बृहती, अनुष्टुप, पङ्क्ति त्रिष्टुप्)

स सवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् त देवा अब्रुवन् व्रात्य
किं नु तिष्ठसीति ॥ १ ॥
सोऽब्रवीदासन्दीं म सं भरन्त्विति ॥ २ ॥
तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥
तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च
द्वौ ॥ ४ ॥
बृहच्च रथन्तर चानूच्ये आस्तां यज्ञायज्ञिय च
वामदेव्य च तिरश्च्ये । ५ ॥
ऋच: प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्च: ॥ ६ ॥
वेद आस्तरण ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥
सामासाद उद्गीथोऽपश्रय ॥ ८ ॥
तामासन्दी व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥
तस्य देवजना: परिष्कन्दा आसन्त्सकल्पा प्राहाय्या
विश्वानि भूतान्युपसद: ॥ १० ॥
विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥

समूहपति वर्ष भर तक खडा हुआ तप करता रहा। देवो ने पूछा हे व्रात्य ! यह तप क्यो कर रहे हो ॥ १ ॥

देवो ने जवाब मे कहा मेरे लिये चोकरे का निर्माण करो ॥ २ ॥

तभी देवो ने उसे आसन्दी का निर्माण किया ॥ ३ ॥

उसके ग्रीष्म वर्षा नामके दो पैर और शरद् वर्षा नाम युक्त भी दो पैर हुये। ४ ॥

वृहत् और रथन्तर दो अनूच्य और यज्ञ यज्ञिय और वामदेव दीर्घ जीवी कहलाये ॥ ५ ॥

माया और प्राचा ने तन्तु रूप धारण किया और यजु तिर्यक बन गये ॥ ६ ॥

वेद अस्तरण और ब्रह्म उपवर्हण रूप से हुये ॥ ७ ॥

साम आसाद और उद्गीथ उपश्रय बना ॥ ८ ॥

उस चौकी पर समूहपति चढे ॥ ९ ॥

देवगण परिष्कन्द बने । समस्त प्राणी उपसद कहलाये ॥ १० ॥

इस बात को जानने वाले के समाज भूत उपसद होते हैं ॥ ११ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्यः । छन्द—जगती, अनुष्टुप्, गायत्री, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, बृहती, उष्णिक्)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥

वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं
चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥

वासन्तावेन मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं
चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

बसन्त के दो महीनो को देवो ने पूर्व दिशा रक्षक बनाया । बृहत्साम तथा रथन्तर साम को अनुष्ठाता बनाया ॥ १–२ ॥

इस प्रकार के ज्ञाता की वसन्त दो महीने की रक्षा का और बृहत्साम और रथन्तर उसकी अनुकूलता का कार्य सम्पन्न करते है ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥ ४ ॥

ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥

ग्रैष्मावेन मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च
वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

ग्रीष्म ऋतु दक्षिण दिशा मे दो महीनो को रक्षक बनाया। यज्ञा यज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता रूप प्रदान किया ॥ ४-५ ॥

ऐसे ज्ञाता की दक्षिण में दो महीने ग्रीष्म रक्षा का कार्य और यज्ञायज्ञिय, वामदेव अनुकूलता का कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिश· ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूप च वैराज चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥

वार्षिकावेन मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरुपं च वैराज चान तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

पश्चिम दिशा मे वर्षा के दो महीनो को रक्षक बनाया और वे रुप और वैराज्य को अनुष्ठाता ॥ ७-८ ॥

ऐसा ज्ञाता पश्चिम मे दो महीने वर्षा से रक्षा पाता है और वेरूप-वैराज उसके अनुकूल होते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिश ॥ १० ॥

शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैत च नौधस चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥

शारदावेन मासावुदीच्या दिशो गोपायत श्यैत च नौधस चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

देवो ने उत्तर दिशा मे शरद् के दो महीनो को नियुक्त किया और नोधस व श्येत अधिष्ठाता रूप मे नियुक्त हुये ॥ १०-११ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने उत्तर से रक्षा पाता है और

नोवत तथा ध्यैत उसके अनुकूल काय सम्पन्न करते है ।, १२ ।

तस्मै ध्रुवाया दिश ।। १३ ॥

हेमन्तो मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमि चाग्नि चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥

हैमनावेन मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतौ भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एव वेद ॥ १५ ॥

ध्रुव दिशा मे हेमन्त को दो महीने का रक्षक देवो ने बनाया । पृथ्वी और अग्नि को उसका अनुष्ठाता बनाया ॥ १३–१४ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने ध्रुव दिशा की ओर से हेमन्त द्वारा रक्षित होता है और पृथ्वी व अग्नि उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न करते है । १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिश ॥ १६ ॥

शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्य चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥

शशिरावेन मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चान तिष्ठतो य एव वेद ॥ १८ ॥ (६) [१-४]

देवो ने शिशिर ऋतु के दो महीनो को उर्ध्व दिशा का रक्षक बनाया । आकाश और सूर्य को उसका अनुष्ठाता माना गया ॥ १६–१७ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष दो महीने ध्रुव दिशा से शिशिर द्वारा रक्षित होता है और आकाश और सूर्य उसके अनुकूल कार्य सम्पन्न करते है ॥ १८ ॥

सूक्त (५)

(ऋषि—अथर्वा ॥ देवता-रुद्र । छन्द —गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, पंक्ति बृहती)

तस्मै प्राच्या दिशा अन्तर्देशाद्‌ भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥ (१)

देवो ने भव को उसके निमित्त पूर्व दिशा के कोने से बाण छोडने वाला अनुष्ठाता रूप मे बनाया ॥ १ ॥

पूर्व दिशा से भव, शर्व और ईशान इसके अनुकूल होते हैं ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाता के पुरुष और पशुओ को वे नष्ट नही होने देते ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ५ ॥ (२)

दक्षिण दिशा के कोने से बाण छोडने वाले के रूप मे देवो ने शर्व को अनुष्ठाता रूप दिया ॥ ४ ॥

ऐसे ज्ञाता को दक्षिण के कोने से शर्व अनुरूप रहते हैं और उसके पशु और पुरुषो को नष्ट होने से बचाते हैं ॥ ५ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥ ६ ॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ७ ॥ (३)

पशुपति को दक्षिणी कोने मे बाण छोडने वाले अनुष्ठाता के रूप मे देवो ने माना ॥ ६ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष को पशुपति दक्षिणी कोने से अनुकूल होते हैं और उसके पशु और पुरुषो को नष्ट होने से बचाते है ॥ ७ ॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारम-कुर्वन् ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ९ ॥ (४)

उग्रदेव को उत्तरी कोने से बाण छोडने वाले अनुष्ठाता के रूप मे देवो ने स्वीकार किया ॥ ८ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष के उत्तरी कोने से उग्रदेव अनुरूप होते हैं और उसके पुरुष और पशुओ को नष्ट होने से बचाते है ॥ ९ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद्रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १० ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः । नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ११ ॥ (५)

ध्रुव दिशा के अन्तर्देश से बाण छोडने के लिये अनुष्टाता रूप मे देवा ने रुद्र को बनाया ।। १० ।।

ऐसे ज्ञाता पुरुष ने ध्रुवी अन्तर्देश से ध्रुव अनुकूल रहते और पशु तथा पुरुषो की रक्षा करते हैं ।। ११ ।।

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातार-मकुर्वन् ॥ १२ ॥

महादेव एनमिष्वासऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैन शर्वो न भवो नेशानः नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एव वेद ॥ १३ ॥ (६)

उर्ध्व दिशा के कोने से वाण छोडने वाले के रूप मे महादेव को अनुष्ठाता बनाया ।। १२ ।।

वे महादेव ऐसे ज्ञाता पुरुप के उर्ध्व कोने से अनुकूल होते हैं और उसके पुरुष और पशुओ को नष्ट होने से बचाते हैं ।। १३ ।।

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशोभ्योऽनुष्ठानु तिष्ठति नैन शर्वो व भवो नेशान. एव वेद ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य ॥ १६ ॥ (७)

समस्त दिशाओ के कोनो मे देवो ने ईशान को वाण छोडने वाले अनुष्ठाता के रूप मे बनाया ।। १४ ।।

समस्त दिशाओ के कोनो से ईशान ऐसे ज्ञाता के अनुरूप तथा पशु व पुरुषो के रक्षक होते है ।। १५ ।।

सूक्त (६)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्य । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्, बृहती जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ।। १ ।।
तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ।। २ ।।
भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।। ३ ।। (१)

समूहपति ध्रुव दिशा मे चल दिया ।। १ ।।
पृथ्वी अग्नि ओषधि वनस्पति, वे सब उसको अग्रसर करके चले ।। २ ।।
ऐसे ज्ञाता इन सभी का प्रिय धाम कहलाता है ।। ३ ।।

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ।। ४ ।।
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ।।५।।
ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।। ६ ।। (२)

वह ऊर्ध्व दिशा मे चल दिया ।। ४ ।।
सूर्य चन्द्र, नक्षत्र ऋत, सत्य उसको अग्रसर कर चले ।। ५ ।।
ऐसा ज्ञाता सूर्य चन्द्र, नक्षत्र, ऋतु और सत्य का प्रिय धाम कहलाता है ।। ६ ।।

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ।। ७ ।।
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ।। ८ ।।
ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।। ९ ।। (३)

वह उतर दिशा मे चल पडा ॥ ७ ॥

साम, यजु, ऋचायें, और ब्रह्म, उसको अग्रसर करके चल दिये ॥ ८ ॥

ऐसा ज्ञाता साम, यजु, ऋचा और ब्रह्मा का प्रिय धाम कहलाता है ॥ ९ ॥

स बृहतीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १० ॥
तमितिहासश्च पुराण च गाथाश्च नाराशसीश्चानुव्यचलन् ॥ ११ ॥
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथाना च नाराशंसीनां च प्रिय धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ (४)

उसने वृहती दिशा को गमन शुरू किया ॥ १० ॥

तब पुराण, इतिहास, मनुष्यो की प्रशसात्मक गाथाऐं उसके पीछे पीछे चले ॥ ११ ॥

इस बात के जानने वाला पुराण, इतिहास और गाथाओ का प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमा दिशमनु व्यचलत् ॥ ३ ॥
तमाहृवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्नेश्च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रिय धाम भवति य एव वेद ॥ १४-१५ ॥ (५)

उसने परम दिशा को प्रस्थान किया ॥ १३ ॥

आघ्वानीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उसको अग्रसर करके चले और यज्ञ यजमान और पशु भी उनके अनुयायी बने ॥ १४ ॥

ऐसा ज्ञाता आघ्वानीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि यज्ञ, यजमान, और पशुओ का प्रिय काम होता है ॥ १५ ॥

सोऽनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासाश्चार्धमासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥
ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥ (६)

वह अनादिष्ट दिशा मे चल दिया ॥ १६ ॥

ऋतुयें, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिवस और रात्रि उसको अग्रसर कर चले । १७ ।

इसके ज्ञाता पुरुष ऋतु, पदार्थ, लोक, मास, पक्ष, दिन-रात्रि का प्रिय धाम कहलाता है ॥ १८ ॥ (६)

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत ॥ १९ ॥
तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥
दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥ (७)

उसने अनावृत दिशा में गमन किया तथा वहाँ पर रहना उचित नहीं समझा ॥ १९ ॥

उसके पीछे, इड़ा, इन्द्राणी, दीति और अदिति भी चली ॥ २० ॥

इसको ज्ञाता पुरुष इडा, इन्द्राणी, दिति अदिति, का प्रिय धाम कहलाता है ॥ २१ ॥

स दिशोऽनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवता. ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥ (८)

वह दिशाओ में चला गया और विराट आदि पुरुष उसको अग्रगामी बनाकर चले ॥ २२ ॥

ऐसे ज्ञाता पुरुष विराट आदि पुरुषों के प्रिय धाम कहलाते हैं ।। २३ ।।

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ।। २४ ।।
स प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ।।२५।
प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रिय धाम भवति य एवं वेद ।। २६ ।। (६) [१।६]

उसने समस्त अन्तर देशों में गमन किया ।। २४ ।।

प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह भी उसको अग्रग मी कर चल दिये। ऐसा ज्ञाता पुरुष प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रिय धाम कहलाता है ।। २५ ।।

इस प्रकार जानने वाला, प्रजापति परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रियधाम होता है । २६ ।।

सूक्त (७)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक् पंक्ति)

स महिमा सद्रु र्भूत्वान्त पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत् ।। १ ।।
तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पितामहश्चापश्च श्रद्धा च वर्ष भूत्वानुव्य वर्तयन्त ।। २ ।।
ऐनमापो गच्छन्त्यैनं श्रद्धा गच्छन्त्यैनं वर्षं गच्छति य एवं वेद ।। ३ ।।
तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं च भूत्वाभिपर्यावर्तन्त ।। ४ ।।
ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छत्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ।। ५ ।।

उसने पृथ्वी के अन्त पर सद्रुमहिमा होकर गमन किया और समुद्र रूप धारण किया ।। १ ।।

प्रजापति परमेष्ठी पिता, पितामह, जल और श्रद्धा यह समस्त रूप मे उसके अनुरूप वतने लगे ॥ २ ॥

ऐसे ज्ञाता को जल और श्रद्धा अनरूप होकर कार्य करने लगे ऐसे को जल, श्रद्धा और वर्षा प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

लोक, यज्ञ, अन्न, खाद्यान्न और श्रद्धा उत्पन्न हो उसके चारो ओर विराजमान हुये ॥ ४ ॥

इस प्रकार जानने वाले को लोक, यज्ञ, अन्न अपनाया और श्रद्धा प्राप्त होती रहती हैं ॥ ५ ॥

सूक्त ८ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति)

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य चप्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

उसने रञ्जन कर राजा रूप धारण किया ॥ १ ॥

वह प्रजा, बन्धु अन्न और अन्नाद्य को अनुकूल रूप मे काम लाने लगा ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाता प्रजा और अन्य, अन्नाद्य का प्रिय धाम बन जाता है ॥ ३ ॥

सूक्त (९)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—जगती, गायत्री, पंक्ति)

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥

त सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥ २ ॥
सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियधाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

प्रजाजन के अनुरूप हो उसने व्यवहार किया ॥ १ ॥

सभा, समिति, सेना और सुरा उसके अनुरूप बने ॥ २ ॥

ऐसा ज्ञाता सभा, समिति और सेना तथा सुरा का प्रिय धाम बन जाता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१०)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—बृहती, पंक्ति, उष्णिक्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राजोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते-
तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥
अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥ ३ ॥
बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्र विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥ ४ ॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥
इयं वा उ पृथ्वी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥
अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥
ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥
यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥
ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥
य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

ऐसा ज्ञाता समूहपति जिस राजा का अतिथि हो ॥ १ ॥

सम्मान करने से वह राष्ट्र और क्षात्र शक्ति को नष्ट नहो करता है ॥ २ ॥

ब्रह्म बल जो क्षात्र मे प्रश्न उठा कि हम किसमे वास करे ? ॥ ३ ॥

ब्राह्मबल वृहस्पति और छात्र बल इन्द्र में प्रविष्ट होवे ॥ ४ ॥

तप ब्राह्मबल वृहस्पति मे और क्षात्र बल इन्द्र मे प्रविष्ट हो गये ॥ ५ ॥

आकाश इन्द्र और पृथ्वी वृहस्पति रूप ही हैं ॥ ६ ॥

आदित्य क्षात्र बल और अग्नि ब्राह्म बल रूप मे स्थित हैं ॥ ७ ॥

जो पृथ्वी को वृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म समझता है वह ब्राह्म बल और ब्रह्मचर्य को धारण करता है ॥ ८–९ ॥

जो आदित्य को छत्र और द्यौ को इन्द्र रूप समझता है वह इन्द्रियो से सम्पन्न होता है ॥ १०–११ ॥

सूक्त (११)

(ऋषि – अथर्वा देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द— पंक्ति, शक्वरी, बृहती, अनुष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदक व्रात्य-तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रिय तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्त-थास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥
यदेनमाह व्रात्य क्वाऽवात्सोरिति पथ एव तेन देवयानान-वरुन्द्धे ॥ ३ ॥
यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयास कुरुते ॥ ५ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रिय तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥
ऐन प्रिय गच्छति प्रिय· प्रियस्य भवति य एव वेद ॥ ७ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥
ऐन वशो गच्छति वशो वशिना भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥
यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव- तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥
एनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

ऐसा ज्ञाता समूहपति जिसके घर का अतिथि बनता है ॥ १ ॥

उसको आसन देकर ऐसे कहना चाहिये हे व्रात्य तुम कहां रहते हो। यह जल है हमारे घर के निवासी तुम्हे प्रसन्न चित्त करे। तुम्हे जो अच्छा लगे वह करो ॥ २ ॥

कहां रहने की पूछने पर देवयान मार्ग खुल जाता है ॥ ३ ॥

जल की पूछने पर उसको जल ही खुल जाता है ॥४॥

हमारे व्यक्ति तृप्त करें ऐसा कहने पर अपने प्राणो को सोचता है ॥ ५ ॥

'प्रिय होगा' ऐसा करने पर प्रिय कार्यों का उद्घाटन करता है ॥ ६ ॥

ऐसा ज्ञाता प्रिय पुरुष को पा प्रिय बन जाता है ॥ ७ ॥

तुम्हारा वश है वैसा ही हो कहने पर उससे वश को खोल लेता है ॥ ८ ॥

ऐसे ज्ञाता दूसरो को भी अपने वश मे करने मे समर्थ होता है ॥ ९ ।

तुम्हारा निकाम सा ही हो कहने वाला अपनी समस्त अभीष्टो को प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इस प्रकार के ज्ञाता पुरुष भी अपनी मनोभिलाषा को पूर्ण करता है । ११ ॥

सूक्त (१२)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम् व्रात्य । छन्द—गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

तद् यस्यैवं विद्वान व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्नि-होत्रेऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिसृज होष्यामीति ॥ २ ॥
स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जहुयात् ॥ ३ ॥
स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ।
प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥
न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥
पर्यस्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ८ ॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ १० ॥
नास्यास्मिँल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

अग्नि होत्र के अधिश्रित व उद्धृत होने पर यदि समूह-पति आवें ॥ १ ॥

तब उसको अभ्युत्थान खुद देवे और इस प्रकार कहे—हे समूहपति ! मुझे यज्ञाज्ञा प्रदान करो ॥ २ ॥

उसके कहने पर ही आहुति प्रदान करे अन्यथा नही देवे ॥ ३ ॥

ऐसा ज्ञाता समूहपति की आज्ञा से आहुति देने पर देवमान और पितृयान म र्ग को प्राप्त करता है ॥ ४-५ ॥

देवताओ के पास ही इसकी आहुति जाती है ॥ ६ ॥

समूहपति की आज्ञा से आहुति देने पर समस्त लोक मे अवशिष्ट आयतन से युक्त होता है। ७ ॥

ऐसा ज्ञाता यदि समूहपति की आज्ञा के बिना भी आहुति प्रदान करता है ॥ ८ ॥

तो वह देवयान और पितृयान को प्राप्त नही होता ॥९॥

समूहपति की बिना आज्ञा आहुति देने पर वह व्यर्थ जाती है और देव गण उसे नष्ट कर देते है ॥ १०-११ ॥

सूक्त (१३)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य. । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, पंक्ति, जगती)

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे । २ ॥
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥
येन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे । ४ ॥
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ५ ॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥

तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ ७ ॥

ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥ ९ ॥

य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ ११ ॥

कर्षेदेन न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥ १३ ॥

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

समूहपति यदि किसी के घर मे रात्रि मे अतिथि बनता है ॥ १ ॥

वह समूहपति के आने के फल से सभी पुण्यो को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

ऐसा विद्वान समूहपति जिसके घर मे दूसरी रात्रि मे निवास करता है ॥ ३ ॥

तो उससे उत्पन्न फलो द्वारा वह अन्तरिक्ष के समस्त पुण्यो को प्राप्त करता है । ४ ॥

यदि ऐसा विद्वान समूहपति तीसरी रात्रि भी निवास करता है ॥ ५ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से उसको समस्त लोक खुल जाता है । ६ ॥

चौथी रात्रि भी जिसके घर मे ऐसा विद्वान समूहपति निवास करता है । ७ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से वह पुण्माला लोगों के लोकों को खोल लेता है ॥ ८ ॥

जिसके घर में ऐसा विद्वान समूहपति अनेक रात तक निवास करता है ॥ ९ ॥

तो उससे उत्पन्न फल से उसको समाप्त लोकों का मार्ग खुल जाता है ॥ १० ॥

जिसके घर व्रात्य (समूहपति) बनने वाला अव्रात्य आवें ॥ ११ ॥

तो क्या उसे भगा देवे ? नहीं, भगाना ठीक नहीं ॥१२॥

मैं इस देव को बसाता हूँ मैं इसको जल से याचना करता हूँ, मैं इस देव को परोसने का कार्य सम्पन्न कराता हूँ। यह समझ कर परोसने का कार्य सम्पन्न करें ॥ १३ ॥

सभी अतिथियों का आदर करना चाहिये। जो इस बात को जानता है उसकी आहुति इस देवगण में स्वाहुत होती है ॥ १४ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अध्यात्मम् व्रात्य। छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक, पंक्ति त्रिष्टुप्)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्य-चलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानु व्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा
भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादी कृत्वा ॥ ५ ॥
अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥
स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत्
सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥
आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥
स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद्
विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥
विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

पूर्व दिशा में चलने पर उसने अपनी उम्र के अनुरूप अपने मन को अन्नाद से सम्पन्न किया ॥ १ ॥

जो इसे समझता है वह अन्नाद मन युक्त अन्न को ग्रहण करता है ॥ २ ॥

दक्षिण दिशा में चलने पर वह अपने मन में अन्नाद हो (स्वयं) इन्द्र रूप धारण कर चला ॥ ३ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद बल से अन्न सेवन करता है ॥ ४ ॥

पश्चिम दिशा में चलने पर वह अन्नाद हो वरुण रूप में हुआ ॥ ५ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद वन अन्न को ग्रहण करता है ॥ ६ ॥

उत्तर दिशा में चलने पर सप्तर्षि आहुति को पा सोम रूप धारण किया ॥ ७ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद आहुति से अन्न ग्रहण करता है ॥ ८ ॥

ध्रुव दिशा में चलने पर विराट को अन्नाद मान स्वयं विष्णु रूप धारण किया ॥ ९ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद विराट से अन्न ग्रहण करता है ॥ १० ॥

स यत् पशूनन् व्यचलद् रुद्रो भूत्वानु व्यचलदोषधीरन्नादी: कृत्वा ॥ ११ ॥
ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥
स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानु व्यचलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥
स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १४ ॥
स यन्मनुष्याननु व्यचलदग्निर्भूत्वानु व्यचलत स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥
स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥
स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानु व्यचलद् वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥
वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥
स यद् देवाननु व्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा ॥ १९ ॥
मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥
स यत् प्रजा अनु व्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानु व्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥
प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥
स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानु व्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥
ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

जब वह पशुओं की ओर चलने लगा तो औषधियों को अन्नाद बना रुद्र रूप धारण किया ॥ ११ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद औषधियो से अन्न ग्रहण करता है ॥ १२ ॥

पितरो की ओर चलने पर स्वधा को अन्नाद कर स्वय रूप धारण करता है ॥ १३ ॥

इस प्रकार के ज्ञाता स्वधाकार अन्नाद से अन्न ग्रहण करता है ॥ १४ ॥

मनुष्यों को ओर चलने पर स्वदा को अन्नाद बना स्वयं अग्नि रूप धारण किया ॥ १५ ॥

ऐसा ज्ञाता स्वाहाकार अन्नाद से अन्न ग्रहण करता है ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वदिशा मे गमन करने पर उसने वषट्कार को अन्नाद बना स्वय अन्य बृहस्पति बनकर चला ॥ १७ ॥

ऐसा ज्ञाता वषट्कार रूप अन्नाद द्वारा अन्य प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

देवता की ओर चलने पर यज्ञ को अन्नाद बनाया और स्वयम् ने ईशान रूप धारण किया ॥ १९ ॥

ऐसा ज्ञाता अन्नाद यज्ञ से अन्न ग्रहण करता है ॥ २० ॥

प्रजाओ की ओर चलने पर प्राण को अन्नाद बनाया और स्वय प्रजापति बना ॥ २१ ।

ऐसा ज्ञाता अन्नाद प्राण से अन्न ग्रहण करता है ॥ २२ ॥

सब अन्तर देशो मे गमन के समय ब्रह्म को अन्नाद और स्वय प्रजापति बनकर चला ॥ २३ ॥

ऐसा ज्ञाता पुरुष आनन्द ब्रह्म के द्वारा अन्न रूप भोजन को प्राप्त करता है। २४॥

सूक्त (१५)

(ऋषि - अथर्वा । देवता —अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द — पंक्ति , बृहती, अनुष्टुप् , गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्नि ॥ ३ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयः प्राण प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥ ४ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामाय स पवमान ॥ ६ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आप ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठ प्राण. प्रियो नाम् त इमे पशव ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तम. प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजा ॥ ९ ॥

उस समूहपति के सात प्राण, सात अपान और सात ही व्यान है ॥ १-२ ॥

इसका पहिला ऊर्ध्व प्राण अग्नि है ॥ ३ ॥

दूसरे प्रौढ प्राण आदित्य है ॥ ४ ॥

इसका तीसरा स्थान अभ्यूढ चन्द्रमा कहलाता है ॥ ५ ॥

चोथा यान विभू पवमान कहलाता है ॥ ६ ॥

इसकी पञ्चय योनि जल है ॥ ७ ॥

इसका षष्ठ प्राण प्रिय नामक पशु है ॥ ८ ॥

इसका सप्तम प्राण अपरिमित प्रजा कहलाता है ॥ ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—उष्णिक्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥ १ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका । २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयोऽपान सामावास्या ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थोऽपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ।
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमोऽपान सा दीक्षा॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठोऽपान स यज्ञ ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमोऽपानस्ता इमा दक्षिणा. ॥ ७ ॥

इसके समूहपति का प्रथम अपान पौर्णमासी कहलाता है ॥ १ ॥

इसका द्वितीय अपान अष्टका कहलाता है ॥ २ ॥

इसका तृतीय अपान अमावस्या और चतुर्थ श्रद्धा है ॥ ३-४ ॥

इसका पचम अपान दीक्षा और छटा अपान यज्ञ कहलाता है ॥ ५-६ ॥

इसका सप्तम अपान दक्षिण होता है ॥ ७ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—अध्यात्मम्, व्रात्यः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप्,)

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य प्रथमो व्यान सेयं भूमिः ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यान सा द्यौ ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि । ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतव ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठा व्यानस्त आर्तवा ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य योऽस्य सप्तमो व्यानः स सवत्सर. ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवा सवत्सर वा एत-दृतवोऽनुपरियन्ति व्रात्य च ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसविशन्त्यमावास्यां चैव तत् पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥
तस्य व्रात्यस्य । एक तदेषम् समृतत्वमित्याहुतिरेव ॥ १० ॥

इन समूहपति का प्रथम व्यान भूमि, दूसरा व्यान अन्त-रिक्ष, तीसरा व्यान द्यौ, चौथा नक्षत्र, पाँचवा ऋतुयें, छटा आर्तक, सातवाँ सम्वत्सर है ॥ १ ७ ॥

देवगण इसके समानार्थ को ग्रहण करते हैं। सम्वत्सर और ऋतु भी इसका अनुमान करती है ॥ ८ ॥

आदित्य मे प्रवेश करने वाली अमावस्या और पूर्णिमा की एक आहुति ही इनका अवि नाशक है ॥ ९-१० ॥

सूक्त (१८)

(ऋषि--अथर्वा । देवता--अध्यात्मम्, व्रात्य । छन्द—पंक्ति, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥
यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमा ॥ २ ॥

योऽस्य दक्षिण कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽस्य सव्य कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षपाने संवत्सर शिरः ॥ ४ ॥

अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

इस समूह पति का दक्षिण चक्षु आदित्य और वाम चक्षु चन्द्रमा होता है ॥ १-२ ॥

इसका दक्षिण कर्ण अग्नि और वाम वर्ण पवमान है ॥ ३ ॥

इसकी नासिका दिवस और रात्रि होती है और शीष कपाल दिति और अदिति होती है । इसका सिर सम्वत्सर कहलाता है ॥ ४ ।

यह समूह पति दिवस मे समस्त जीवो से पूजनीय है तथा रात्रि मे भी पूजने योग्य है । ऐसे समूहपति को हमारा नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ इति पचदश काण्डं समाप्तम् ॥

षोडश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापति । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्या ॥ १ ॥
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥
इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
योऽप्स्वग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम् ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोरं तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्रं वर्च आ धत्त देवीः ॥ १३ ॥

जल मे वृषभ के रूप मे वह अति सृष्ट होकर और दिव्य अग्नियाँ अति सृष्ट रूप मे होती है ॥ १ ॥

भङ्ग कर्ता, नाशक, पालन कर्ता, मन-नाशक दाहोत्पादक, खोदने से मिलने वाला, आत्मा और शरीर दूषित करने

योऽस्य दक्षिण कर्णोऽयं सो अग्निर्योऽय सव्य कर्णोऽयं स पवमानः ॥ ३ ।

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षपाने संवत्सरः शिरः ॥ ४ ॥

अह्ला प्रत्यङ् व्रात्यो रात्र्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

इस समूह पति का दक्षिण चक्षु आदित्य और वाम चक्षु चन्द्रमा होता है ॥ १-२ ॥

इसका दक्षिण कर्ण अग्नि और वाम वर्ण पवमान है ॥ ३ ॥

इसकी नासिका दिवस और रात्रि होती है और शीष कपाल दिति और अदिति होती है। इसका सिर सम्वत्सर कहलाता है ॥ ४ ।

यह समूह पति दिवस मे समस्त जीवो से पूजनीय तथा रात्रि मे भी पूजने योग्य है। ऐसे समूहपति को हमार नमस्कार है ॥ ५ ॥

॥ इति पचदश काण्डं समाप्तम् ॥

षोडश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—प्रजापति । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्, गायत्री, पक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अतिसृष्टो अपा वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्या ॥ १ ॥
रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥
म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषि'तनूदूषिः ॥ ३ ॥
इद तमति सृजामि त माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥
तेन तमभ्यतिसृजामो योस्मान् द्वेष्टि य वयं द्विष्म ॥ ५ ॥
अपामग्रमसि समुद्र वोऽभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥
योऽप्स्वग्निरति त सृजामि म्रोक खनि तनूदूषिम ॥ ७ ॥
यो व आपोऽग्निराविवेश स एष यद् वो घोर तदेतत् ॥ ८ ॥
इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत् ॥ ९ ॥
अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत् ॥ १० ॥
प्रास्मदेनो वहन्तु प्र दुःष्वप्न्य वहन्तु ॥ ११ ॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यताप शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ॥ १२ ॥
शिवानग्नीनप्सुषदो हवामहे मयि क्षत्र वर्च आ धत्त देवी ॥ १३ ॥

जल मे वृषभ के रूप मे वह अति सृष्टा होकर और दिव्य अग्नियाँ अति सृष्ट रूप मे होती है ॥ १ ॥

भङ्ग कर्ता, नाशक, पालन कर्ता, मन-नाशक दाहोत्पादक, खोदने से मिलने वाला, आत्मा और शरीर दूपित करने

वाला जो जल है उसे वैरियो को देता हूं। मैं अतिसर्जन कर उसे स्वय नही छूता हूँ ॥ ७-५ ॥

मैं जल के उत्तम भाग का समुद्र की ओर बहने को सकेत करता हूँ ॥ ६ ॥

शरीर शक्ति को नष्ट करने वाले जलो के भीतर ले जाने वाले अग्नि का भी मैं अपसर्जन कार्य करता हूँ ॥ ७ ॥

हे जलो ! प्रविष्ट हुआ अग्नि भीषण अ श रूप है ॥८॥

हम तुम्हारे अत्यधिक ऐश्वर्य शाली अ ग को इन्द्रियो द्वारा सीचते हैं ॥ ९ ॥

जल हमारे पापो को दूर करे ॥ १० ॥

यह जल पाप और दुस्वप्न को कूडा कर्कट के समान बहा ले जाय ॥ ११ ॥

हे जलो ! कृपा दृष्टि से मुझे देखकर कल्याण मयी अ श को मुझ प्रदान करो ॥ १२ ॥

हम जलमयी अग्नियो को बुलाते है। यह दिव्य जल हमको क्षात्रबल वाली जो शक्तियाँ है उनसे सम्पन्न करें और हमे दीर्घ जीवी बनावे ॥ १३ ॥

सूक्त (२)

ऋषि—अथर्वा । देवता—वाक् । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक् , बृहती, गायत्री)

निर्दुरर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमती वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्र श्लोक श्रूयासम् ॥ ४ ॥

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥ ५ ॥
ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोऽस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

मैं दूषित श्रम रोग से मुक्ति चाहता हूँ। मैं बलवती और मधुमयी वाणी वाला बनूँ ॥ १ ॥

औषधियो! तुम मेरी वाणी सहित मधुर रस से युक्त होवो ॥ २ ॥

मैं इन्द्रिय पालक मन और मुख का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

मेरे कान और मैं मंगलमयी बातों को श्रवण करें ॥४॥

मेरे श्रोत्र उत्तम और निकटवर्ती बातों को श्रवण करने से न चूकें। मेरे नेत्र गरुण के नेत्रों के समान दर्शन शक्ति के धारक होवें ॥ ५ ॥

तुम ऋषियों के प्रस्तर हो अतः देव रूपी प्रस्तर को हमारा नमस्कार है ॥ ६ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—ब्रह्मादित्यौ। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥
रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥
उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥
विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्ष दधातु ।। ७ ।।

मैं धनो का नाभि रूप धारण करूं । अपने समान पुरुषो मे भी नाभिवत बनू ।। १ ।।

मरने वाले मनुष्यो मे उषा अमृतत्व वाली और सुन्दरता पूर्वक प्रतिष्ठित होने वाली हैं ।। २ ।।

प्राण और अपान मुझे न छोड़ें ।। ३ ।।

सूर्य दिन से, अग्नि पृथ्वी से, वायु अन्तरिक्ष से, यम मनुष्यो से सरस्वति पार्थिक पदार्थों से मेरी रक्षा करे ।। ४ ।।

प्राणयान मुझे न छोडे ताकि मैं जीवित रह सकू ।।५।।

उषा और रात्रि काल मुझे मगलमयी होवे । मैं समस्त गणो और जलो का सेवन कर्ता बनू ।। ६ ।।

पशुओ तुम भुज युक्त बन मेरे समीप रहो । वरुण प्राण पान और अग्नि बल को दृढ करे ।। ७ ।।

सूक्त ५ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—यमः । देवता – दुष्वप्ननाशनम् । छन्द—गायत्री, बृहती)

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करण ।। १ ।।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।। २ ।।

त त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।। ३ ।।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।

त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ।४ ।।

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्वा पुत्रोऽसि यमस्य करणः ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात्
पाहि ॥ ५ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्र निभूंत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करण ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥
त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स न स्वप्न दुःष्वप्न्यात्
पाहि ॥ ६ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्र पराभूत्या पुत्रोऽसि यमस्य करण. ।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि ।
त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स न स्वप्न दुष्वप्न्यात्
पाहि ॥ ७ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्र देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य
करणः ॥ ८ ॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥

त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स न· स्वप्न दुःष्वप्न्यात्
पाहि ॥ १० ॥

हे स्वप्न ! तुम ग्राक्ष पिशाचिनी से उत्पन्न हो अत यम के पास ले जाने वाले हो मे तेरी उत्पत्ति का ज्ञायक हूँ ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! अन्तक मृत्यु रूप है ॥ २ ॥

हे स्वप्न हम तेरे ज्ञाता हैं अत तुम दुःस्वप्न से हमारी रक्षा कार्य करो ॥ ३ ॥

हे स्वप्न। विष्ठाता देव ! हम तुम्हारी उत्पति को जानते हैं तुम निमृति के पुत्र और यम के समीप ले जाने वाले हो। ४ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारे ज्ञायक है तुम अभूति पुत्र और यम के कारण भूत हो ॥ ५ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारी उत्पत्ति के ज्ञाता हैं। तुम निर्भूति पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ६ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुमको जन्म ज्ञायक हैं। तुम पराभूति पुत्र और यम के कारण रूप हो ॥ ७ ॥

हे स्वप्नाधिष्ठाता देव ! हम तुम्हारे जन्म ज्ञाता हैं तुम देवज्ञानियो के पुत्र और यम के कारण भूत कहलाते हो ॥८॥

हे स्वप्न ! तुम नाश दायी मृत्यु रूप हो ॥ ९ ॥

हे स्वप्न ! हम तुम्हे भली-भांति जानते हैं अत. तुम हमारी दुस्वप्न से रक्षा करो ॥ १० ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—यम । देवता—दुष्वप्ननाशनम्, उषा। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, उष्णिक्, गायत्री)

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदान ॥ ६ ॥

तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्न: सदान्वा ॥ ७ ॥

कुम्भीका दूषीका पीयकान् ॥ ८ ॥

जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥ ९ ॥

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः सकल्पानमुच्या द्रुह
पाशान् ॥ १० ॥

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्
विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

हम सदा विजयी हो, हमारे पास बहुत सी जमीन हो और हम कभी भी पाप कर्म न करे ॥ १ ॥

हम बुरा स्वप्न देखकर डर गये हैं, वह डर हमारे अन्दर से निकल जाय ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो मनुष्य हमे घृणा करता है, उस पुरुष को इस डर को प्रदान करो ॥ ३ ॥

हम अपने शत्रु के पास इस भय की प्रेरणा करते हैं ॥ ४ ॥

रात्री भी वाणी के समान मस्त हो और वाणी रात्री से प्रेम करे ॥ ५ ॥

उषा के विधाता वाचस्पति मे समान मत रखें और वाचस्पति एव उषस्पति दोनो आपस मे प्रेम जागृत करें ॥६॥

वे बुरे नाम वाली कुम्भीको, पीयको, को दुश्मन पर प्रेरित करें ॥ ७-८ ॥

सोने के समय बुरे स्वप्नो द्वारा प्राप्त फलो को जागते हुए, बुरे स्वप्नो मे प्राप्त होने वाले फलो से भूत कालीन उत्तम फलो को और दुश्मन के पाशो को खोलता हूँ ॥ ९-१० ॥

हे अग्नि देवता ! देवता लोग इन सबको दुश्मन के पास ले जांय । वह डरता हुआ दुष्ट बन जाय और सज्जन न रह पावें ॥ ११ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि — यम । देवता — दुष्वप्ननाशनम् । छन्द — पंक्ति, अनुष्टुप् उष्णिक्, गायत्री, बृहती, त्रिष्टुप्)

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥ ५ ॥

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥

यददोअदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वां रात्रिम् ॥ ९ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

मैं इसे बुरे कार्यों, अभूति से, निर्भूति से, पराभूति से, ग्राह्या से और मृत्युरूपी अन्धकार से घृणा करता हूं ॥ १ ॥

मैं इसे देवगण की डरावनी आज्ञाओं के सामने प्रस्तुत करता हूँ ॥ २ ॥

मैं इसे अग्नि मे डालता हूँ ॥ ३ ॥

वह इसे खा जाय ॥ ४ ॥

हमारे घृणा करने वाले से हमारी आत्मा घृणा करे और जिससे हम घृणा करते है वह आदमी हमारी आत्मा से घृणा करे ।। ५ ।।

उस घृणा करने वाले को हम तीनो लोको से दूर करते हैं ।। ६ ।।

हे चाक्षुष ! बुरे स्वप्न से प्राप्त होने वाले फल को अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र मे भेजता हूँ ।। ७-८ ।।

पहली रात मे कौन-कौन सा कार्य मैने समाप्त कर दिया है । जागती हुई अवस्था मे, सोई हुई अवस्था मे, दिन, रात या प्रत्येक दिन मे जो भी पाप या बुरे कार्य करता हूँ, इसी के द्वारा इसका विनास करता हूँ ।। ९-१०-११ ।

हे देवता ! उस दुश्मन को मिटा दो, फिर आनन्दित पसलियो को भी रगड दो ।। १२ ।।

उसके अन्दर से प्राण निकल जाँय और वह मर जाय ।। १३ ।।

सूक्त (८)

(ऋषि—यम । देवता—दु ष्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप् , गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, प क्ति, बृहती)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं-
ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक-
प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।। १ ।।

तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ य ।। २ ।।

स ग्राह्या पाशान्मा मोचि ।। ३ ।।

तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ।। ४ ।।

जितमस्माक मद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य ।
स निर्ऋत्या पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेज-
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥ ५ ॥

दुश्मनो को परास्त करके और विजयी हुई सभी वस्तुयें हमारी है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, प्रजा सभी बहादुर हमारे ही है ॥ १ ॥

अमुक गोत्रिय अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ २ ॥

वह गाथ्या के जाल से छूटने न पावे ॥ ३ ॥

मैं उसके तेज, वर्च, प्राण और उम्र को नष्ट करके उसका विनाश करता हूँ ॥ ४ ॥

दुश्मनो को हरा कर लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी है। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु जनता और सभी बहादुर हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले एवं अमुकी के बेटे को हम इस लोक से दूर कर देते हैं। वह निर्ऋति के फन्दे से मुक्त न होने पावे। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण आयु को मिटाकर उसे मार डालूंगा ॥ ५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य ।
सोऽभत्या पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ॥ ६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १० ॥

वैरियो को खदेड कर लाये हुए एव जीती हुई सभी प्रकार की वस्तुयें हमारी है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग पशु, प्रजा और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गात्र वाले अमुको के बेटे को हम इस लोक से हटा देते हैं। वह अभूति के जाल से न छूट जाय। मैं उसके तेज, वर्च, प्राण, उम्र का विनाश करके उसको मार दूंगा ॥ ६ ॥

शत्रुओ को परास्त करके एव जीती हुई सभी वस्तुओ पर हमारा अधिकार है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु, जनता और सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस लोक से दूर कर देते हैं, वह निर्भूति के फन्दे से न छूट जाय मै उसके तेज, वर्च प्राण, उम्र आदि को समाप्त करके उसको मार डालूंगा ॥ ७ ॥

शत्रुओ को खदेड कर और विजया किये हुए सभी पदार्थ हमारे है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग जनता और सभी बहादुर अपने ही है। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस लोक से अलग कर देते हैं। वह पराये जाल से न छूटने पावे। मैं उसके सभी गुणो को नष्ट करके उसे मार डालू गा ॥ ८ ॥

शत्रुओ को मारकर लायी गयी सभी वस्तुये हमारी हैं। ये पृथ्वी और स्वर्ग के सभी जीव-जन्तु हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले के पुत्र को हम इस लोक से अलग कर देते हैं। वह देवताओ के बन्धन से न छूट जाय, मै उसकी सभी माच वस्तुओ को समाप्त करके मार डालू गा ॥ ९ ॥

वैरियो को परास्त करके लाया हुआ घन हमारा ही है। और पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रहने वाले सभी देव एव जीव-जन्तुयें हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम

इस लोक से मिटा देते हैं। वह बृहस्पति के पाश से छूटने न पाये। मैं उसके सभी गुणों को समाप्त करके उसे नष्ट कर दूंगा ॥ १० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स प्रजापते पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ११ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।

सोऽङ्गिरसा पाशान्मा मोचि । तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि ।। १४ ।।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमु निर्भजामोऽमु मामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
स आङ्गिरसाना पाशान्मा मोचि.। तस्येद वर्चस्तेज' प्राणमायुर्नि वेष्टयामोदमेनमधराञ्च पादयामि ॥ १५ ॥

वैरियो को हराकर लाये हुए और वहाँ प्राप्त सभी वस्तुये हमारी है। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु और जनता सभी वहादुर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के वेटे को हम इस पृथ्वो लोक से अलग करते है। वह प्रजा का पालन करने वाले के पाश से छूटने न पावे। उसके तेज, वर्च प्राण और उम्र सवको मैं समाप्त करके उसे मार डालू गा ।। ११ ।।

दुश्मनो को जोतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे है। सत्य, तेज, ब्रह्म,पशु, प्रजा और सभी वहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के वेटे को हम इस लोक से समाप्त कर देते हैं। वह साधु सन्तो के पाश से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, आत्मा और उम्र आदि सबको समाप्त करके उसको मार डालू गा ॥ १२ ।।

शत्रुओ को खदेड कर लाये हुए और जीतकर लायी हुई सभी वस्तुये हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, पशु प्रजा और सव वहादुर हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस लोक से अलग करते हैं। वह आर्षेयो के जाल से न

छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, प्राण और उम्र सबको समाप्त करके उसका विनाश कर दूंगा॥ १३॥

शत्रुओ को हराकर एव जीते हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जीव-जन्तु सभी बहादुर हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले अमुको के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग करते हैं। वह अङ्गिराओ के फन्दे से न छूटने पावे। मैं उसके तेज वाणी प्राण सबको लेकर उसे मार डालूंगा॥ १४॥

वैरियो को जीतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, पशु और प्रजा सभी बहादुर हमारे ही अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग करते हैं। वह आँगिरसो के बन्धन मे न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी प्राण और उम्र को समाप्त करके मैं उसको जान से मार डालूंगा॥ १५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम्।

तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य।
सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि॥ १६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक-स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य।
स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि। तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि
वेष्टयामीदमेनमधराञ्च पादयामि॥ १७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १८ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ १९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २० ॥

शत्रुओं को विजयी करके लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। स्वर्ग, सत्य, तेज, ब्रह्म और सभी प्रकार के जीव जन्तु हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से अलग करते है। वह अर्थवाओं के बन्धन से छूटने न पावें। मैं उसके तेज, वाणी आत्मा और उम्र को समाप्त करके उसको जान से मार डालूंगा ॥ १६ ॥

दुश्मनों को हराकर और उनसे जीतकर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग, पशु और मनुष्य

सभी हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के पुत्र को हम इस पृथ्वी लोक से दूर करते है। आथवणो के फन्दे से न छटने पावे, मै उसके तेज, वाणी, प्राण और आयु को नष्ट करके उसका विनाश कर दू गा ॥ १७ ॥

शत्रुओ को जीतकर लाये हुए और जीते हुये सभी वस्तुये हमारी ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वग, जानवर और सभी मनुष्य हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के पुत्र को हम यही पर उसका विनाश कर देते है। वह पेड पौधो आदि के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, शरीर, उम्र को खत्म करके उसको मार डालू गा ॥ १८ ॥

वैरियो को जीतकर लायी हुई सभी वस्तु हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जीव-जन्तु सब हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम यही से दूर कर देते हैं। वह हरी भरी चाजो के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, प्राण और आयु को समाप्त करके उसको मार डालू गा ॥ १६ ॥

दुश्मनो को खदेड कर लाया हुआ धन हमारा है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और मनुष्य ये सब बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र वाले अमुकी के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग कर देते है। वह तीनो ऋतुओ (जाडा, गर्मी वर्षा) के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके सभी प्रमुख गुणो को समाप्त कर उसका अन्त कर देता हूँ ॥ २० ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माक स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।

स आर्तवाना पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ॥ २१ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य. ।
स मासानां पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ॥ २२ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ यः ।
सोऽर्धमासाना पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ॥ २३ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमु निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसा य ।
सोऽहोरात्रयो पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ॥ २४ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकम तमम्माक तेजोऽस्माक ब्रह्मास्माक स्वरस्माक यज्ञोऽस्माक पशवोऽस्माक प्रजा अस्माक वीरा अस्माकम ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्या पुत्रमसौ य ।
सोऽह्नो सवतो: पाशान्मा मोचि ।
तस्येद वर्चस्तेज प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ।। २५ ॥

दुश्मनो को जीतकर लाई हुई सभी चीजें हमारी ही हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और पुरुष, ये सभी बहादुर हमारे ही हैं। अमुक गोत्र व ले के बेटे को हम इस पृथ्वी लोक से अलग कर देते हैं। वह तीनो ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के जाल से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, वाणी, प्राण और उम्र आदि को समाप्त करके उसको भस्म कर देता हूँ ।। २१ ।।

बैरियो को खदेड कर लाया हुआ सभी माल हमारा ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले के तात को हम इस लोक से अलग कर देते हैं। वह महिनो के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके सभी गुणो को समाप्त करके उसका विनाश कर देता हूँ ।। २२ ।।

दुश्मन को पराजित करके लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी हैं। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग, जानवर और सभी मनुष्य मात्र हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले पुरुष के बेटे को हम इस मृत्यु लोक से अलग कर देते है। वह पक्षो के बन्धन से न दूर हो। मैं उसके तेज, शरीर, और उम्र आदि को समाप्त करके उसको मिटा देता हूँ ।। २३ ।।

वैरियो को जीतकर लाया हुआ सभी माल हमारा है।

सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु अपने ही हैं। अमक गोत्र वाले मनुष्य के बेटे को हम इस लोक से अलग भेजते है। यह रात दिन के जाल से न छूटने पावे। मैं उसके तेज, प्राण, उम्र सबको नष्ट करके उसको गिरा देता हूँ ॥ २४ ॥

अपने दुश्मनो से प्राप्त किया हुआ सारा सामान हमारा है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी जीव-जन्तु हमारे हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस मृत्यु लोक से अलग कर देते है मैं उसके सभी अच्छे गुणो को समाप्त करके उसको मार डालूं गा । २५ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २६ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकः प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ २७ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ।

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २८ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ।
स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ २९ ॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा
अस्माकम् ॥ ३० ॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ य ॥ ३१ ॥
स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं
पादयामि ॥ ३३ ॥

बैरियो को पराजित करके लायी हुई सभी वस्तुयें हमारी है। सत्य, तेज, ब्रह्म स्वर्ग, जानवर और सभी पुरुष हमारे ही बहादुर हैं। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से भगा देते है। वह पृथ्वी के बन्धन से मुक्त न होने पावे। मैं उसके शरीर, तेज, वाणी और उम्र को नष्ट करके उसका विनाश कर देता हूँ ॥ २६ ॥

दुश्मनो को हराकर लाया हुआ सारा सामान हमारा

ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी जीव जन्तु हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले पुरुष के बेटे को हम इस लोक से दूर कर देते है। वह इन्द्र और अग्नि के बन्धन से न छूटने पावे। मैं उसके प्राणो को निकालकर उसको मिटा डालता हूँ ॥ २७ ॥

वैरिओ को खदेड कर लाये हुए सभी पदार्थ हमारे ही हैं। सत्य तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और सभी मनुष्य हमारे ही है। अमुक गोत्र वाले के बेटे को हम इस लोक से पृथक करते है। वह वरुण के जाल से न छूटने पावे। मैं उसके समस्त गुणो, तेज, वाणी, प्राण और आयु को निकालकर उसको गिरा देता हूँ ॥ २८ ॥

दुश्मनो को खदेड कर लाया हुआ सारा सामान हमारा है। सत्य, तेज ब्रह्म, स्वर्ग और समस्त जीव-जन्तु हमारे ही वीर हैं। अमुक गोत्रिय पुत्र को इस मृत्यु लोक से हटाते है। वह प्रजापति वरुण के फन्दे से न छूटने पावे। मैं उसके सभी अच्छे गुणो को खत्म करके और उसका नीचा मुह करके धकेल देता हूँ ॥ २९ ॥

शत्रुओ को हराकर लाया हुआ सारा धन हमारा ही है। सत्य, तेज, ब्रह्म, स्वर्ग और समस्त जीव-जन्तु अपने ही बहादुर हैं ॥ ३० ॥

अमुक गोत्रीय पुरुष के बेटे को हम इस लोक मे अलग करते हैं ॥ ३१ ॥

वह मृत्यु के बन्धन से न छूटने पावे ॥ ३२ ॥

मैं उसके वाणी, तेज, शरीर और उम्र आदि समस्त को समाप्त करके उसका विनाश करता हूँ ॥ ३३ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—यम । देवता प्रजापतिः, मन्त्रोक्ता, सूर्य । छन्द - अनुष्टुप्, उष्णिक्, पक्ति)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठा विश्वाः पृतना अरातीः ॥ १ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

अगन्म स्वः स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयास वसु मयि धेहि । ४ ॥

शत्रुओं को जीतकर लाया हुआ समस्त माल हमारा ही है । मैं वैरियों की सेना पर विजयी होऊँ ॥ १ ॥

अग्नि और चन्द्रमा यही बात को कह रहे हैं, पूस मुझे अच्छे लोक मे बिठाये ॥ २ ॥

हम स्वर्ग को जायें, हम सूर्य की रोशनी से अच्छी प्रकार स्वर्ग को गमन करें ॥ ३ ॥

मैं धनी और आदर पाने योग्य बन जाऊँ । मैं महान धनवान होने के लिए धन पर अधिकार करलूँ । हे देवता ! मुझको धन दो ॥ ४ ॥

॥ इति षोडश काण्ड समाप्तम् ॥

सप्तदश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

—∞∞—

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आदित्य । छन्द—जगती, अष्टि, धृति, शक्वरी, कृति, प्रकृति, ककुप, बृहती, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वर्जित गोजित संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजित स्वर्जित गोजित संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रियो देवाना भूयासम् ॥ २ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वर्जित गोजित संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रिय प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वर्जित गोजित संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रियः पशूना भूयासम् ॥ ४ ॥

विषासहिं सहमान सासहान सहीयांसम् ।
सहमान सहोजित स्वर्जित गोजित संधनाजितम् ।
ईड्य नाम ह्व इन्द्र प्रियः समानाना भूयासम् ॥ ५ ॥

उदिह्य् दिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।

द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रध तवेद्‌ विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्‌ ॥ ६ ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि ।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद्‌ विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्‌ ॥ ७ ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र ।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्‌ विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्‌ ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद्‌ विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्‌ ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद्‌ विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्‌ ॥ १० ॥

अग्नि को दबाने वाले तेज से पूर्ण, दुश्मनों में से उस तेज को नष्ट करने वाले, स्वर्ग के जीतने वाले, वैरियों के जानवरों

को जीतने वाले सभी जलो के विजेता इन्द्र देवता, मैं आपको तीनो कालो के कार्यों द्वारा बुलाता हूँ। आपकी कृपा से मैं आयुष्मान होऊँ ॥ १ ॥

विष से युक्त, दूसरो पर काबू पाने वाले, सासहान, सहीयान, तेज का जीतने वाले स्वर्ग और गायो को जीतने वाले, जलो के जीतने वाले इन्द्र को मैं बुलाता हूँ। मै उनकी दया से सभी देवगणो का प्रिय बनू ॥ २ ॥

विष से युक्त, अन्य को दबाने वाले, सासहान् सहीयान्, तेज को जीतने वाले स्वर्ग गायो और सभी जलो को विजयी करने वाले इन्द्र को मैं निमन्त्रित करता हूँ। उस देव की कृपा से मैं सन्तान आदि का सुख भोगू ॥ ३ ॥

जहर से पूर्ण दूसरो का विजयी करने वाले, सासहान् महीयान, तेज को जीतने वाले, स्वर्ग, गाये और जलो को जीतने वाले, इन्द्र रूपी सूर्य को मैं बुलावा देता हूँ। उनकी कृपा से मैं जानवरो का प्रिय बनूँ ॥ ४ ॥

विप से पूर्व, सहीय न्, सासहान् तेज को विजयी करने वाले स्वर्ग, गायें और जलो के विजेता सूर्य को मैं आमन्त्रित करता हूँ। उनकी असीम् दया से मैं भी महान् आत्माओ का प्रिय बनू ॥ ५ ॥

निकलने पर सभी प्राणी मात्र को अपने अपने कार्य मे जुटाने वाले हे सूर्य! तुम निकलो तुम सबको विजयी करने वाले हो, मुझे आनन्द प्रदान करने के लिये निकलो। तुम्हारी दया से मुझसे घृणा करने वाले पुरुप मेरे गुलाम हो। मैं तुम्हारी प्रार्थना करने वाला कभी भी वरियो के फन्दे मे न फसूं। हे विष्णु रूपी सूर्य! तुम अपनी किरणो से सारे ससार को जीतने वाले हो। तुम हमे अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओ से

द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रध तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६ ॥

उदिह्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

मा त्वा दभन्त्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ९ ॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १० ॥

अन्य को दबाने वाले तेज से पूर्ण, दुश्मनों में से उस तेज को नष्ट करने वाले, स्वर्ग के जीवन वाले, वहियों के जानवरों

को जीतने वाले सभी जलो के विजेता इन्द्र देवता, मैं आपको तीनो कालो के कार्यों द्वारा बुलाता हू। आपकी कृपा से मैं आयुष्मान होऊँ ।। १ ।।

विष से युक्त, दूसरो पर काबू पाने वाले, सासहान, सहीयान, तेज का जीतने वाले स्वर्ग और गायो को जीतने वाले, जलो के जीतने वाले इन्द्र को मैं बुलाता हूँ। मै उनकी दया से सभी देवगणो का प्रिय बनू ।। २ ।।

विष से युक्त, अन्य को दबाने वाले, सासहान् सहीयान्. तेज को जीतने वाले स्वर्ग गायो और सभी जलो को विजयी करने वाले इन्द्र को मैं निमन्त्रित करता हूँ। उस देव की कृपा से मैं सन्तान आदि का सुख भोगूँ ।। ३ ।।

जहर से पूर्ण दूसरो का विजयी करने वाले, सासहान् सहीयान, तेज को जीतने वाले, स्वर्ग, गाय और जलो को जीतने वाले, इन्द्र रूपी सूर्य को मैं बुलावा देता हूँ। उनकी कृपा से मैं जानवरो का प्रिय बनूँ ।। ४ ।।

विष से पूर्व, सहीयान्, सासहान् तेज को विजयी करने वाले स्वर्ग, गायें और जलो के विजेता सूर्य को मैं आमन्त्रित करता हूँ। उनकी असीम् दया से मैं भी महान् आत्माओ का प्रिय बनू ।। ५ ।।

निकलने पर सभी प्राणी मात्र को अपने अपने कार्य मे जुटाने वाले हे सूर्य ! तुम निकलो तुम सबको विजयी करने वाले हो, मुझे आनन्द प्रदान करने के लिये निकलो। तुम्हारी दया से मुझसे घृणा करने वाले पुरुष मेरे गुलाम हो। मैं तुम्हारी प्रार्थना करने वाला कभी भी बरियो के फन्दे मे न फसूँ। हे विष्णु रूपी सूर्य ! तुम अपनी किरणो से सारे ससार को जीतने वाले हो। तुम हमे अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओ से

युक्त करो। और शरीर का अन्त होने पर हमे स्वर्ग मे स्थान दो॥ ६॥

हे सूर्य देवता! निकलो। सब पर काबू पाने वाला तेज मुझे प्रदान करो। जो प्राणी इस समय इस पृथ्वी पर मौजूद हैं या जो मर चुके है, मैं उन सबमे महान् बुद्धि वाला बनूं। हे विष्णु रूपी सूर्य देवता! यह तुम्हारी ही दया है। किसी और की नहो। मुझे अनेक प्रकार के जानवरो से युक्त करते हुए अन्त होने पर महान् आकाश और अमृत से युक्त करो॥ ७॥

हे सूर्य! जलो मे निवास करने वाले पिशाच तुम्हे आकाश के जलो मे न रोके। तुम अपने यश के बल पर अन्तरिक्ष मे चढे हो। तुम हमको सुख प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से पूर्ण बुद्धि मे हो। हे विष्णु रूपी सूर्य तुम बहुत साहसी हो। मुझको अनेको प्रकार के पशुओ से युक्त करते हुये शरीर के छूट जाने पर स्वर्ग और अमृत मे प्रतिष्ठित करो॥ ८॥

हे ऐश्वर्यमान सूर्य देवता! यश की सिद्धि की प्राप्ति के लिए तुम साँप आदि की हिंसा से रहित रात-दिन हमारी रक्षा करो। तुम महान पराक्रमी हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु प्रदान करते हुए अन्त मे स्वर्ग और अमृत मे स्थापित करो॥ ९॥

हे यशवान सूर्य! हमको महान् सुख प्रदान करो। अपने कल्याणकारी रक्षा के साधनो से हमे रक्षित करो तुम्हारे द्वारा रक्षा किया हुआ पुरुष बार-बार आने जाने का कष्ट नही पाता। तुमको अपनी जगह प्यारी है। हमारी प्रार्थना सुनने पर तथा सोम का पान करने पर हमारी मदद करो। हे सूर्य! तुम महान प्रभावशाली हो। मुझे अनेको प्रकार के जानवर प्रदान करते हुये शरीर का अन्त हो जाने पर स्वर्ग दो॥ १०॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
त्वमिन्द्रेम सुहव स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ ११ ॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे ।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षञ्छर्म यच्छ
तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १२ ॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने
स्वर्विदि । ययेन्द्र तन्वान्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा शर्म
यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १३ ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुरृषयो नाधमानास्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १४ ॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १५ ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं न॰ पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधाया मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १६ ॥

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधामानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधा.ां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १७ ॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।

तुभ्य यज्ञो वि तायते तुभ्य जुह्वति जुह्वतस्तवेव

विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधाया मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १८ ॥

असति सत् प्रतिष्ठित सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।

भूत ह भव्य आहित भव्यं भूते प्रतिष्ठित तवेद्

विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १९ ॥

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि ।

स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥

हे यशवान् इन्द्र रूपी सूर्य ! तुम सारे जगत के विजेता हो। तुम देवता हो। इस समय सुन्दर प्रकार से की जाने वाली प्रार्थना को स्वीकार करो और हमको सुख प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से प्राप्त प्रतिभा से पूर्ण रहे। तुम अत्यन्त प्रभाव-शाली हो। मुझे अनेक प्रकार के पशु प्रदान करते हुये मरने पर महान् स्वर्ग और अमृत से युक्त करो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य देवता ! तुम आकाश अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर किसी से भी नहीं डरते हो। क्यों कि तुममे गायत्री

द्वारा दी गई महान् शक्ति है । मुझे अनेक प्रकार के जानवरो से युक्त करो और मरने पर स्वर्ग मे भेजो ॥ १२ ॥

हे सूर्य ! तुम हमे जलो मे प्राप्त आभा से हमे सुख प्रदान करो । जलो मे स्थित, औषधि आदि के सार रूपो से भी हमे आनन्दित करो । पृथ्वी मे जो तुम्हारा रूप है उसके द्वारा हमे अन्न आदि वस्तुये प्रदान करो । और अन्तरिक्ष मे व्याप्त रूप से हमे वृष्टि आदि का आनन्द प्रदान करो । तुम महान् प्रभाव शाली हो । हमे अनेक प्रकार के पशुओ को प्रदान करो और मरने पर दु.ख, कष्ट आदि से रहित स्वर्ग को प्रदान करो ॥ १३ ॥

हे सूर्य देवता ! दिये हुये फलो की कामना करते हुये पुराने ऋषि तुमको मन्त्रो से बुलाते रहते है । तुम महान प्रभावशाली हो । हमे अनेको प्रकार के पशुओ को प्रदान करो और मरने पर कष्टो से रहित स्वग के अमृत पूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करो ॥ १४ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य ! तुम अन्तरिक्ष मे जाकर असीमित धाराओ वाले बादलो को प्राप्त होते हो । यह बादल ओषधि आदि मे वृद्धि करने वाला और यज्ञ का एक साधन होने से वास्तव मे यज्ञ ही है । तुम अत्यन्त प्रभावशाली हो । हमे अनेको प्रकार के पशुओ को प्रदान करते हुये देहान्त होने पर स्वर्ग को भेजो ॥ १५ ॥

हे सूर्य देवता ! तुम चारो दिशाओ के रखवाले हो । तुम अपनी ज्योति से आकाश और पृथ्वी दोनो को प्रकाशित करते हो । तुम जल को जानते हुये उसके रास्ते मे व्याप्त होते हो । तुम महान् प्रभावशाला हो । मुझे अनेको प्रकार के पशुओ

से पूर्ण करो मरने पर स्वर्ग के अमृतमय स्थान पर प्रतिष्ठित करो ॥ १६ ॥

हे सूर्य देवता ! तुम पाँच किरणों द्वारा ऊपर को मुँह करके ऊँचे लोकों को प्रकाशित करते हो। ऐसा करने पर तुम पृथ्वी को एक किरण से प्रकाशित करने की घृणा को प्राप्त होते हो। तुम अत्यन्त प्रभावशाली हो। मुझे अनेक रूप वाले पशुओं को प्रदान करो और शरीर का अन्त हो जाने पर स्वर्ग में स्थान दो ॥ १७ ॥

हे इन्द्र रूपी सूर्य ! महान् आत्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्यलोक तुम्हीं हो। तुम्हीं प्राणियों को जन्म देने वाले हो। इसलिये तुम्हारे सेवक तुम्हारे लिये यज्ञ आदि करते हैं। तुम अनेकों प्रभावों को रखते हो। मुझे अनेकों प्रकार के पशुओं को प्रदान करो और मरने पर आकाश के अमृत रूपी स्थान स्वर्ग में जगह दो ॥ १८ ॥

असत्य में सत्य विराजमान है अर्थात् परमात्मा में मनुष्य समाया हुआ है। हे सूर्य देवता ! तुम महान् प्रभावशाली हो। मुझे पशुओं से पूर्ण करो और देहान्त होने के पश्चात् स्वर्ग दो ॥ १९ ॥

हे सूर्य ! तुम ही शुक्र देवता हो। सब लोकों को प्रकाशित करने वाले तेज से तुम प्रकाशित रहते हो। मैं तुम्हारे ऐसे ही स्वरूप की प्रार्थना करता हूँ। मैं भी उसी प्रकार के तेज से पूर्ण हो जाऊँ ॥ २० ॥

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।

विराजे नम स्वराजे नम सम्राजे नम ॥ २२ ॥
अस्तयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नम ।
विराजे नम स्वराजे नम सम्राजे नम. ॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।
सपत्नान् मह्य रन्धयन् मा चाह द्विषते रध तवेद विष्णो बहुधा वीर्याणि । त्व न पृण हि पशुभिर्विश्वरूपै सुधाया मा धेहि परमे व्योमन् । २४ ॥
आदित्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये ।
अहर्मात्यपीपरो रात्रि सत्राति पारय ॥ २५ ॥
सूर्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये ।
रात्रि मात्यपीपरोऽह सत्राति पारय ॥ २६ ॥
प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाह कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा ।
जरदष्टि कृतवीर्यो विहाया. सहस्रायु सुकृतश्चरेयम् ॥ २७ ॥
परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाह कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८ ॥
ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽह सलिलेन वाच ॥ २९ ॥
अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदता मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषस पर्वता ध्रुव सहस्र प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३० ॥

हे सूर्य ! तुम ज्योति स्वरूप हो । जैसे ससार को प्रकाशित करने वाली ज्योति से चमकते हो वैसे ही मैं पशुओ से और ब्रह्मवाणी से दमकता रहूँ ॥ २१ ॥

हे सूर्य ! तुमको प्रणाम है जबकि तुम उदय होते हो ।

अग्नोदित्त और पूर्णोदित्त को प्रणाम है । रोकदेशोदित्त महान्, अज्ञोरित स्वराट् और पूर्णोदित्त राजा को नमस्कार है ॥ २२ ॥

छिपते हुये या छिपने को जाते हुये और पूरी तरह से छिपे हुये सूर्य को प्रणाम है । विराट्, स्वराट् और सम्राट रूपी सूर्य देवता को प्रणाम है ॥ २३ ॥

सभी लोको को पूरी तरह से सन्तुष्ट करने वाले आदित्य अपने रश्मिजाल सहित, मेरे पशुओ पर कावू पाते हुये निकल आओ । हे सूर्य ! तुम्हारी कृपा से मैं वैरीयो के फन्दे मे न फसू । तुम महान पराक्रमी हो । मैं अनेकों प्रकार के जानवरो से पूर्ण होऊं । मरने पर मुझे अमृतमय स्वर्ग को भेजो ॥ २४ ॥

हे देवता ! आकाश रूपी समुद्र से पार होने के लिये तुम हवा रूपी पतवार लेकर रथ रूपी नाव पर ससार के कल्याण के लिये चढे हो । तुम मेरी तीनो तापो से रक्षा करते हुये दिन के पार उतार चुके हो । ऐसे ही मुझे रात से भी पार करदो ॥ २५ ॥

हे सूर्य ! तुम आकाश रूपी समुद्र से पार होने के लिये हवा रूपी पतवार को साथ लेकर ससार के कल्याण के लिये रथ रूपी नाव पर विराजमान हुये हो । तुमने मुझे कुशल पूर्वक रात से पार कर दिया है उसी प्रकार अब दिन से भी पार कर दो ॥ २६ ॥

प्रजा का पोषण करने वाले सूर्य के अडिग तेज रूपी वस्त्र से मैं ढका हुआ हूँ । मैं कमजोर होने पर भी ताकतवर अङ्गो वाला तथा रोग रहित रहता हुआ अनेक प्रकार के सुखों का भोग करता रहूँ । मैं शरीर के वलो से पूर्ण होता हुआ

प्रजा की उत्पत्ति मे हाथ बटाऊँ। मैं आयुष्मान होता हुआ लौकिक और वैदिक कर्म-काण्डो को करता हुआ सूर्य की कृपा का पात्र रहूँ ।। २७ ।।

मैं कश्यप रूपी सूर्य के वस्त्रो से ढका हुआ हूँ। मैं तेज से और रक्षात्मक किरणो से रक्षित हूँ। इसलिये मुझको मारने के लिये देवताओ और मनुष्यो द्वारा दिये हुये प्राणी मेरे नजदीक न आ सकें ।। २८ ।।

मैं सत्य से, सूर्य रूपी ब्रह्म से, तीनो ऋतुओ से और सभी पुरानी वस्तुओ से रक्षित हूँ। इसलिये नरक का कारण मय पाप मेरे पास न भटके। मैं मन्त्रो द्वारा पवित्र किये हुये जल से, जल मे छिपे हुये पुरुष के अदृश्य रहने के समान न दिखने वाला होता हूँ। मैं पाप आदि से बचने के लिये मन्त्रो से युक्त जल द्वारा अपने को रक्षित करता हूँ ।। २९ ।।

अपने आश्रय पाने वाले के अग्नि देवता रक्षक है। वे डर से मेरी रक्षा करें। अन्त करने वाली मृत्यु के बन्धनो से निकलते हुये सूर्य मेरी रक्षा करे। दिन की लालिमा मृत्यु के बन्धनो से मुक्त करे। प्राण मुझ जसे आयु की कामना करने वाले पुरुष मे प्रतिष्ठित रहे। इन्द्रियाँ भी इच्छा करती रहे ।। ३० ।।

।। इति सप्तदश काण्ड समाप्तम् ।।

अष्टादश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यम, मन्त्रोक्ता, रुद्र, सरस्वती, पितरः। छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्ति, जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती,)

ओ चित् सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

न ते सखा सख्यं वष्टयेतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥ २ ॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥ ३ ॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् ॥ ६ ॥

को अस्य वेद प्रथमस्यान्ह क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ७ ॥
यमस्य मा यम्य काम आगनसमाने यानो सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ८ ॥
न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवाना स्पश इह ये चरन्ति ।
अ येन मदाहनो याहि तूय तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥ ६ ॥
रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुम हुर्रुन्ममायात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ॥ १० ॥

समान प्रसिद्धि वाले दोस्त यम को सख्याभावानुकूल करती हूँ। सिधु के तटवर्ती द्वीप मे जाते हुए यम, पुत्र को मुझमे प्रतिष्ठित करें। हे यम! तुम्हारा प्रसिद्धि तीनो लोको मे है। तुम सदा तेज दीप्त रहो ॥ १ ॥

(यम) मे तेरा समान मित्र हूँ, परन्तु मै भाई-वहिन के समागमात्मक मित्र भाव की आशा नही करता। क्या कि एक उदररूप वाली होकर भी पत्नी होने की इच्छा करती है। ऐसे मित्र भाव को मै स्वीकार नहीं करता। दुश्मनो के विजयी, महाशक्तिशाली रुद्र के बेटे मरुद्गण भी इसकी बुराई करेगे ॥ २ ॥

हे यम! मरुद्गण मेरे स्वच्छ रास्ते को कामना करते हैं। अतः अपने मन को मेरी ओर आकर्षित करो, फिर सन्तानादि को पैदा करने वाले पति बनते हुए भाई चारे को छोड कर मुझमे प्रवेश करो ॥ ३ ॥

हे यमी! असत्य बोलने वाले को हम सत्य बोलने वाला कैसे कहे। जलो को धारण करने वाले सूर्य भी अन्तरिक्ष मे अपने प्रकाश के साथ विराजमान है। इस लिये अभिन्न माता-

पिता व ले हम दोनो उन्ही के सामने तेरा इच्छित कार्य करने मे असमथ होगे ।। ४ ।।

हे यम ! सन्तान की उत्पत्ति के समय ही देव ने हम दोनो को माँ के पेट मे ही दाम्पत्य बन्धन मे जकड दिया है, उस देव के दिये हुये फल को कौन निष्फल कर सकता है। त्वष्टा देव के गर्भ मे ही हमारे दम्पत्ति करण रूप कार्य का आकाश और पृथ्वी दोनो जानते है। इसलिए यह सत्य है ।। ५ ।।

हे यमी ! सत्य बोलने के अपनी वाणी रूपी बैल को कौन चुनता है। कार्य करने वाला, पराक्रमी, गुस्सा और घृणा से रहित, अपने शब्दो से सुनने वालो के हृदयो को आकर्षित करने वाला, जो पुरुष हमेशा सत्य बोलता है वह उसके फल मे सैकडो युगो तक जीवित रहता है ।। ६ ।

हे यम ! हमारे सबसे पहले दिन को कौन समझ रहा है एव किस पुरुष की इस पर दृष्टि है। फिर कौन सा मनुष्य इस बात को अन्य से कहेगा। दिन देवता लोगो का स्थान है क्यो कि ये दोनो ही महान् है। अत मेरे अनुकूल मे कष्टो को न देने वाले तुम, अनेको कार्यों के करने वालो के सम्बन्ध मे कैसे कह सकते हो। ७ ।।

मेरी अभिलाषा है कि जिस प्रकार एक पत्नी अपने पति के हाथो मे अपना शरीर सौप देती है, उसी प्रकार मै भी यम राज को अपना शरीर अपण कर दू और जिस प्रकार एक गाडी के दोनो पहिये ही रास्ते को पार कर सकते है उसी प्रकार मैं भी हो जाऊँ ।। ८ ।।

हे यमी ! देवता लोग बराबर घूमते हैं। वे हमेशा सतर्क रहते हैं। इस लिये हे मेरी बुद्धि को धम के विरुद्ध करने वाली, तू मुझको छोड दे और किसी की पत्नी जाकर बन जा और जल्दी ही रथ के पहिये के समान उसके साथ जुडजा ।। ९ ।।

यमराज के लिये इसके सेवक दिन रात यज्ञ करे, सूर्य को दमकने वाला तेज रोज इसके लिये निकले। आकाश और पृथ्वी जिस प्रकार आपस मे जुडे हुये है, उसी प्रकार मैं भी उसके भाई चारे से पृथक होकर उसके साथ रहूँ ॥ १० ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ॥ ११ ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा
यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्व तद् रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥ १२ ॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ।
अन्येन मत् प्रमुदःकल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे
वष्ट्येतत् ॥ १३ ॥

न वा उते तनूं तन्वा सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजातै लिबुजेव
वृक्षम् ॥ १५ ॥

अन्यमू षु यम्यन्य उ त्वां परिष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं
सुभद्राम् ॥ १६ ॥

त्रीणि-च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ॥ १७ ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ
ऋतून् ॥ १८ ॥

रपद् गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मन. ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठ: प्रथमो
विवोचति ॥ १६ ॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्ववंती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्नि होतार विदथाय
जीजनन् ॥ २० ॥

शायद आगे चल कर ऐसे दिन आयेंगे जब कि बहिन अपने भाई द्वारा भायत्वि को प्राप्त करने लगेगी। पर अभी ऐसा नही हो सकता इसलिये हे यमी! तू किसी अन्य समर्थवान् पुरुष के लिये अपना हाथ बढा और मुझको छोड कर उसे ही पति बनाने की इच्छा कर ।। ११ ।।

वह भ्राता कैसा, जिसके मौजूद होते हुये भी वहिन अपनी इच्छित कामनाओ को नष्ट कर दे। वह कैसी बहिन जिसके सामने कि भाई नष्ट हो जाय। इसलिये तुम मेरी इच्छा के अनुसार चाल चला करो ॥ १२ ॥

हे यमी! मैं तेरी इस इच्छा को पूरी नही कर सकता और न ही तेरे शरीर को छू सकता हूँ। अब तू मुझको त्याग कर कि दूसरे पुरुष से इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर। मैं तेरे भायत्वि की इच्छा नही करता ॥ १३ ॥

हे यमी! मैं तेरी देह को नही छू सकता। धर्म को जानने वाले, भाई-बहिन के इस प्रकार के सम्बन्ध को पाप कहते है। अगर मैं ऐसा न करूंगा तो यह कार्य मेरे हृदय, मन और प्राणो को भी नष्ट कर देगा ॥ १४ ॥

हे यम! तेरी कमजोरी पर मुझे दु ख है। तू मेरी ओर आकर्षित नही है। मैं तेरे हृदय को न जान सकी। जिस प्रकार

कि लगाम के वश मे आया हुआ घोड़ा अन्यत्र नही जा सकता, वैसे ही तू भी किसी और स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करेगा। १५ ॥

हे यमी ! रस्सी जिस प्रकार घोडे से बधी होती है, जडें जिस प्रकार पेड को जकड लेती हैं वैसे ही तू किसी अन्य पुरुष से मिल। तुम दोनो का मन एक ही हो और फिर तू अत्यन्त आनन्द प्राप्त कर ॥ १६ ॥

सारे जगत को ढकने वाले जल आदि का देवताओ ने निर्माण किया। जल ही प्रिय दर्शन देने वाला विश्व को एक दृष्टि से देखता है। वायु तत्व भी दर्शनीय है और विश्व द्रष्टा है। औषधि तत्व भी उसमे है। इन तीनो की देवताओ ने पृथ्वी का पोषण करने के लिये जन्म दिया ॥ १७ ॥

महान् अग्नि देवता ! अपने सेवन के लिए यज्ञो द्वारा आकाश से जल की वर्षा करते है। यह अपनी सुमति द्वारा सबको इस प्रकार पहचान लेते है। जिस प्रकार कि वरुण अपनी बुद्धि के द्वारा सबको पहचान लेते है। वह अग्नि यज्ञ मे पूजनीय देवताओ का पूजन करते है। १८ ॥

जलो को धारण करने वाले सूर्य की रक्षक वाणी और अन्तरिक्ष मे घूमने वाली सरस्वती मेरे द्वारा अग्नि का स्तवन करें और मेरे स्तोत्र रूप नाद मे मन की रक्षा करें फिर देवमाता अदिति मुझे फल दे। भाई के समान हितकारी अग्नि मुझे उत्कृष्ट सेवक बनायें ॥ १९ ॥

अध्वर्युओ ने देवताओ को बुला करके अग्नि को देवता लोगो के लिये यज्ञ करने के लिये अवतरित किया। तभी यह कल्याण मही मन्त्र वाणी और सूर्य की उषा यज्ञो की सिद्धि के लिये अवतरित होती है ॥ २० ॥

अध त्य द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध
धीरजायत ॥ २१ ॥
सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यो वाजं ससवाँ उपयासि
भूरिभिः ॥ २२ ॥
उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते
मती ॥ २३ ॥
यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति
द्यून् ॥ २४ ॥
श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥ २५ ॥
यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद् विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं
वीतात् ॥ २६ ॥
अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्य उषसो अनु रश्मीनन् द्यावापृथिवी आ विवेश ॥ २७ ॥
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।
प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति द्यावापृथिवी आ
ततान ॥ २८ ॥
द्यावा क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं
यन् ॥ २९ ॥

**देवो देवान् परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्य प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतु समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा
यजीयान् ॥ ३० ॥**

जब सन्कारित सोम के लाने पर हवन की निष्पादक अग्नि का वरण किया जाता है तब चन्द्रमा और अग्नि के सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कार्य भी दूर हो जाते है ॥ २१ ॥

हे अग्नि देवता ! तुम हवन को बडे अच्छे ढ ग से सम्पन्न करते हो। जैसे हरी-भरी वस्तुऐ खाने वाला जानवर अपने मालिक को सुन्दर दिखाई देता है, वैसे घी आदि से पूजने वाले अपने सेवक को तुम दर्शन देते हो। क्यो कि तुम प्रार्थनाओ से प्रसन्न होकर अपने सेवक का प्रशसा करते हुए हवन की सम ग्री का देवताओ के पास पहुँचाते हो ॥ २२ ॥

हे अग्नि देवता ! आकाश रूपी पिता और पृथ्वी रूपी माता को जागृत करो। जैसे सूर्य अपने प्रकाश को फैलाते है वैसे ही तुम फैलाते हैं वैसे ही तुम अपने तेज को भी फैलाओ। यह सेवक जिन देवताओ की स्तुति करता है उनकी अग्नि स्वय इच्छा करते हैं। वे उनको मन चाही वस्तु प्रदान करने के लिये अपने यजमान के पास आते है। २३ ॥

हे अग्नि देवता ! जो सेवक तुम्हारी कृपा का दूसरो से वर्णन करता है। वह यजमान तुम्हारी कृपा मे सभी जगह ख्याति प्राप्त करता है। वह सेवक अन्न, घोडो आदि से सम्पन्न होना है और युगो तक यश का भागी बना रहता है ॥ २४ ॥

हे अग्नि देव ! तुम इस देवता लोगो के स्थान यज्ञ के घर में हमारे निमन्त्रण को स्वीकार करो। जल-द्रावक

रथ को उन देवगणो के लिये जोडो । देवताओ को पालने वाली पृथ्वी और आकाश को भी लाओ । यहाँ सभी देवता आवे ॥ २५ ॥

हे अग्नि ! तुम आदरणीय हो । जब मन्त्रो और हवियो की देवताओ मे संगति हो तब तुम प्रार्थना करने वालो को रत्नादि देने वाले हो । और बहुत सा धन प्रदान करने वाले बनो ॥ २६ ॥

सुबह होते ही सूर्य भी उदय हो जाते हैं । यह दिनो के साथ भी प्रकाशित रहते है । यही अग्नि सूर्य बनकर ऊषा और किरणो दोनो को प्रकाशित करते है । वही सूर्य रूपी अग्नि आकाश और पृथ्वी को सब ओर से प्रकाशित करती है ॥ २७ ॥

यह अग्नि देव रोज उषा काल मे चमकते और दिन भर दमकते रहते है । यही सूर्य रूप अग्नि अनेक प्रकार से फैली हुई किरणो से प्रकाश भरते है । यह आकाश और पृथ्वी को भी प्रकाशित करते है ॥ २८ ॥

आकाश, पृथ्वी मुख्य और सत्य वाणी है । जब अग्नि देवता अपने भक्त के पास यज्ञ की सम्पन्नता के लिये बठे तब उन आकाश और पृथ्वी की प्रार्थना की जाय ॥ २९ ॥

हे अग्नि देवता ! तुम विशाल ज्वालाओ से सम्पन्न हो । हवन से पूज्य देवताओ पर काबू करते हुये अनेक पूजन की कामना करते हुये उन्हे हवि पहुँचाओ । तुम धूम रूप पताका वाले, समिधाओ से दीप्त होने वाले, देवाह्वाक तथा पूजनीय हो । तुम हमारी हवन की सामग्रियो को पहुँचाओ ॥ ३० ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुत रोदसी मे ।

अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा शिशोताम् ॥ ३१ ॥

स्वावृग देवस्यामृत यदी गोग्तो जातासो धारयन्त उर्वी विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्य घृत वा' ॥ ३२ ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रत चकृमा को वि वेद । मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छलोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति । यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

यस्मिन देवा विदथे मादयन्ते विवस्वत सदने धारयन्ते । सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनि चरतो अजस्रा ॥ ३५ ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि सचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म । मित्रो नो अत्रादितिरन गान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा । मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ । मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥ ३९ ॥

स्तुहि श्रुत गर्तसद जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम् । मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत् ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ ४० ॥

आकाश और पृथ्वी के अधिष्ठात्री देवतागण ! जल कार्य

को वढोत्तरी के लिये तुम्हारी पूजा करता हूं। हे आकाश और पृथ्वी! मेरी प्रार्थना को सुनो, और ऋत्विज जब अपनी शक्ति को हवन आदि के कार्यों में लगावे तब तुम हमको जल देकर हमारी वढोत्तरी करें ॥ ३१ ॥

सुधा के समान परोपकार करने वाला जल जब किरणो से निकलता है और दवाइयो आकाश और पृथ्वी मे प्राप्त होती है और जब अग्नि दीप्तीयो अन्तरिक्ष मे क्षरण शील जल का दोहन करती है तब हे अग्नि देवता! तुम्हारे द्वारा प्रकट उस जल का सभी प्राणी मात्र अनुसरण करते है ।३२॥

देवताओ में शक्तिशाली यम हमारे यज्ञ का कुछ भाग स्वीकार करे। कही हमसे यम के खुश करने वाले कार्य का क्रमण हो गया तो यहाँ देवाह्वाक अग्नि प्रतिष्ठित है यही हमारे पापो को दूर करेगे। हमारे पास प्रार्थना के समान हवन की सामिग्री भी है। उससे अग्नि को सन्तुष्ट करके यम सम्बन्धी पाप से छूट सकेगे ॥ ३३ ॥

यहाँ यम का नाम लेना ठीक नही है। क्योकि इसकी बहिन ने इसके भार्यात्व की प्रार्थना की है। फिर भी जो इन यम की प्रार्थना करे। हे अग्नि देवता! तुम इस घृणा का विनाश कराते हुये उस स्तुति करने वाले की रक्षा करो ॥ ३४ ॥

जिन अग्नि के यज्ञ निष्पादक तरीके से विराजमान होने पर देवतागण आनन्दित होते है और जिनके कारण पुरुष सूर्य लोक मे रहते है। जिन अग्नि के द्वारा ही देवता लोगो ने प्रकाशित तेज को लोकतत्व मे प्रतिष्ठित किया है तथा अन्धकार को दूर करने वाली किरणो को लेकर सोम मे विराज मान किया है ऐसे विशाल अग्नि की सूर्य और चन्द्रमा बराबर पूजा करते हैं ॥ ३५ ॥

वरुण के जिस स्थान पर देवतागण भ्रमण करते हैं, वह स्थान हमसे छुपा है। देवता लोग इस जगह पर वरुण से हमारे दोष रहित होने की बात कहे। सविता अदिति, आकाश और मित्रगण भी अग्नि की कृपा से हमे निर्दोष ही कहे ॥ ३६ ॥

हम मित्र रूप इन्द्र के लिये महान् कार्य करने की अभिलाषा करते है, उस दुश्मन का विनाश करने वाले महान् नेता, बज्र को धारण करने वाले इन्द्र को मै नमस्कार करता हू ॥ ३७ ॥

हे वृज को नाथ करने वाले इन्द्र देवता ! तुम वृज हनन करने वाले के रूप मे जेसे प्रसिद्ध हो वैसे ही अपनी शक्ति से भी प्रसिद्ध हो। इसलिये अपने धन को मुझे दे दो ॥ ३८ ॥

मेढक वर्षा ऋतु मे जिस प्रकार पृथ्वी को पार कर जाता है वैसे ही तुम भी पृथ्वी को पार करके ऊपर की ओर जाते हो। अग्नि की मेहरवानी से यह हवा हमको प्रसन्न करने वाले होकर रहे। मित्रगण देवता लोग और वरुण देवता भी इस कार्य में जुड कर जैसे अग्नि घास फूँस सबको जला देता है वैसे ही हे देव ! हमारे कष्टो को दूर करो ॥ ३९ ॥

हे स्तुति करने वाले पुरुष ! जिनका घर मरघट है राक्षसो के स्वामी हैं, जो महान पराक्रमी, डर पैदा करने वाले और पास आकर मारने वाले हैं उन रुद्र देवता की पूजा कर। हे दु खो को दूर करने वाले इन्द्र ! हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर हमको सुख दो। तुम्हारी सेना हमसे अलावा तुम्हारे लिये घृणा रखने वाले का ही नाश करे ॥ ४० ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४१ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ
धेह्यस्मे ॥ ४२ ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ ४३ ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४४ ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त
इहागमिष्ठाः ॥ ४५ ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु दिक्षु ॥ ४६ ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४७ ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ ४८ ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत ॥ ४९ ॥

यमो नो गातुं प्रथमो वि वेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेता एना जज्ञाना पथ्या
अनु स्वाः ॥ ५० ॥

मरे हुये पुरुष का संस्कार करने वाले पुरुष अग्नि को

अभिलाषा करते हुये सरस्वती को बुलाते हैं। और ज्योतिष आदि मे भी सरस्वती को ही पूजते है। वह देवी हवन करने वाले अपने भक्त को उसकी इच्छा के पदार्थ प्रदान करें ॥ ४१ ॥

वेदी के दक्षिण विराजमान पूर्वज भी सरस्वती को आमन्त्रित करते है। हे पितरो! तुम इस यज्ञ मे आते हुये खुशी होओ। तुम सरस्वती को सन्तुष्ट करो और हवियो को प्राप्त करके आनन्दित होओ। हे सरस्वती! तुम पूर्वजो द्वारा बुलाई गई रोग से हीन इच्छित अन्न को हममें स्थापित करो ॥ ४२ ॥

हे सरस्वती देवी! तुम पूर्वजो सहित अपने को सगुण सन्तुष्ट करती हुई एक ही रथ पर आती हो। अनेको पुरुषो और जनता को सन्तुष्ट करने वाल अन्न भाग और धन को मुझ सेवक को भी दो ॥ ४३ ॥

अवस्था तथा गुणो में महान अथवा निकृष्ट और मध्यम पूर्वज भी उठें। यह पितर चन्द्रमा का भक्षण करने चले है। यह प्राण से सम्पन्न देह को प्राप्त होने वाले, प्यार करने वाले और वास्तविकता के जानने वाले हैं। आने वाले कालो मे से सब पितर हमारी रक्षा करें ॥ ४४ ॥

मैं कल्याण करने वालो के सामने जाता हूँ। यज्ञ की रक्षा करने वाली अग्नि के सामने उपस्थित होता हूँ। अतः बर्हिषद्र नाम का जो पितर स्वधा के साथ सोम का पान करते हैं उन्हे हे अग्नि देवता मेरे पास बुलाओ ॥ ४५ ॥

जो पूर्वज पहले लोक को जा चुके है, जो अब गये हैं, या जो इस समय इसी लोक मे उपस्थित हैं, जो विभिन्न दशाओ मे निवास करते हैं उन सबको प्रणाम है ॥ ४६ ॥

मालती नामका पितृ देवता यजमान प्रदत्त हवि द्वारा कव्य नामक पितरो के साथ बेठते है, यम नाम के पितृ नेता भक्त के द्वारा प्रदान की हुई हवि मे अङ्गिरा नामक पितरो के साथ बढते है । और वृहस्पति नाम के पितृ नेता ऋम्व नामक पितरो सहित आगे आते हैं । इनमे मालतो आदि देवगण जिन पितरो को हवन मे बुलावा देते हैं और जो कव्यादि को आहुति से प्रवृद्ध करते हे, वे पितर आने वाले समय में हमारे रक्षक हो । ४७ ।।

यह सत्कारित सोम चखने के योग्य है । यह मीठा है इसलिये स्वाद से पूर्ण है, यह तेज होने मे नशे मे भरने वाला है, यह रस से युक्त है अतः इसको पीने वाले इद्र का कोई भी राक्षस युद्ध मे सामना नही कर सकता ।। ४८ ।।

पृथ्वी को पार करके किसी और देश (विदेश) मे जाने वाले, अनेक पितरो के रास्ते पर चलने वाले विवस्वान् के पुत्र मृतको के स्वामी यमराज का पूजन करते है ।। ४९ ।।

हमारे मृतको के रास्ते से यमराज भली भाँति परिचित हैं। देवता और मनुष्य दोनो को ही इस माग से जाना होता है । आत्म साक्षात्कार से विमुक्त मनुष्यो को कार्य फल रूप स्वर्ग अवश्य मिलता है । जिन मार्गों से हमारे पूर्वज गये थे और जिस रास्ते से वे अपने कार्यो के अनुसार इस पृथ्वी पर आते है, उन सभी रास्तो से यमराज भली भाँति परिचित हैं ।। ५० ।।

बर्हिषद पितरः ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शतमेनाधा न श योररपो दधात ।। ५१ ।।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येद नो हविरभि गृणन्तु विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितर. केन चिन्नो यद् व आग पुरुषता
कराम ॥ ५२ ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतु कृणोति तेनेद विश्व भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो
ननाश ॥ ५३ ॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैर्येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
उभा राजानो स्वधया मदन्तौ यम पश्यासि वरुणं च
देवम् ॥ ५४ ॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एत पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्त यमो ददात्यवसानमस्म ॥ ५५ ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्यु शन्त समिधीमहि ।
उशन्नु शत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

द्युमन्तस्त्वेधीमहि द्युमन्तः समिधीमहि ।
द्युमान् द्युमत आ वह पितृन हविषे अत्तवे ॥ ५७ ॥

अगिरसो न. पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वय सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५८ ॥

अगिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्त हुवे यः पिता तेऽस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ॥ ५९ ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभि पितृभिः सविदान. ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो
मादयस्व ॥ ६० ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

हवन मे आगत वर्हिषद पितरो ! हमारी सुरक्षा के लिये हमारे सम्मुख आओ । यह हवियाँ तुम्हारे निमित्त हैं इनको खाओ । तुम अपने मगलमयी रक्षा के साधनो सहित आओ और रोग-का विनास करने वाले तथा पाप को दूर करने वाले वल को हममे दो ॥ ५१ ॥

हे पितरो ! जानु सिकोड कर दक्षिण की वेदी के ओर प्रतिष्ठित हमारी हवि की प्रशसा करो । हमारे थोडे या वहुत किसी अपराध के कारण हमे हिंसित न करना, क्यो कि मनुष्य स्वभाव वश हमसे भी अपराध हो सकते हैं ॥ ५२ ॥

एकत्रित वीर्य को पुरुष की आकृति मे वदलने वाले त्वष्टा ने अपनी पुत्री सररायु का विवाह किया, जिसे देखने के लिये सारा ससार इकट्ठा हुआ । यम की माता सररायु का विवाह जब सूर्य के साथ हुआ तब सूर्य की अपनी वहनी पत्नी कही छुप गयी ॥ ५३ ॥

हे प्रेत ! जिस काठी को पुरुष उठाते हैं उससे तू यमराज के यहाँ जा । इसी रास्ते से तुझसे पहले पुरुष भी गये हैं । वहाँ देवताओ मे क्षात्र धर्म वाले वरुण और यम दोनो उपस्थित हैं । वे हमारे किये जाने वाले यज्ञो से खुश हो रहे है । उस यम लोक मे तुझको यम और वरुण दोनों दिखायी देगें ॥ ५४ ॥

हे दानवो ! इस स्थान को छोड दो । तुम चाहे पूर्व से ही यहाँ पर निवास करते हो या यहाँ पर नये आकर वस गये हो, यहाँ से भाग जाओ, क्यो कि यह स्थान इस मनुष्य को दिन-रात और जल के साथ रहने का यमराज ने प्रदान किया है ॥ ५५ ॥

हे अग्ने ! इस हवन को पूर्ण करने के लिये हम तुम्हारी

प्रार्थना करते एवं तुमको बुलाते हैं । तुम भली-भाँति सज-धजकर स्वधा की इच्छा वाले पितरो के लिये हवि के भक्षण हेतु लाओ ॥ ५६ ॥

हे अग्नि देव ! हम तुमको बुलाते हैं । तुम्हारी दया से हम यशवान् बन गये । हम तुमको प्रदीप्त करते हैं । हवन को ग्रहण कर तथा उसके भक्षण के लिये पितरो को यहा लाओ ॥ ५७ ॥

पुराने ऋषि अङ्गिरा हमारे पूर्वज है । नये मन्त्रो वाल अथर्वा और भृगु हमारे पितर हैं । यह सब सोम का पान करने वाले है । इनकी कृपा एव सुमति मे हम रहे । ये सब हमसे प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥

हे यम ! अङ्गिरा नामक यज्ञ की अभिलाषा करने वाले पितरो सहित यहाँ आकर सन्तुष्ट होओ । मैं तुमको ही नही, तुम्हारे पिता सूर्य को भी आमन्त्रित करता हूँ । वह इस कुशा के बिछौने पर बैठकर हवि स्वीकार करें उसी प्रकार उन्हे बुलाता हूँ ॥ ५९ ॥

हे यम ! अङ्गिरा नामक पितरो से समान बुद्धि वाले होकर इस कुश के आसन पर बैठो । साधु-सन्तो के मंत्र तुम्हे बुलाने मे पूर्ण हो । तुम हमारी हवि पाकर आनन्दित होओ ॥ ६० ॥

मौत का अन्तिम सस्कार करने वाले मनुष्यो ने मरे हुये पुरुष को पृथ्वी पर से उठाकर काठी पर रखा और आकाश की ओर भेज दिया । पृथ्वी को विजयी करने वाले आंगिरस जिस रास्ते से गये, उसी रास्ते से इसे भी आकाश मे भेज दिया ॥ ६१ ॥

सूक्त २ (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा देवता—यम, मन्त्रोक्ता, जातवेदाः, पितरः। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १ ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ २ ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेममेनं प्र हिणुतात् पितॄँरुप ॥ ४ ॥

यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेममेनं परि दत्तात् पितृभ्यः।
यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनीर्भवाति ॥ ५ ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्।
त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ॥ ६ ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ७ ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥ ८ ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।

अज यन्तमनु ताः समृण्वतामथेतराभिः शिवतमाभिः शृतं कृधि ॥ ९ ॥
अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधावान् ।
आयुर्वसान उप यातु शेषः स गच्छतां तन्वा सुवर्चाः ॥ १० ॥

सोमयाग मे सेवक यम के लिये सोम को सिद्ध करते है। घी आदि हवन की सामिग्री उत्पवन आदि सस्कार द्वारा यम को प्रदान की जाती हैं। मन्त्र आदि से सुसज्जित हवि को दूत के समान अग्नि वहन करते हैं। वह ज्योतिष्टोम आदि नाना प्रकार के हवन यम को मिलते हैं ॥ १ ॥

हे भक्तो ! यम की प्राप्ति के लिये सोम तथा घी आदि की आहुति दो। पूर्व पुरुषो को मन्त्र दृष्टा अङ्गिरा आदि ऋषि मुनियो को प्रणाम है ॥ २ ॥

हे सेवको ! घी से सम्पन्न हवन की सामिग्री को यमराज के लिये दो। वे हवि को प्राप्त करके हमे भी जीवित मनुष्यो मे स्थान देंगे तथा सौ वर्ष की आयु प्रदान करेंगे ॥ ३ ॥

हे अग्नि देवता ! इस प्रेत का विनाश मत करो। इसके प्राणो को कही और मत फेंको और शोक भी मत करो ॥ ४ ॥

हे अग्नि देव ! जब तुम इस हवि रूपी देह को पक्का कर लो तब इसे रक्षा के लिये पितरो को दो। जब यह असुनीति देवता को प्राप्त हो तब यह देवताओ पर काबू पाने मे असमर्थ न हो ॥ ५ ॥

तीन कन्दुक हवनो को सम्पन्न करते समय यम के लिये सोम, निष्पन्न करते हैं। आकाश, पृथ्वी, दिन, रात, जल, दवाईया यह छेओ वस्तुये यमराम के लिये ही प्रकट हुई हैं। सभी छन्द भी यम मे मौजूद हैं ॥ ६ ॥

हे मरे हुये पुरुष ! तू नेत्रो के द्वार से सूर्य लोक को प्राप्त हो। सूत्रात्म रूप से वायु को प्राप्त हो, और इन्द्रियो से आकाश-पृथ्वी को जाया अन्तरिक्ष व जल को जा। इन जगहो पर अगर तेरी अभिलाषा है तो जा वरना औषधि आदि मे समा जा ॥ ७ ॥

हे अग्नि देवता ! अपने भाग इस "अज" को तेज से सतप्त करो। उसे तुम्हारा तेज और ज्वाला तपावें। तुम्हारे जो छोटे बडे शरीर है उसके द्वारा इस प्रेत को स्वर्ग लोक प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥

हे अग्नि देवता ! तुम्हारी भयकर और दुःख पूर्ण लपटो से आकाश और अन्तरिक्ष दोनो दुःखी है वे लपटे इस 'अज' को मिल जावें। अन्य आनन्द देने वाली ज्वालाओ से तुम इस प्रेत को हवन की सामिग्री के समान ही पकाओ ॥ ९ ॥

हे अग्नि देव ! हवि रूप से जो प्रेत तुम्हे प्रदान किया गया है और हमारे प्राप्त स्वधा सम्पन्न होकर तुममे विचरण कर रहा है उसे तुम स्वर्ग लोक के लिये छोडो और उसका पुत्र आयुष्मान होकर घर को लौट आवे। यह मनुष्य सुन्दर शरीर वाला तथा स्वर्ग मे रहने के लायक हो ॥ १० ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितृन्त्सुविदत्रां अपीहि यमेन ये सधमाद मदन्ति ॥ ११ ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा ।
ताभ्यां राजन् परि धेह्येन स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ १२ ॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु ।
तावस्मभ्य दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥ १३ ॥

सोम एकेभ्य. पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥
ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृध ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजां अपि गच्छतात् ॥ १५ ॥
तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥
ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥
सहस्रणीथा कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजा अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥
स्योनास्मै भव पृथिव्यनृक्षरा निवेशनी ।
यच्छास्मै शर्म सप्रथा ॥ १९ ॥
असबाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।
स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुत ॥ २० ॥

हे मनुष्य ! तू अब स्वर्ग लोक को जाने वाला है। सरमा नाम की कुतिया श्याम तथा शबल नामक दोनो बेटो के सहित वैभव सम्पन्न पितरो के पास जा ॥ ११ ॥

हे पितरो के भगवान ! पितर रास्ते मे चार आंखो वाले हस यमपुर की देखभाल करने के लिये तुम्हारे द्वारा नियुक्त हैं, उन्हे रक्षा के लिये इस प्रेत को दो। और तुम्हारे लोक मे निवास करने वाले को कष्टो से रहित स्थान हो ॥ १२ ॥

बडी-बडी नाक वाले, प्राणियो के प्राणो मे सन्तुष्टि पाने वाले, प्रणो का अन्त करने वाले, महाशक्तिशाली यमदूत सब जगह विचरण करते हैं। वे दोनो दूत हमको सूर्य के दर्शन के लिये पांचो इन्द्रियो से युक्त प्राण को हमारी देह मे प्रतिष्ठित करें ॥ १३ ॥

एक पितरो को, नदी रूप में सोम प्रवाहित हैं, दूसरे

पितृ लोग घी का उपयोग करने वाले हैं। ब्रह्मयाग मे अथर्वा के स्तोत्रो का उच्चारण करने वालो के लिये शहद की नदी बहती है। हे मरे हुये मनुष्य ! तू उन सब वस्तुओ को प्राप्त कर ॥१४॥

पहले पुरुष जो कि सत्य बोलते थे तथा सत्य भी बुलवाते थे। उन तपस्वी पुरुषो को हे यम से नियमित पुरुष ! तू प्राप्त कर ॥ १५ ॥

तप करके, हवन आदि करकें, बुरे कर्म और उपासना द्वारा महातप करते हुए जो पुरुष पुण्य लोको को प्राप्त करते हैं हे पुरुष ! तू भी उन तपस्वियो के लोक को ही जा ॥ १६ ॥

जो वीर पुरुष युद्ध के मैदान मे वैरियो पर हमला करते हैं, जो लडाई मे ही मर जाते हैं, जो अन्न, दक्षिणा वाले हवनो को करते हैं हे प्रेत ! तू उनसे प्राप्त होने वाले सभी फलो को पा ॥ १७ ॥

जो अनन्त दृष्टा ऋषि सूर्य की रक्षा करते है हे पुरुष ! तू यम को नीयमान होकर भी उन तपस्वियो के कर्म फल को पा ॥ १८ ॥

हे वेदी रूपी पृथ्वी ! तू सज्जन पुरुष के लिये काटो से रहित होओ और इसे सब प्रकार का आनन्द प्रदान कर। १९॥

हे सज्जन पुरुषो ! तू यज्ञ आदि के वेदी रूपी फैले हुए स्थान में सम्पन्न हो। पहले तूने इन अच्छे कर्मा वाली हवियो को दिया है, वह तुझे शहद आदि रसो के बहते हुए रूप मे मिले ॥ २० ॥

ह्वयामि ते मनसा मन इहेमान् गृहाँ उप जुजषाण एहि ।
स गच्छस्व पितृभिः स यमेन स्योनास्त्वा वाता उप वान्तु शग्मा ॥ २१ ॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्रुत ।
अजेन कृण्वन्त शीत वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥
उदह्वमायुरायुषे क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ॥ २३ ॥

मा ते मनो मासोर्माङ्गाना मा रसस्य ते ।
मा ते हास्त तन्व' किं चनेह ॥ २४ ॥

मा त्वा वृक्ष स बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।
लोक पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

यत् ते अङ्गमतिहितं पराचैरपान प्राणो य उ वा ते परेतः ।
तत् ते सगत्य पितर सनीडा घासाद् घास पुनरा वेशयन्तु ॥ २६ ॥

अपेम जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्त निर्वहत परि ग्रामादित. ।
मृत्युर्यमस्यासीद् दूत प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां चकार ॥ २ ॥
ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टानस्मात् प्र धमाति यज्ञात् ॥ २८ ॥
स विशन्त्विह पितरः स्वा न स्योनं कृण्वन्त प्रतिरन्त आयुः ।
तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरद. पुरूची ॥ २९ ॥
यांते धेनु निपृणामि यमु मे क्षीर ओदनम् ।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽसासदजीवन ॥ ३० ॥

हे प्रेत पुरुष ! अपने द्वारा तुझको इस लोक मे भेजता हूँ । जिन गृहो मे तेरे लिये अच्छे कार्य किये जाते हैं तू हमारे उन घरो मे प्रवेश कर और सस्कार होने के पश्चात् पिता,

पितामह और प्रपितामह आदि के साथ सपिण्डीवरण मे मिल। यम के पास पहुँचा हुआ तू पितृलोक मे जाकर मार्ग की मेहनत को दूर करने वाले सुखकर वायु को प्राप्त हो ॥ २१ ।

हे प्रेत ! तुझे मरुद्गण आकाश मे धारण करें। वायु ऊँचे लोको मे पहुँचावें। जल को धारण करने वाले एव बरसने वाले वादल समीयस्थ अज सहित तुझे वृष्टि जल से सिंचित करें ॥ २२ ॥

हे मनुष्य ! प्राणन और अपानन व्यापार के लिये मैं तेरी आयु को बुलावा देता हूँ। तेरा मन सस्कार से उत्पन नयी देह को प्राप्त हो। और फिर तू पितरो के पास पहुँच ॥ २३ ॥

हे प्रेत। तेरा मन और तेरी इन्द्री तेरा साथ न छोडे। और तेरे शरीर का कोई भी अश नष्ट न हो। तेरे शरीर के अन्दर कोई विकृति न हो। खून वीर्य आदि भी पूर्ण मात्रा मे रहे। तेरे शरीर का कोई भी अग तुझसे अलग न हो ॥ २४ ॥

हे प्रेत ! तू जिस पेड के नीचे वैठे जहाँ कि वह तुझे दुखी न करें। तू जिस पृथ्वी का सहारा ले, वह तुझे कष्ट न दे। तू यम के प्रजा रूप पितरो मे स्थान पाकर वढ ॥ २५ ॥

हे प्रेत ! तेरा जो भाग शरीर से अलग हो गया था, सात प्राण फिर आच्छादित न होने के लिये निकल गये थे, उन सबको एक स्थान मे अवस्थित पितर एक देह से दूसरी देह मे सम्पन्न करें ॥ २६ ॥

हे जीवित प्राणियो ! इस प्रेत को अपने घर में ले जाओ। इस गांव से वाहर उठा कर ले जाओ। क्यो कि यम के दूत मृत्यु ने इसके प्राणो को पितर रूप मे देने के लिये ले लिया है ॥ २७ ॥

जो पिशाचो के समान पिता पितामह आदि पितरो मे घुल-मिल जाते है और माया केवल पर हवि का भक्षण करते हैं तथा पिण्डदाह करने वाले वेटे, नाती को चोट पहुँचाते हैं उन मगयावी दानवो को पितृ याग से अग्नि देव वहार निकालदें ॥ २८ ॥

हमारे गोत्र में पैदा हुए पिता, पितामह आदि सव पितर भली भांति यज्ञ में आवें और हमे प्रसन्न करें। हमारी उम्र मे वढोत्तरी करे। हम भी आयु पाते ही हवियो से पितरो का पूजन करते हुये वहुत समय तक जीवित रहे ॥ २९ ॥

हे प्रेत ! तेरे लिये गायो को दान करता हूँ। तेरे निमित जिस दूध मे वने हुये भोजन को देता हूँ उसके द्वारा तू यमलोक मे अपने जीवन का पूरा करने वाला हो ॥ ३० ॥

अश्वावतीं प्र तर या सुशेवाक्षांक वा प्रतरं नवीयः ।
यस्त्वा जघान वध्यः सो अस्तु मा सो अन्यद् विदत भागधेयम् ॥ ३१ ॥
यम परोऽवरो विवस्वान् ततः पर नाति पश्यामि कि चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वान न्वाततान ॥ ३२ ॥
अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णामदधुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत् तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥ ३३ ॥
ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

श तप माति तपो अग्ने मा तन्व तप ।
वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धर ।। ३६ ।।
ददाम्यस्मा अवसानमेतद्ध य एष आगन् मम चेदभूविह ।
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह ।। ३७ ।।
इमा मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ३८ ।।
प्रेमा मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ।। ३९ ।।
अपेमां मात्रा मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ।। ४० ।।

हे प्रेत ! मैं इस जगल के नये रास्ते से भीषण जन्तु जैसे रीछ, शेर आदि से रक्षा करता हुआ पार हो जाऊँ । अश्वावती नदी से तू हमको पार उतार । यह नदी हमको आनन्द देने वाली है । जो हत्यारा है, वह वध के योग्य होता हुआ भोग्यनीय पदार्थों को न पा सके ।। ३१ ।।

यम सूर्य से अत्यन्त तेजवान हैं । यम से अधिक कोई भी जन्तु नही है । यह यज्ञ यम मे ही व्यापक हैं । यज्ञ को सफल बनाने के लिये ही सूर्य ने पृथ्वी को पृथक-पृथक हिस्सो मे बांटा ।।है ३२ ।।

धर्म पर बलिदान होने वाले पुरुषो से देवगणो ने अविनाशी रूप को छिपा लिया । सूर्य के बराबर अन्य स्त्री की रचना करके दी । घोडी का रूप सरण्यु ने धारण किया अश्विनी कुमारो का पोषण किया । सूर्य का घर छोडते समय त्वष्टा की बेटी सरण्यु ने यमयमी के युग्म को घर पर ही छोड दिया था ।। ३३ ।।

पृथ्वी के अन्दर जो पूर्वज गाढे जाकर, काठ की तरह त्यागे जाकर, ऊर्ध्व लोक-पितृलोक का जो अग्नि दाह सस्कार से प्राप्त हुए हैं। उसी प्रकार हे पितरो ! हवि को सेवन करने के लिये पधारो ॥ ३४ ॥

जो पूर्वज अग्नि मे शुद्ध हुए एव गाढने से पवित्र हुए और पिण्ड, पितृयाग से शान्त हुए। आकाश मे रहते है। हे अग्ने ! तुम उन्हे अच्छी प्रकार समझते हो। पितृयाग आदि का भक्षण करें जिन्हे कि उनकी प्रजा करती है ॥ ३५ ॥

हे अग्ने ! इस अपने शरीर को अधिक मत जलाओ। वह कार्य करो जिससे इसको सान्तवना मिलती हो। तुम्हारी शोषक अग्नियाँ वन को गमन करें एव रसहारक ओज पृथ्वी पर विद्यमान रहे। हमारे शरीरो को आप भस्म न करे ॥ ३६ ॥

(यम वाक्य) यह आया हुआ व्यक्ति मेरा ही इसलिये मैं इसको स्थान देता हूँ क्योकि यह अब मेरे समीप आया है इसलिये यह मेरा ध्यान करता रहे, यहा पर निवास कर सकता है ॥ ३७ ॥

श्मसान को हम नापते हैं क्योकि ब्रह्मा ने हमें सौ वर्ष की उम्र दी है इसलिये मध्य मे ही हमे मृत्यु प्राप्त न हो ॥ ३८ ॥

भली प्रकार से हम नापते है जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही ना मर जाँय ॥ ३९ ॥

दोषो को दूर करते हुए हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जायें ॥ ४० ॥

वीमां मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

निर्मिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
तथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा: ॥ ४५ ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषास्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा विधेम ॥ ४९ ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

विशेष प्रकार से हम इस श्मशान को नापते है जिससे कि हम सौ वर्ष की उम्र से पहले ही न मर जाय ॥ ४१ ॥

दोष रहित हम इस श्मशान को नापते है जिससे कि हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जाय ॥ ४२ ॥

सारे साधनो के होते हुए हम इस श्मसान की दूरी को नापते है जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जायँ ।। ४३ ।।

श्मसान की जगह को हम ठीक प्रकार से नापते है जिससे हमें सौ वर्ष की आयु से पूर्व ही न मर जायँ ।। ४४ ।।

श्मसान को जगह को मैंने नाप लिया उसी नापानुसार मैं इस प्रेत को प्रेसित कर चुका हूँ। इसी काय से ही मै सौ वर्ष तक जीवित रहुँ एव सो वर्ष की आयु से पहले ही मुझे मृत्यु प्राप्त न हो ।। ४५ ।।

प्राण, अपान, व्यान, उम्र, नेत्र ये सब आदित्य के दर्शन करने वाले हो ।। ४६ ।।

सतान विहीन होते हुए भी जो पूर्वज पापो को छोडते हुए परलोक को गमन कर गये, वे आकाश को पार करके स्वर्ग के ऊपर की दिशा मे निवास करते हुए पुण्य का फल भोगते हैं ।। ४७ ।।

नीचे की ओर द्यु लोक, उदन्वती और दूसरा हिस्सा पीलुमती है, तृतीय हिस्सा प्रद्यां है उसी जगह पर पूर्वज रहते हैं ।। ४८ ।।

हमारे पिता को जन्म देने वाले बाबा, पितामह के जन्म दाता पितर, और वे पितर जा बडे आकाश में प्रवेश कर चुके हैं, जो पूर्वज स्वर्ग एव भूमि पर वास करते हैं इन सारे पितरो को हम पूजते हैं ।। ४९ ।।

हे मृतक ! हम श्रद्धा से जो भो देते हैं, वह तेरा प्राण हैं। और कोई भो जीवन का साधन नही है। सूर्य के दशन करता हुआ तू इस श्मसान को प्राप्त कर। हे पृथ्वी ! माता जिस प्रकार अपनी सन्तान को आचँल से आच्छादित करता है

निर्ग्मां मात्रां मिमीमहे यथापर न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥

समिमा मात्रा मिमीमहे यथापरं न मासातै ।
शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

अमासि मात्रां स्वरगामायुष्मान् भूयासम् ।
तथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुराः ॥ ४५ ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।
अपरिपरेण पथा यमराज्ञ पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥

ये अग्रवः शशमाना परेयुर्हित्वा द्वेषास्यनपत्यवन्तः ।
ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि
दीध्याना ॥ ४७ ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।
तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

ये न पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
य आक्षियन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्य पितृभ्यो नमसा
विधेम ॥ ४९ ॥

इदमिद् वा उ नापर दिवि पश्यसि सूर्यम् ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्ये न भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

विशेष प्रकार से हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे कि हम सौ वर्ष की उम्र से पहले ही न मर जाय ॥ ४१ ॥

दोष रहित हम इस श्मशान को नापते हैं जिससे कि हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जाय ॥ ४२ ॥

सारे साधनो के होते हुए हम इस श्मसान की दूरी को नापते है जिससे हम सौ वर्ष से पहले ही न मर जायँ ॥ ४३ ॥

श्मसान की जगह को हम ठीक प्रकार से नापते है जिससे हमें सौ वर्ष की आयु से पूर्व ही न मर जायँ ॥ ४४ ॥

श्मसान की जगह को मैंने नाप लिया उसी नापानुसार मैं इस प्रेत को प्रेसित कर चुका हूँ। इसी काय से ही मैं सौ वर्ष तक जीवित रहूँ एव सौ वर्ष की आयु से पहले ही मुझे मृत्यु प्राप्त न हो ॥ ४५ ॥

प्राण, अपान, व्यान, उम्र, नेत्र ये सब आदित्य के दर्शन करने वाले हो ॥ ४६ ॥

सतान विहीन होते हुए भी जो पूर्वज पापो को छोडते हुए परलोक को गमन कर गये, वे आकाश को पार करके स्वर्ग के ऊपर की दिशा मे निवास करते हुए पुण्य का फल भोगते हैं ॥ ४७ ॥

नीचे की ओर द्यु लोक, उदन्वती और दूसरा हिस्सा पीलुमती है, तृतीय हिस्सा प्रद्यौ है उसी जगह पर पूर्वज रहते हैं ॥ ४८ ॥

हमारे पिता को जन्म देने वाले बाबा, पितामह के जन्म दाता पितर, और वे पितर जा बडे आकाश में प्रवेश कर चुके हैं, जो पूर्वज स्वर्ग एव भूमि पर वास करते हैं इन सारे पितरो को हम पूजते हैं ॥ ४९ ॥

हे मृतक ! हम श्रद्धा से जो भी देते हैं, वह तेरा प्राण हैं। और कोई भी जीवन का साधन नही है। सूर्य के दर्शन करता हुआ तू इस श्मसान को प्राप्त कर। हे पृथ्वी ! माता जिस प्रकार अपनी सन्तान को आँचल से आच्छादित करती है

उसी तरह इस शव को आप अपने ओज से आच्छादित करो ॥ ५० ॥

इदमिद् वा उ नापरं जरस्वन्यदितोऽपरम् ।
जाया पतिमिव वाससाभ्ये नं भूम ऊर्णुहि ॥ ५१ ॥
अभि त्वोर्णोमि पृथिव्या मातुर्वस्त्रेण भद्रया ।
जीवेषु भद्र तन्मयि स्वधा पितृषु सा त्वयि ॥ ५२ ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्न दधथुर्वि लोकम् ।
उप प्रेष्यन्त पूषण यो वहात्यञ्जोयानै पथिभिस्तत्र गच्छतम् ॥ ५३ ॥
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपा. ।
स त्वैतेभ्य परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेयभ्यः सुविदत्रियेभ्य ॥ ५४ ॥

आयुर्विश्वायु. परि पातु त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ ५५ ॥
इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।
ताभ्या यमस्य सादन समितीश्चाव गच्छतात् ॥ ५६ ॥

एतत् त्वा वासः प्रथम न्वागन्नपैतदूह यदिहाबिभः पुरा ।
इष्टापूर्तमनुसक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु ॥ ५७ ॥
अग्नेवर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व मेदसा पीवसा च ।
नेत् त्वा धृष्णुहरसा जर्हृषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्खयातै ॥ ५८ ॥
दण्ड हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वचसा बलेन ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधा अभिमातीर्जयेम ॥ ५९ ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन ।
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम् ॥ ६० ॥

जो भोजन इसने बुड्ढे होते हुए भी किया था और उसके अलावा कुछ भी खाने योग्य नहीं है। इस श्मशान के अलावा और कोई इसके पास स्थान नहीं है। हे भूमे ! इसे श्मसान को प्राप्त हुए जिस तरह से एक स्त्री अपने पति को कपडे से आच्छादित करती है वैसे ही इसे आप ढकलो ॥ ५१ ॥

हे मृतक ! सबो की मंगलमयी माता पृथ्वी के कपडे से मैं तुझे आच्छादित करता हूँ। जिन्दा होने पर दान की जो सुन्दर चीज पुरुष के पास होती है। वह सत्कार करने वालो पर हो। स्वधाकार अन्न जो पितरो के पास रहना है वह तेरे पास रहे॥ ५२॥

हे अग्ने ! हे सोम ! पुण्य लोक के रास्ते के आप रचियता हो, आपने सुख देने वाले स्वर्ग लोक के निर्माता हो। सूर्य को हैं ॥ ‑ लोक अपने मे रखता है, इस प्रेत का सरल रास्तो मे होकर स लोक की प्राप्ति कराओ॥ ५३ ॥

पीलुम हे प्रेत ! पशुओ को अहिंसित करने वाले पशुओ को है ॥ पालने वाले तुझे यहाँ से और किसी स्थान पर ले जायँ। जीवो की रक्षा करने वाले तुझे पितरो को भेट करें। अग्नि देव तुझे ग' वैभववान देवगणो को समर्पण करें॥ ५४॥

जीवन के ऊपर भ्रमण करने वाले देवता आयु तेरी रक्षक हो। पूषा तेरे पूर्व की ओर जाने वाले मार्ग मे रक्षक हो। हे प्रेत ! पुण्यात्माओ के रहने रुप नाक पृष्ठ मे तुझे सविता प्रतिष्ठित करें॥ ५५॥

हे मृतक ! भार ढोने वाले इन वृषभो को तेरे छोडे हुए

प्राणो को वहन करने के निमित्त मैं इनको जोडता हूँ। इस बैल गाडी द्वारा तू यम ग्रह को प्राप्त हो ॥ ५६ ॥

पहने हुए मुख्य कपडो का त्याग कर। जिन इच्छा पूर्तियो में तूने बांधवों को धन बाँटा था। अभीष्ट कर्म के परिणाम स्वरूप, वापी, कुआ, तालाब आदि को प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

हे प्रेत! इन्द्रियो से सम्बन्धित हिस्सो के अग्नि कि दाह निवारक कवच को धारण कर। हे प्रेत! स्थूल मेदमय हो जिससे यह अग्नि भस्म न करने की कामना करता हुआ तुझे इधर-उधर न गिरावे ॥ ५८ ॥

मरे ब्राह्मण के हाथ से बाँस के दन्ड पाता हुआ मैं कानो के तेज और उससे पाने के बल से सम्पन्न रहूँ। हे प्रेत! तू चिता मे वास कर और पृथ्वी पर हम सुख से रहते हुए अपने दुश्मनो एवं उनके कारनामों को दबावें ॥ ५९ ॥

मरे हुए क्षत्रीय के हाथ से धनुष को ग्रहण करता हुआ क्षात्र तेज से सम्पन्न रहूँ। हे धनुष! बहुत से धन को हमे प्रदान करने के लिये लाता हुआ इस जीवित लोक मे ही हमारे समक्ष आ ॥ ६० ॥

सूक्त ३ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—यम, मन्त्रोक्ता; अग्नि, भूमि, इन्दु, आप,। छन्दः—त्रिष्टुप्, पक्ति, गायत्री, अनुष्टुप, जगती, शक्करी, बृहती)

इय नारी पतिलोक वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥ १ ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोक गतासुतमेतमुप शेप एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि स बभूथ ॥ २ ॥

अपश्य युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्य परिणीयमानाम् ।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनय
तदेनाम् ॥ ३ ॥
प्रजानत्यघ्न्ये जीवलोक देवाना पन्थामनुसचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्त जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥ ४ ॥
उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् ।
अग्ने पित्तमपामसि ॥ ५ ॥
य त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥
इद त एक पर ऊ त एक तृतीयेन् ज्योतिषा स विशस्व ।
सवेशने तन्वा चारुरेधि प्रियो देवाना परमे सधस्थे ॥ ७ ॥
उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौक' कृणुष्व सलिले सधस्थे ।
तत्र त्व पितृभि सविदान स सोमेन मदस्व स
स्वधाभि ॥ ८ ॥
प्र च्यवस्व तन्व स भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मनो निविष्टमनुसविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥ ९ ॥
वर्चसा मां पितर' सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना घृतेन ।
चक्षुसे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु ॥ १० ॥

धर्म का पालन करने के लिये तेरे दान आदि के फल की कामना करती हुई यह स्त्री तेरे पास आती है। उसी प्रकार का अनुसरण करने वाली इस औरत को पुर्नजन्म मे भी तुम प्रजावती बनाना ॥ १ ॥

हे नारी ! तू मृतक पति के निकट बैठी है। अब तू इसके निकट से उठ। तू अपने पति से उत्पत्ती पुत्र पौत्रादि को प्राप्त कर चुकी है॥ २ ॥

किशोर आयु वाली जिवित गौ को मरे हुए के पास से ले जाता हुआ देखता हूँ। यह गाय अज्ञानी है इसलिये मैं इसे मृतक के पास से दूर करके अपने निकट लाता हूं ॥ ३ ॥

हे गौ! तू भूलोक को अच्छी प्रकार से जानती है, यश के रास्ते को देखती हुई, क्षीर, दही आदि से सम्पन्न होकर आ। तू अपने इस गोरति मालिक का सेवन कर तथा यह मृतक स्वर्ग लोक को प्राप्त करे ॥ ४ ॥

जल का तत्व एव रक्षक अंश सिवार एव बेत में है। हे अग्ने! तू भी पानी का पित्त रूप है। मैं तुझे बेंत की शाखा, घृत दूर्वा एव नदी के फेन आदि से तृप्त करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अग्ने! उसको सुखशाली करो जिसको तुमने भस्म किया था। दाह के स्थान पर क्याम्बू नाम की दूब उगे ॥ ६ ॥

हे प्रेत! तुमको परलोक पहुँचाने वाली यह गार्हपत्य अग्नि नामक ज्योति है। दूसरी अन्वाहार्य पचन और तीसरी आहवनीय नामक ज्योती है। तू आहवनीय से सुसंगत हो और संस्कृत देव अग्नि सवेशन से शरीर की वृद्धि करे फिर इन्द्रादि देवगणो का प्रियपात्र बने ॥ ७ ॥

हे प्रेत! इस जगह से उठ और चल जल्दी से चलकर के अन्तरिक्ष मे अपना घर बना और पूर्वजो से मिलकर सोम को पीकर प्रसन्न हो ॥ ८ ॥

हे प्रेत! अपने शरीर के सारे अवयवो को इकट्ठा कर। तेरा कोई भी शरीर का अवयव यहाँ रह न जाय। तेरा मन जिस परलोक स्थान पर व्याप्त हो वहाँ जा। तू जिस जगह को प्रेम करता है, तू उसी भूमि को प्राप्त कर ॥ ९ ॥

सोम पीने योग्य पूर्वज लोग मुझको ओजस्वी बनायें

सप.र के देवता मुझको मीठा घी दे और लम्बे समय तक दृष्टि बनी रहे इसलिये मुझको रोगही । तथा ताकतवान बनावे ॥ १० ॥

वर्चसा मां समनक्त्वग्निर्मेधा मे विष्णुर्न्यनक्त्वसान् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना माप. पवनैः पुनन्तु ॥ ११ ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु ।
वर्चो म इन्द्रो न्यनक्तु हस्तयोर्जरदष्टिं मा सविता कृणोतु ॥ १२ ॥

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वत सगमन जनाना यम राजानं हविषा सपर्यत ॥ १३ ॥

परा यात पितर आ च यातायं वो यज्ञो मधुना समक्तः ।
दत्तो अस्मभ्य द्रविणेह भद्र रयिं च न सर्ववीर दधात ॥ १४ ॥

कण्व कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्य श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥ १५ ॥

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतमम वामदेव. ।
शर्दिर्नो अत्रिरग्राभीन्नोमोभिः सुशसासः पितरो मृडता न ॥ १६ ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रमायुर्दधानाः प्रतर नवीयः ।
आप्यायमाना प्रजया धनेनाध स्याम सुरभयो गृहेषु ॥ १७ ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतु रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते ।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षण हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते ॥ १८ ॥

यद् वो मुद्र पितर सोम्य च तेनो सचध्वं स्वयशसो हि भूत ।

ते अर्वाग्नः कवय आ श्रृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ।। १९ ।।

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिषाचो दधाना ।
दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ।। २० ।।

मुझे अग्नि देव ओजस्वी बनावे और विष्णु मुझको मेधावी बनावे। ससार के देवता मुझको सुखी रखें और जल अपने पवित्र साधनो वायु अ श से मुझे पवित्र बनावे ।। ११ ।।

दिन भर घमड करने वाले देवता सखा और राज्य का अभिमानी वरुण मुझे वस्त्र युक्त करें। आदित्य हमारी उन्नति करते हुए हमारे दुश्मनो का सहार करें। इन्द्र मुझे बल तथा सविता आयुष्मान करें ।। १२ ।।

मृत धर्मी पुरुषो मे जन्म लेने वाला राजा यम पूर्व ही मर गये और फिर वे लोकान्तर को गये। सूर्य पुत्र को जीव ही मिलते हैं। हे ऋत्विजो! कर्मानुसार फल देने वाले यम की पूजा करो ।। १३ ।।

हे पूर्वजो! पितृयाग कर्म मे तृप्त हुए अब तुम अपनी जगह पर जाओ। हम जब आपको बुलावे तब आना। मधु-घृत से हमने तुम्हारा यज्ञ किया है उसको स्वीकार करके हमारे घर कुशलता, वैभव, पुत्र, पौत्र, पशु आदि प्रदान करो ।। १४ ।।

कण्व, कक्षीवान, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सोभरि, विश्वामित्र, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप और वामदेव नाम के कई प्रकार के पूज्यनीय ऋषि हमारे रक्षक हो ।। १५ ।।

हे विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, वामदेव नाम के महर्षियो! हमे सुख सम्पन्न करो। महर्षि अत्रि

ने हमारे घर की रक्षा स्वीकृत की है। हे पूर्वजो! हमारे प्रणाम आदि द्वारा तुम पूज्यनीय हो और तुम भी हमको सुख दो ॥ १६ ॥

बांधव की मृत्यु के कष्ट को मुर्दघाट पर छोडते हुये और मृतक के छूने के पास से स्वतन्त्र होते हुए घर को गमन करते हैं। इस प्रकार से हमारे कष्टो का निवारण हो गया है इसलिये पौत्र, पुत्र, पशु सुवर्ण, धन, सुन्दर सुगन्ध और चिर आयु से युक्त होंगे ॥ १७ ॥

सोमयाग के आरम्भ मे ही यजमान के काजल लगाते हैं। समुद्र की बढोत्तरी के अवसर पर उदित, रश्मियो के द्वारा देखने वाले, प्रकाशित चन्द्रमा को सोम रूप से अवस्थित होने पर ऋत्विज चार थालो मे सजाते हैं ॥ १८ ॥

हे पितरो! अपने सोमहि धन से युक्त हममे मिलो। क्यो कि अपने शुभ कार्यों से तुम यशशाली हो, हमारी इच्छा पूर्ण करो। हमारे यज्ञ मे आने पर हमारी आवाज को सुनो ॥ १९ ॥

हे पितरो! तुम अत्रि गोत्रीय व अंगिरा गोत्र के हो। नौ मास तक सत्रयाग करने पर स्वर्ग पर चढे हो। दस महीने तक याग पूर्ण करने पर दक्षिणा प्रदायक पवित्रात्मा हो। इस लिये इस विस्तृत कुश पर बैठकर हमारी हवि से सतुष्टी को प्राप्त करो ॥ २० ॥

अधा यथा नः पितरः परास प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः । शुचीदयन् दीध्यत उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ २१ ॥

सुकर्माण सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शचन्तो अग्नि वावृधन्त इन्द्रमुर्वी गव्यां परिषद नो अक्रन् ॥ २२ ॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्र॰ ।
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायो ॥ २३ ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
विश्व तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २४ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिश पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा इह स्थ ॥ २५ ॥

धाता मा निर्ऋत्या दक्षिणाया दिश॰ पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा इह स्थ ॥ २६ ॥

अदितिर्मादित्यै प्रतीच्या [illegible] पातु बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो य[illegible]
इह स[illegible] ॥ २७ ॥
सो[illegible] २[illegible]
[illegible]

प्राच्या त्वा दिशि पुरा सवृत' स्वधायामा दधामि बाहुच्युता पृथिवीद्यामिवोपरि ।
लोककृत' पथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा इह स्थ ॥ ३० ॥

हे अग्ने । हम रे सर्वश्रेष्ठ पूर्वज जिस प्रकार स्वर्ग को प्राप्त कर चुके हैं एव उक्थ के गायक पूर्वक अपने ओज से रात के अ धेरे को दूर करते है तथा उषाओ को दीप्त प्रदान करते है ॥ २' ॥

काम्य देव सुन्दर ओज एव सुकर्म वाले, अपने जीवन को तप से चमकाने वाले, देवत्व के प्रापक ग हपत्म को प्रदीप्त करते हुए इन्द को प्रार्थनाओ से प्रवद्ध करते हुए, गायो को ये पूर्वज हमारे यहाँ पर रहने वाली बनावें ॥ २२ ॥

हे अग्ने । आपके द्वारा यह यजमान देवताओ के प्रादुर्भाव को देखें। तुम्हारी कृपा से मनुष्य उर्वशी और परियो,को पाने वाला हो यह देवत्व प्राप्त मनुष्य तुम्हारी कृपा से गर्भाशय मे उत्पत्ति होने वाले मनुष्य की वृद्धि करने वाला हो ॥ २३ ॥

हे अग्ने । हमतो आपके दास हैं और आप हमारे पोषक हो । अत हम सुकर्मी हो । हमारे कृत्यो के फल को ये उषाकाल सत्य कर। हमारे लिये देवताओ द्वारा शुभ हो। पुत्रादि से हम सम्पन्न रहते हुये यज्ञ मे विस्तृत स्तोत्रा को बोल ॥ २४ ॥

सस्कार करने वाले मुझको मरुद्गण सहित इन्द्र पूव की दिशा से भयो से बचावे । दानी की दी गई पृथ्वी जैसे उपभोग्य स्वर्ग को बचाती है वैसे ही वह तेरो रक्षा करे। हम उनकी हवि से पूजा करते है जो स्वर्ग के मार्ग को दिखाती है तथा अपने

पुण्य फलो से मार्ग प्रदर्शित करते हैं। हे देव गणो ! तुम इस यज्ञ के हुत भाग होओ ॥ २५ ॥

दक्षिण दिशा के धाता देव पाप देवी निऋति के डर से मेरे को बचावे। दानी की जिस प्रकार से दी गई भूमि भिखारी के लेने योग्य स्वर्ग का पालन करती है वैसे ही वह तुझे बचावे। वे देवता हमारे पूज्यनीय है जो कि स्वर्गादि ससार के देवताओ को हम हवि दे चुके है ॥ २६ ॥

पश्चिम दिशा से देवमाता अदिति डर से मेरी रक्षा करे। दानी की जिस प्रकार दो गई पृथ्वी भिखारी के लिए स्वर्ग का पालन करती है वैसे ही वह तेरा हालन करे। वे देवगण हमारे पूज्य हैं जो स्वर्ग के देने वाले देवताओ को हवि दी जा चुकी है ॥ २७ ॥

सोम मय देवताओ के उत्तर दिशा से मेरी रक्षा करे। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे भिखारी के लिए स्वर्ग का पोषण करती है ठीक वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। उन देवगणो को हम हवि दे चुके है जो स्वर्गादि लोको के देने वाले हैं वे देवगण हमारे पूज्यनीय हैं ॥ २८ ॥

हे प्रेत ! धरुण देव तुम ससार के धारण करने वाले हो अतः तुम ऊर्ध्व दिशा की ओर जाने वाली पुरुष को धारण करो। दानी की दी गई भूमि जिस प्रकार भिखारी के लिये स्वर्ग का पोषण करती है वैसे ही वह तेरी रक्षा करे। वे देवगण हमारे पूज्य हैं जिनको कि हम हवि दे चुके हैं जो स्वर्गादि ससार के दाता हैं ॥ २९ ॥

हे प्रेत ! दाह की जगह से पूर्व दिशा मे स्थित कम्बल से ढका हुआ मैं तुमको पितरो को शान्त कर स्वधा मे विद्यमान

करता हूँ। प्रतिज्ञा करके दी गई पृथ्वी भिखारी के लिये स्वर्ग की रक्षा करती है वैसे ही वह तुझे बचाने वे देवगण हमारे पूज्य हैं ॥ ३० ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवाना इह स्थ ॥ ३१ ॥

प्रतीच्या त्वा विशि पुरा सवृत स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा
इह स्थ ॥ ३२ ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा सवृत. स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवानाहुतभागा
इह स्थ ॥ ३३ ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृत स्वधायामा दधामि दाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानांहुतभागा
इह स्थ ॥ ३४ ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा सवृतः स्वधायामा दधामि बाहुच्युता-
पृथिवी द्यामिवोपरि ।
लोककृत पृथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा
इह स्थ ॥ ३५ ॥

धर्तासि धरुणोऽसि वंसगोऽसि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

इतश्च मामुतश्चावता यमेइव यतमाने यदैतम् ।

प्र वां भरन् मानुषा देवयन्त आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने ॥ ३८ ॥

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभि । वि श्लोक एति पथ्येव सूरि शृणवन्तु विश्वे अमृतास एतत् ॥ ३९ ॥

त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहच्चतुष्पदीमन्वैद् व्रतेन । अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावभि सं पुनाति ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म स्थान से दक्षिण दिशा मे स्थित कम्बल को ओढे हुए मैं तुझे पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा मे वर्तमान रखता है। दानी की दी गई पृथ्वी भिखारी को ... से रक्षा करती है उसी प्रकार वह तेरे को बचावे स्व... को दिलाने वाले देवो की हम पूजा करते है और उन्हीं ... हवि दे चुके है ॥ ३१ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म स्थान से पश्चिम दिशा ... कम्बल को ओढे हुए मैं तुझे पूर्वजो को सतुष्ट करने वाले ... मे रखता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे दानी भिखा... लिये स्वर्ग की रक्षा करता है वैसे ही यह भूमि तेरी रक्ष... जिन स्वर्गादि लोको को प्राप्त कराने वालो को हम हविभाग... कर चुके हैं वे देवता हमारे पूज्य हैं । ३२ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म के स्थान से उत्तर दिशा की ओर स्थित कम्बल को ओढे हुए मैं पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा मे स्थान देता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जैसे दानी भिखारी के लिए स्वर्ग के लिए रक्षा करते है। उसी प्रकार यह पृथ्वी तेरी

रक्षा करे। स्वर्ग लोको को प्राप्त कराने वाले देव गणो को हम हविभाग दे चुके हैं वे देवता हमारे पूज्यनीय है ॥ ३३ ॥

हे प्रेत ! दाह कर्म के स्थान से ध्रुव दिशा मे स्थित मे कम्बल को ओढे हुए तेरे पूर्वजो को सतुष्ट करने वाली स्वधा मे रखता हूँ। दानी की दी गई पृथ्वी जिम प्रकार से दानी भिखारी के लिये स्वर्ग का रक्षा करती है। वैसे ही वह तेरी रक्षा करने मे समर्थ हो। स्वर्गादि लोको को कराने वाले जिन देवताओ को हम हविभाग दे चुके है वे देवगण हमारे पूज्य हैं ॥ ३४ ॥

हे प्रत ! दाह कर्म के स्थान से उध्वं दिशा मे स्थित पृथ॰म्बल से आच्छादित हुए तुझे पूर्वजो को सतुष्ट कराने वाली लोककृ॰ा मे उपस्थित करता हूँ। जिस प्रकार से दानी की दी गई इह स्थ ! भिखारी के लिये स्वर्ग की रक्षा करती है वैसे ही वह ध्रुवायां रक्षा करे। जिन स्वर्ग अदि लोको को प्राप्त कराने वाले पृथिवी द्या॰गणो को हम हविर्भाग दे चुके है वे देवगण हमारे पूज्य लोककृतः ३५ ॥

इह स्थ । हे अग्ने ! धरुण तुम धारण करने वाले हो। वरणीय ऊध्वयां एव सुवर्ण के पूरक और प्राणात्मक पवन के भी पूरक पृथिवी ॥ ३६-३७ ॥

लोकक हविर्धान जिनमे होता है, द्यावा भूमि, भूलोक और स्वर्ग इह में होने वाले डरो से तेरी रक्षा करें। हे द्यावा पृथ्वी यमल सतानों के समान तुम बराबर परिश्रम वाले होकर तुम ससार के पिता हो। देवगणो की इच्छा वाले व्यक्ति तुमको जब हवि दें तो तब तुम अपने स्थान को पहचानती हुई उस अधितिष्ठत होओ ॥ ३८ ॥

हे हविर्धाने ! धर्मपथ गामी विद्वान जैसे मन चाही प्राप्त करता है उसी प्रकार से मैं तुमको पुराने स्तोत्रों से प्रणाम करता हूँ। वे स्तोत्र तुम्हे मिले। हमारे सोम के लिए तुम स्थिर होओ। हमारे इस स्तोत्र को अविनाशी देवता सुने ॥ ३६ ।

इस सस्कार द्वारा मोह का प्रेमी गौ को ध्यानाकर्षण रखता हुआ इन तीनो द्युलोको को प्राप्त करता है। स्वर्गादि का पुण्य फल यह परिछेदक देह के छोडने पर प्राप्त कर रहा है॥ ४० ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृत नावृणीत ।
बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषि प्रिया यमस्तन्वमा रिरेच ॥ ४१ ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादा, पितृभ्यः स्व धया ते अक्षन्नद्धि त्व देव प्रयता हवींषि ॥ ४२ ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ४३ ॥

अग्निष्वात्ता पितर एह गच्छत सद सदः सदत सुप्रणीतय ।
अत्तो हवींषि प्रयतानि बर्हिषि रयि च न. सर्ववीर दधात ॥ ४४ ॥

उपहूता न पितः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ४५ ॥

ये नः पितु पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथ वसिष्ठाः ।

तेभिर्यमः सरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ४६ ॥

ये मातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविद स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सहस्र देववन्दैः सत्यैः
कविभिर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४७ ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् परैः पूर्वैः
ऋषिभिर्घर्मसद्भिः ॥ ४८ ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
उर्णम्रदा पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे
पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उच्छ्वस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ में इन्द्र आदि देवगणो के लिये किस तरह की मृत्यु का वरण किया। वृहस्पति के प्रिय मानव का देहावसान कर दिया देहावसान करने वाले सूर्य-पुत्र यम थे। ४१ ॥

हे अग्ने! तुम पैदा होने वाले जीवो के जानकार हो। तुम हमारी प्रार्थना करो एव उनको हवि एकत्रित करो। स्वधा सहित तुम पूर्वज। देवगणो कव्य दिया है। हमारी हवियो का तुम सेवन करो क्योकि जिसका कि पितरो ने भक्षण किया था ॥ ४२ ॥

हे पितरो! तुम लाल रग वाली माताओ की गोदी मे बैठे हो। हविदाता यजमान को तुम मरण धर्म वालो को धन दो। हमे नरक और पुन्नामक वाले पुत्रो के लिये धन एव शक्तिवान तथा अन्न दो ॥ ४३ ॥

हे पितरो ! यज्ञ के स्थान पर बैठो एव हवि सेवन करो। हवियो से तृप्त होकर तुम हमारे लिये वीर पुत्रोयुक्त धन दे ॥ ४४ ॥

सोम के नायक पूर्वजो को हम अपने पास बुलाते हैं। हवियो पर आकर प्रार्थना सुनो और हमें स्वीकार करें। आन्तरिक एव वाहरिक फल देवें ॥ ४५ ॥

हमारे विद्वान पितामह, पूर्वजों के साथ रहते हुए सोम का सेवन करने वाले यम की कामना करे। अपनी भावनानुकूल हमारी हवियो का भक्षण करे ॥ ४६ ॥

प्यास को महसूस करते हुए हमारे पूर्वज जिन देवगणो की प्रार्थना कर रहे है, सत्य फल देने वाले, पितरो के साथ सोमयाग मे बैठने वाले हे अग्ने ! हमारे पास इस असीमित धन को लाओ ॥ ४७ ॥

सत्य बोलने वाला, हवन करने वाला, देवगणो के अनुचर, मेधावी, मे स्थिर रहने वाले पिता और पूर्वजो मे उत्पन्न हे अग्ने ! हे आओ ॥ ४८ ॥

हे प्रेत ! पृथ्वी पर तू माँ के समान सुख देने यज्ञ दक्षिणादि जैसे पुण्य कार्यों में तू उन के समान रहे एव, पहले के मार्ग आरम्भ यह तुझे बचावे ॥ ४६ ॥

हे भूमि ! तुम्हे कर्कस न रहना चाहिये। और व्यक्ति के कार्य मे रुकावट मत गेरो। आपके पास आनन्द से रहे, जिस प्रकार एक माँ अपनी सन्तान को वस्त्र से आच्छादित करती उसी प्रकार तुम भी इसे ढक लो ॥ ५० ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।

ते गृहासो घृतश्चुत स्योना विश्वाहास्मै शरणा
सन्त्वत्र ॥ ' १ ॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोग निदधन्मो अहं रिषम् ।
एता स्थूणा पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना ते
कृणोतु ॥ ५२ ॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
अय यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता
मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥

अथर्वा पूर्णं चमस यमिन्द्रायाविभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्ष तस्मिन्निन्दु पवते
विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

तत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपील सर्प उत वा श्वापदः ।
[विश्वादगद कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ
किस ॥ ॥ ५५ ॥
मानवीरोपधय' पयस्वन्मामक पयः ।
पुत्र .यासो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥ ५६ ॥
रीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा स स्पृशन्ताम् ।
तुम ो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो
स्वधग्ये ॥ ५७ ॥

हृदिच्छस्व पितृभिः स यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
.हित्वावद्य पुनरस्तमेहि स गच्छतां तन्वा सुवर्चा ॥ ५८ ॥

ये न. पितु पितरो ये पितामहा य अविविशुरुर्वन्तरिक्षम् ।
तेभ्य स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्व.
कल्पयाति ॥ ५९ ॥

शते नीहारो भवतु शते प्रुष्वाव शीयताम् ।

शीतिके शीतकावति ह्लादिकेह्लादिकावति ।
मण्डूक्यप्सु शं भुव इमं स्वग्निं शमय ॥ ६० ॥

सुख पूर्वक यह पृथ्वी स्थिर रहे, मुर्दघाट मे औषधियाँ तेरे निकट उगे । वे औषधियाँ इस शव के लिये घी को बहाती हुई उसके लिये घर तुल्य हो तथा इसकी मुर्दघाट पर रक्षा करें ॥ ५१ ॥

हे मृतक ! इस पृथ्वी को तेरे कारण से मैं धारण करता हूँ । चहुँ ओर की पृथ्वी को तेरे समक्ष उपस्थित करता हूँ और इस कर्म से मैं अहिंसित ही रहूँ । पितृदेव इस उठाई गई पृथ्वी पर गृह बनाने के निमित्त स्थूणा धारण करें और यम तेरा घर बनावे ॥ ५२ ॥

हे अग्ने ! इस इडा बर्तन को तिरछा न कर । देवगणो को यह चमस पूर्वजो का अत्याधिक प्रिय है क्यो कि यह सोमादि को भक्षण कराने वाला है । सारे देवगण इस चमस से ही तृप्ति को प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

हवि से पूर्ण चमस को इन्द्र की वजह से धारण किया था जो कि अथर्वा हैं । शेष हवि का जो अनेक प्रकार से सजाई गई है उसी चमस से ऋत्विज भक्षण करते हैं और उसी चमस में सदैव अमृत प्रवाहित होता है ॥ ५४ ॥

हे पुरुष ! किसी काले जहरीले पक्षी जैसे कौआ आदि ने अपनी विषैली दाढ से तेरे शरीर के हिस्से को काट लिया है, सर्वभक्षी अग्नि उसे रोगहीन करे । यह रस ब्राह्मण, ऋत्विज, यजमान आदि मे व्याप्त है । उसी अङ्ग को सोम निरोग करें ॥ ५५ ॥

तत्व वाली औषधियाँ हो, ताकत वाला हो । पानी के

तत्व का भी निचोड है । वरण मुझे उन सब से पवित्र करें । ५६ ॥

इस प्रेत के बांधवो की औरतें राण न हो जाय। स्वामियो मे युक्त रहती हुई घी का काजल लगावें। सुन्दर जेवरातो को पहनने वाली वे स्त्रिया निरोग, अश्रुहीन तथा सतानवती हो ॥ ५७ ॥

हे मृतक ! पूर्वजो मे पिण्डी आदि सस्कार के कार्यो से फल रहे। और यमलक में भी तू अच्छे कार्यो से स्वर्ग की प्राप्ति कर ॥ ५८ ॥

हमारे पितामह, प्रपितामह और हमारे इस गोत्र मे उत्पन्न होने वाले और पुरुष जिन्होने अन्तरिक्ष मे प्रवेश किया तो उस समय असुनीति देवता उनके शरीरो के रचियता हुए ॥ ५९ ॥

हे प्रेत ! तू अत्यन्त सुखशाली हो, सुख करता हुआ घन वृष्टि करे। हे औषिधिमती पृथ्वी ! माण्डूकपणी द्वारा तू इस दग्ध व्यक्ति को सुख प्रदान कर और जलाने वाली अग्नि को शान्त करे ॥ ६० ॥

विवस्वान नो अभय कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानु सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमवश्ववन्मय्स्तु पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विवरवान नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान रक्षातु पुरषाना जरिम्णो मोष्वेषामसवो यम गुः ॥ ६२ ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मह्ना पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम् ।
तमर्चत विश्वमित्रा हर्विभिः स नो यमः प्रतरं जीव से धात् ॥ ६३ ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।
सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविरगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६४ ॥
प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ६५ ॥
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥ ६६ ॥
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ ६७ ॥
अपूपापिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥ ६८ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ ६९ ॥
पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥
आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।
शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥ ७१ ॥
ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरश्च ये ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥
एतदा रोह वय उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।
अभि प्रेहि मध्यतो माप हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो यो अत्र ॥ ७३ ॥

सूर्य, जीवदानु, सुदानु एवं सुनामा देवता हमें डर से

मुक्त करें। हमारे वीर्य से पैदा होने वाले अनेक वीर गवादि पशु इस लोक मे हो ॥ ६१ ॥

हमको सूर्य अमरत्व दें, मृत्यु हार जाय, इन नाति नातिनियो की अमृतत्व बुढापे तक रक्षा करे और उनमें से कोई भी मरे नहीं ॥ ६२ ॥

श्रेष्ठ बुद्धि वाले ! ओजस्वी मन वाले पूर्वजो को अन्तरिक्ष मे धारण किया जाता है। हे ब्राह्मणो ! सारे जीव-लोक के तुम सखा हो। हव्यादि से ऐसे यमको पूजो। हमारे जीवन को वह यम पुष्टवान करें ॥ ६३ ॥

हे ऋषियो ! तुम मन्त्रो के देखने वाले हो अपने सुकर्मों द्वारा स्वर्ग पर आरुढ़ हो। तुम सोमयागी और सोमपायी हो, स्वर्ग पर आरुढ़ हैं जो बस उन्ही के लिये हवि दी जाती है आपकी कृपा से हम भी शत आयु हो ॥ ६४ ॥

ये अपनी ध्वजाओ से चमकते हैं यह कामनाओ की वृष्टि करने वाले हैं। आकाश और भूमि की तरफ से लक्ष्य करते हुए यह शब्दवत् होते है। द्युलोक से ऊपर यह रमे है जलो के स्थान अन्तरिक्ष मे भी यशशलि है ॥ ६५ ॥

हे प्रेत ! तुमको सुन्दर गति से स्वर्ग की ओर चलते हुए देखते हैं। सुनहरी पख वाले वरुण दूत यम के घर मे पक्षी की तरह एव भरण करने वाले की शक्ल मे जब हम तुम्हे देखते हैं ॥ ६६ ॥

हे इन्द्र ! अपनी सतानो को जब पितर लोग मनचाही चीज प्रदान करते हैं। यज्ञादि इच्छित वस्तु वैसी ही हमे दो। हम चिरआयु प्राप्त करके इस ससार के सुखो को भोगे तथा इस ससार यात्रा में हमे अभीष्ट प्रदान करें ॥ ६७ ॥

हे प्रेत ! जिन घडो को देवगणो ने घी, शहदादि से सम्पन्न तेरे निमित्त रखा है ॥ ६८ ॥

हे प्रेत ! मैं तुम्हे तिल सहित स्वधा वाली जौ की खीलो को समर्पित करता हूँ, वे तुझ ऐश्वर्य एव शात दें और खीलो को खाने के लिये यम तुझे खाने की आज्ञा प्रदान करें ॥ ६९ ॥

हे वनस्पते ! हड्डियो के ढांचे के समान तेरे अन्दर जो पुरुष स्थापित किया गया था, मुझे उसको लौटाओ । यम के घर मे वह यज्ञ के कर्म करता हुआ उपस्थित हो ॥ ७० ॥

हे अग्ने ! तुम्हारी दहनशील अग्निया रसहरण शक्ति से सम्पन्न हो, जलाने को तुम तैयार रहो । इस शव को भली भाति जला करके यह जो पुण्यात्मा का पुण्य लोक है वहा पर स्वर्ग मे स्थान ग्रहण करें ॥ ७१ ॥

जो तेरे पूर्वज है वे वहाँ सिधार चुके हैं या तेरे से बाद मे पैदा होने वाले व्यक्ति वहाँ पर गये या वे गये हैं जो कि तुझसे पहले उत्पन्न हुए थे । उनके लिये घी को नदियाँ बहाओ । वह हजारो धारो से तुझे सीचे ॥ ७२ ॥

हे मृतक ! अपने ही द्वारा पवित्र होता हुआ और इस देह को त्याग कर तू व्योम मे चढ । जाति के लोग समृद्ध होकर इसी लोक मे वास करे । भाईयो के दर्मयान से दूसरे ससार की ओर बढता हुआ ऊँचे को चढ । आकाश मे स्थित पूवजो के मुख्य लोक का त्याग मत कर ॥ ७३ ॥

सूक्त ४ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि अथर्वा । देवता—यम, मन्त्रोक्ता, पितर, अग्नि, चन्द्रमा, छन्द—त्रिष्टुप्, जगती शक्करी, बृहती, अनुष्टुप गायत्री, पक्ति, उष्णिक)

आ रोहत जनित्रीं जातवेदस पितृयाणैः स व आ रोहयामि ।
अवाडढव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ता सुकृतां धत्त
लोके ॥ १ ॥

देवा यज्ञमृतव कल्पयन्ति हवि पुरोडाश स्रुचो यज्ञायुधानि ।
तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम् ॥ २ ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरस सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभि स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीये नाके
अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिता ।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥ ४ ॥

जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम् ।
प्रतीमां लोका घृतपृष्ठा स्वर्गा कामकाम यजमानाय
दुह्राम ॥ ५ ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा क्रमस्व ।
जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं स्रुवेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा
धुक्ष्वाहृणीयमानः ॥ ६ ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृत सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पन्त ॥ ७ ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो
दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्नि ।
महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्ग सर्व उप याहि
शग्म ॥ ८ ॥

पूर्वो अग्निष्ट्वा तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्य ।
दक्षिणाग्निष्टे तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्तरिक्षाद् दिशो-
दिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥ ९ ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृथिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं
मदन्ति ।। १० ।।

हे गार्हपत्यादि अग्नियो ! पैदा होने वालो के तुम जानकार हो । अपनी उत्पादक अग्नियो मे प्रवेश करो । पितृयानो द्वारा मैं भी तुझ अरणियो मे चढाता हूँ । देवताओ के निमित्त हव्यवाहक अग्नि ने हव्य वहन किया । हे अग्नियो ! जिस यजमान ने तेरे लिये यज्ञ किया था, उसे परदेश मे देहान्त हुए यजमान को पुण्यलोक मे बैठाओ ।। १ ।।

पूज्यनीय इन्द्रादि देवता ऋतु यज्ञ की इच्छा रखते है । पात्रादि आयुध भी एव घी आदि हवन की सामिग्री यज्ञ की चाहना रखते हैं । हे अहिताग्ने ! देवयान मार्ग से तुम जाओ ।। २ ।।

हे प्रेत ! रूप मार्ग को भलीभाँति जानता हुआ सत्य के कारण महर्षि अंगिरस आदि के स्वर्ग को जा । अदिति पुत्र देवता जिस मार्ग मे अमृत को खाते है उस सुख के तीसरे लोक मे रह ।। ३ ।।

स्वर्ग में जाने वाले ये अग्नि वायु और सूर्य हैं । पर्जन्य बादल और पवन शब्द कलख करते हैं । स्वर्ग से ऊपर विष्टम मे ये लोग वास करते हैं । कर्मानुसार फल देने वाले प्रेत के लिये यह मनचाही अन्न एव रसो को देने वाला है ।। ४ ।।

होम पात्र जुहू ने अन्तरिक्ष को ताकतवान बनाया, अन्तरिक्ष को उपभृत पात्र ने धारण किया और ध्रुवा पात्र ने भूमि का पोषण, ध्रुवा की पाली हुई पृथ्वी को ध्यान मे रखते हुए ऊर्ध्व स्वर्ग लोक यजमान को मनचाही फल देवें ।। ५ ।।

हे ध्रुवा नामक शुक्र ! पृथ्वी के ऊपर आरुह्य रहे तथा यजमान भी पृथ्वी पर अधितिष्ठत रहे। हे उपभ्रत पात्र ! तू स्वर्ग पर चढ। हे जुहू ! द्युलोक को तू यजमान के साथ जा और अभीष्ट फलो को सारी दिशाओ से लाओ । ६ ॥

पुण्य कर्म के द्वारा बडे बडे कष्टो से पार होते है। ऐसा सोचने वाले यज्ञ का कार्य करते हुए जिस मार्ग से व्यक्ति स्वग को जाते हैं, उस रास्ते का अन्वेषण करते हुए यज्ञ करने वाले इस यजमान को उस रास्ते को खोलें ।। ७ ॥

अहिताग्नि की चिता मे उपस्थित गार्हपत्यादि जलाए प्रविष्ट होती हैं वे इच्छानुकूल फल दे । आह्वानीय ज्वाला पूर्व दिशि मे स्थित है तथा सत्रात्मक कर्म अंगिरसो का है। अयन नामक गार्हपत्याग्नि आदित्यो का सत्रयाग है। यक्षायन नामक सत्र दक्षिणाग्नि है। अनेक प्रकार के नामो वाली विभूति को हे प्रेत ! सुख को प्राप्त करता हुआ पूर्ण अवयव वाला हो ।। ८ ।।

भस्म होते हुए हे प्रेत ! पूर्व से चमकते हुए तुझे, सुख को प्रदान करती हुई अग्नि तुझे भस्म करें, दक्षिणाग्नि तुझे सुख से भस्म करें। हे अग्ने ! क्रूर एव हिंसको की चहुँ दिशा म बचाओ ।। ९ ।।

हे अग्ने ! तुम अपने आधान कर्ता आराधक यजमान को अलग-अलग स्थानो को प्राप्त हुए अपने महान कल्याण देने वाले साधनो से स्वग लोक मे पहुँचाओ उस ससार मे हम गोत्र वालो सहित देवो के सहित रहते हुए खुश रहे ।। १० ।।

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात् तपैनम् । एकस्त्रेधा विहितो जातवेद सम्यगेन धेहि सुकृतामु लोके ॥ ११ ।

शमग्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन् ।
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्त्स्वर्गः पन्थाः सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

अग्निर्होताध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु ।
हुतोऽयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् ॥ १५ ॥

अपूपवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १६ ॥

अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १७ ॥

अपूपवान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १८ ॥

अपूपवान् घृतवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ १९ ॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ २० ॥

हे अग्नि ! चहुँ दिशाओ मे इसे आनन्द पूर्वक भस्म करो। यजमान ने तुम्हे एक के तीन हिस्सो मे विभाजित करो। यज्ञ कर्म वाले ऐसे पुण्यात्मा को स्वर्गलोक मे बठाओ ॥ ११ ॥

इस प्रेत को अग्नियाँ प्रदीप्त होकर इसको भली प्रकार से भस्म करें। वे उसे इधर-उधर न फेंके ॥ १२ ॥

यह पितृमेघ यज्ञ इसे सानन्द स्वर्ग प्राप्त करा रहा है। मेध्य का अग्नियाँ भक्षण करें और इसे पकाते समय अधकच्चा ही इधर-उधर न फेंके ॥ ३ ॥

यह यज्ञ करने याला व्यक्ति तीसरे स्वर्ग पर चढने के लिये विषय सख्या की ईंटो से चिने हुए अग्नि प्रदेश पर चढ रहा है। इस पुण्यात्मा प्रेत के लिये स्वर्ग पर चढते समय प्रकाशमान हो ॥ १४ ॥

हे प्रेत ! इस पितृमेघ यज्ञ में अग्नि को होता बनें, अध्वर्यु वृहस्पति हो, इन्द्र ब्रह्मा हो। इस प्रकार से पहले समय के अनुतिष्ठत यह वहुत यज्ञो का स्थान ग्रहण करता है ॥ १५ ॥

गेंहूँ का चून और गाय के दूध से मिश्रित पक्व ओदन के समान चरु इस कार्य मे हड्डियो के समीप पश्चिम दिशा मे रखा रहे। इन्द्रादि देवगणो मे से संस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के रचियता हवि के अधिकारियो को खुश करते हैं ॥ १६ ॥

दही एव गेहूँ के चून को मिश्रत करके ओदन के समान चरु इस कार्य मे हड्डियो के समीप पश्चिम दिशा मे रखा रहे। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के रचियता इन्द्रादि-

देवगणो मे से हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते है ॥ १७ ॥

गेहूँ का चून एव दधिकण द्रव्य वाले प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते है ॥ १८ ॥

पिसे गेहूँ एव गाय के घी से मिश्रत इस सस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग के रचियना इन्द्रादि देवगणो मे से हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते हैं ॥ १९ ॥

गेहूँ के चून और प्राशिज द्रव्य से मिश्रत ओदन रूप चरु पश्चिम दिशा मे रखा जाय । सस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते है ।। २० ॥

अपूपवानन्नवाश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत. पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा
इह स्थ ॥ २१ ॥
अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत पथिकृतो यजामहे ये देवाना हुतभागा
इह स्थ ।। २२ ।।
अपूपवान् रसवाश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा
इह स्थ ॥ २३ ॥
अपूपवानपवाश्चरुरेह सीदतु ।
लोककृत. पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा
इह स्थ ॥ २४ ।।
अपूपापिहितान् कुम्भान् यास्ते देवा अधारयन् ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुत ॥ २५ ॥
यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा स्वधावती ।
तास्ते सन्तद्भ्वी प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम् ॥ २६ ॥
अक्षिति भूयसीम् ॥ २७ ॥
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिम च योनिमनु यश्च पूर्व. ।
समान योनिमनु सचरन्त द्रप्स जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ २८ ॥
शतधार वायुमर्कं स्वर्विद नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम् ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥ २९ ॥
कोश दुहन्ति कलश चतुर्बिलमिडां धेनु मधुमती स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदिति जनेष्वग्ने मा हिंसी परमे व्योमन ॥ ३० ॥

गेहूँ के चून के अयूपो से सम्पन्न, अन्न की मिलावट, पके हुए ओदन तुल्य चरु इस कार्य मे हड्डियो की पश्चिम मे रहे। सस्कारित प्रेत के निमित्त स्वर्ग के रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से वर्तमान हवि के अधिकारी देवगणो को हम खुश करते है ॥ २१ ॥

गेहूँ के चून के अयूपो से एव शहद से सम्पन्न कुम्भी पक्व ओदन तुल्य चरु इस कार्य मे हड्डियो के पश्चिम भाग मे रहे। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से वर्तमान हवि के अधिकारियो द्वारा देवगणो को हम खुश करते है ॥ २२ ॥

छः रसों तथा पिसे गेहूँ के अयूपो से सम्पन्न कुभी पक्व ओदन रूप चरु इस कार्य मे हड्डियो के पश्चिम भाग मे रहे। सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग रचियता इन्द्रादि देवगणो मे से हवि के अधिकारियो को हम खुश करते हैं ॥ २३ ॥

किसी भी प्रकार के अयूप एव गेहूँ के चून युक्त कुम्भी पके के रूप मे चरु इस कार्य मे हड्डियो के पश्चिम भाग मे रहे। इस सस्कारित प्रेत के लिये स्वर्ग के बनाने वाले इन्द्र आदि देवगणो मे से इस हवि के अधिकारियो को हम खुश करते है ।। २४ ।।

हे प्रेत! काले तिलो को मैं तेरे लिये जौ की खीलो को फैलाता हूँ। यमराज मुझे खाने की आज्ञा दे। परलोक मे वे तुझे अच्छी तादाद मे मिलें। चरु के घडो को जिन हवि के भोग करने वालो ने इसको ग्रहण किया है वे स्वधा से तुझे युक्त करें ।। २५-२६-२७ ।।

सोम रस मे वर्तमान जल के अश द्रप्प धरती एवं आकाश को समक्ष करके विखेरता हूँ। पहले पैदा हुए द्युलोक एव द्यावापृथ्वी को उद्देश्य मे रखकर ससार की कारण रूप पृथ्वी को लक्ष्य मे रखकर, सात वषटकर्ता होताओ को भी उद्देश्य मे रखकर के सोम रस द्रप्स को अग्नि मे आहूति देता हूँ। यह सर्वज्ञ देवगणो के निमित्त करता हूँ ।। २८ ।।

हे प्रेत! मनुष्यो को देवगण अपनी दृष्टि मे रखते हुए एव चुवाते हुए पानी मे सम्पन्न हवा के प्रवाह से चलते हुए स्वर्ग प्रापक इस घडे को तुझे धन रूप जानते हैं। तेरे गोत्री बन्धु तुझे कुम्भोदक से ही शान्त करते हैं और कुम्भोदक देने वाले सप्त मातृक तुल्य जल धारा के समान दक्षिणा को सदैव अर्पण करते हैं ।। २९ ।।

धन सुवर्णादिसे सम्पन्न कोश की तरह चार छेद वाले कलश को दुहते हैं। हे अग्ने! इस प्रेत के लिये जो कि पितरो को प्राप्त हुआ है। उसे सतुष्ट करने वाली अदिति को समाप्त न करना ।। ३० ।।

एतत् ते देव सविता वासो ददाति भर्तवे ।
तत् त्व यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर ॥ ३१ ॥
धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥
एतास्ते असौ धेनव कामदुघा भवन्तु ।
एनी श्येनी सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु
त्वात्र ॥ ३३ ॥
एनीर्धाना हरिणी श्येनीरस्य कृष्णा धाना रोहिणीर्धेनवस्ते ।
तिलवत्सा ऊर्जं मस्मै दुहाना विश्वाहा
सन्त्वनप स्फुरन्तीः ॥ ३४ ।
वैश्वानरे हविरिद जुहोमि साहस्र शतधारमुत्सम् ।
स बिभर्ति पितर पितामहान् प्रपितामहान् बिभर्ति
पिन्वमान ॥ ३५ ॥
सहस्रधार शतधारमुत्समक्षित व्यच्यमान सलिलस्य पृष्ठे ।
ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितर स्वधाभि ॥ ३६ ॥
इद कसाम्बु चयनेन चित तत् सजाता अव पश्यतेत ।
मर्त्योऽयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥
इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतु ।
इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहत ॥ ३८ ॥
पुत्र पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।
स्वधा पितृभ्यो अमृत दुहाना आपो
देवीरुभयांस्तर्पयन्तु ॥ ३९ ।
आपो अग्नि प्र हिणुत पितृ रुपेम यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम् ।
आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयि सर्ववीर वि
यच्छान् ॥ ४० ॥

हे प्रेत ! तुझे आच्छादित करने को सविता तुमको कपडे देती हैं। यम के राज्य मे तुम इसे ओढकर आजादा से भ्रमण कर ॥ ३१ ॥

वत्स बनाने को भुने जौ की खील गौ एव तिक्त को आवश्यकता होगी ॥ ३२ ॥

हे प्रेत ! अनेक रूप वाली यह वत्स सम्पन्न तिलात्मक धेनुए तुम्हारे ही लिये कामधेनु है। एव तेरे समीप निवास करती हुई यम लोक मे तेरी कामनाओ को पूरी करें ॥ ३३ ॥

तेरे लिये लाल, सफेद हरी एव भूनने से काली तथा अरुण रग वाली खीलें तेरे को गौ रूप हैं। यह सदैव इस प्रेत को शक्ति वर्द्धक अन्न प्रदान करती है ॥ ३४ ।

इन हवियो को मैं वैश्वानर अग्नि मैं गेरता हूँ। यह जल के प्रवाह युक्त हैं अपने उपजीवी पितरो को सीचती हुई शांत करती हैं। इस हवि से प्रदीप्त हुए वैश्वानर अग्नि सारे हमारे हमारे पूर्वजो को शान्ति प्रदान करें ॥ ३५ ॥

भूत स्थित अन्न साधन जल को टपकाते हुए, छेद के घडे को चाहते हैं ॥ ३६ ॥

हे गोत्री बन्धुओ ! इस एकत्रित की गई हवि की देखभाल रखो। यह प्रेत अमृत्व को प्राप्त कर रहा है इसलिये अब तुम सब घर की रचना करो ॥ ३७ ॥

हे उल्मुक ! इस रेतीले देश मे रहता हुआ हमे धन प्रदान कर। तू वही से हमारे कर्मो का सम्पादन कर एव शक्तिशाली, अन्न को बलवर्धक करने वाला और शत्रुओ से असतप्त रहता हुआ बुद्धिमान बन ॥ ३८ ॥

आचमन करने योग्य यह मधुर जल पुत्र पौत्रादि को

सतुष्ट करे। पिण्ड से उपजीवन करने वाले पूर्वजो को स्वधा देता है। यह जल आचमन करने पर मातृकुल एव पितृकुल को सतुष्ट करे ॥ ३९ ॥

हे जलो! अवसेचन के साधन रूप हो। तुम दक्षिणाग्नि को यज्ञ मे प्रदत्त पिडो का वहन करने के लिए पूर्वजो के समीप रखो। मेरे पूर्वज इसका रसास्वादन करे। जल मे रखे पिण्ड रूप अन्न का भक्षण करने के लिये जो पूर्वज हमारे पास आवे वे हमे मगल, पुत्र, पौत्रादि सहित धन प्रदान करें ॥ ४० ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाह घृतप्रियम् ।
स वेद निहिमान् निधीन् पितृन् परावतो गतान् ॥ ४१ ॥

य ते मन्थ यमोदन यन्मास निपृणामि ते ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्ता घृतश्चुत ॥ ४२ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्रा स्वधावती ।
तास्ते सन्तूद्भ्वो प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु
मन्यताम् ॥ ४३ ॥

इद पुर्वमपर नियान येना ते पुर्वे पितरः परेता ।
परोगवा ये अभिशाचा अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृताम्
लोकम् ॥ ४४ ॥

सरस्वती देवयन्तो हवन्ते सरस्वती मध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥ ४५ ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसाद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इस आ
धेह्यस्मे ॥ ४६ ॥

सरस्वति या सरथ ययाथोक्थै स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
सहस्रार्घमिडो अत्र भाग रायस्पोष यजमानाय धेहि ॥ ४७ ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र तिरात्यायुः ।
परापरेता वसुविद्वो अस्त्वधा मृताः पितृषु स
भवन्तु ।। ४८ ।।

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।
अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृस्विहभोजनौ
मम ।। ४६ ।।

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघा वयोधा ।
यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्य
उपसंपरायणयादिमान् ।। ५० ।।

कर्मवान व्यक्ति अविनाशी व्यक्ति प्रकट करते हैं । भूमि गत कोश को देखना जब तक असभव है जब तक कि दिखाने वाला न हो उसी प्रकार से पूर्वज खुद ही नहीं निकलते । यह अग्नि दूर देश में निवास करने वालो की ज्ञाता है । इसलिये इनको प्रीत किया जाता है ।। ४१ ।।

हे प्रेत ! जो मन्थ तुझे दे रहा हूँ, वे मन्थ तुमको स्वधा एव घी से युक्त प्राप्त हो ।। ४२ ।।

हे प्रेत ! काले तिलो की स्वधामयी खीलें परलोक की प्राप्ति पर तुझको विस्तृत रूप मे प्राप्त हो, इसको सेवन करने के लिए यमराज तुझे आज्ञा प्रदान करें ।। ४३ ।।

इस लोक से जिनके माध्यम से जीव जाते है वे गाडी पुरानी एव नयी दोनो प्रकार से बनी हुई है वे शव को खींचने वाली हैं । पूर्वज तेरे इसी के द्वारा गये थे । दोनो बैल इसको दोनो तरफ जोडे गये वे तुझे पुण्यात्मा की प्राप्ति करावें ।।४४।।

मृतक के सस्कार कराने वाली अग्नि की इच्छा रखती हुई वे पुरुष विद्या का आह्वान करते हैं । वह सरस्वती हविदाता यजमान को वरणीय करने के लिये पदार्थ भेंट करें ।।४५।।

वेदी के दक्षिण दिशि मे स्थित पूर्वज भी सरस्वती का आह्वान करते है। हे पितरो ! यज्ञ मे प्रसन्न रहो। सरस्वती को सतुष्ट करते हुए खुद भी सतुष्टी को प्राप्त करो। हे सरस्वती ! पूर्वजो द्वारा आहूत होकर इच्छित अन्न मे स्थापित करो ॥ ४६ ॥

हे सरस्वते ! तुम उक्थ, शस्त्र, स्वधा रूप अन्न से सतुष्ट होती हुई पूर्वजो सहित एक ही रथ मे आगमन करती हो। तुम यजमान को, अनेक पुरुषो को तृप्त करने वाले अन्न को प्रदान करो ॥ ४७ ॥

हे पृथ्वी ! मैं तुझे विकार कुम्भी से प्रविष्ट करता हूँ। धाता देवता हम सब यज्ञ के अनुष्ठाताओ को आयुष्मान करें। हे दूर लोक निवासी पितरो ! तुमको अन्न यह लिपि हुई चरु कुम्भी प्राप्त करावें। चरु के स्वाहाकार के बाद यह मृतक अपने पुरुषो से मिल जावे ॥ ४८ ॥

हे प्रेत वाहक बैलो ! हमारे समक्ष ही तुम लोग इस गाडी से अलग अलग हो जाओ। प्रेत को सवारी देने की निन्दा वाक्य से छूटो। तुम गाडी के साथ आओ, आपका आना कुशल हो पितृमेध मे तुम पितरों के लिए हविदाता बने ॥ ४९ ॥

सस्कार कर्त्ता हमारे पास यह धेनु की दक्षिणा आ रही हैं। यह सुन्दर फल और दूध रूप अन्न को देती हुई बुढापे मे भी यह नव-जवान बनी रहे। सस्कारित पुरुष को यह दक्षिणा पूर्वजो के समीप पहुँचावें ॥ ५० ॥

इद पितृभ्य प्र भरामि बर्हिजीवं देवेभ्य उत्तर स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ॥ ५१ ॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभू प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम् ।
यथापरु तन्व स भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि ॥ ५२ ॥

पर्णो राजापिधानं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन् ।
आयुर्जीवेभ्यो वि दधद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ ५३ ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं जगाम ।
तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे धात् ॥ ५४ ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।
एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूरयोऽसत ॥ ५५ ॥

इदं हिरण्यं बिभृहि यत् ते पिताबिभः पुरा ।
स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृड्ढि दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्ना प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन्मनीषया ॥ ५८ ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

प्र वा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः ।
मर्यइव योषाः समर्षसे सोमः कलशे शतयामना पथा ॥ ६० ॥

संस्कारों को करने वाला व्यक्ति मैं पूर्वजो एवं देवगणों की जीवन इच्छा को रखता हुआ कुशाओं को बिछाता हूँ । हे

पुरुष ! तू पितृमेव के योग्य होता हुआ इस पर चढ जिससे पूर्वज लोग भी तुझे प्रेत समझें ।। ५१ ।।

हे प्रेत ! इस चिता पर जो कुशाएँ बिछी हुई है और इन पर तू चढ कर पितृ मेत्र के योग्य हो गया है अत पूर्वज तुम्हे प्रेत समझे। तेरी हड्डियाँ, जिन्दा पर जैसी थी उसी प्रकार की अब भी है। कुल मे सबसे बडा मे, तेरी हड्डि रुप मन्त्र बल से इन सब को इकट्ठा करता हूँ ।। ५२ ।।

पालश पत्र हमको अन्न, रस, बल, शक्ति एव तेज दे, वह हमे सौ वर्ष की आयु प्रदान करें । ५३ ।।

चरु रुप अन्न के योग्य जिस यमराज ने इनको प्रेत बनाया है और जो यम इन चरुओ को ढकने वाले पत्तरो के स्वामी हैं, उन यम देव को हे भाइयो ! हवि से तृप्त करो। वे लम्बे समय तक जीवत रहे ।। ५४ ।।

जैसे पचो ने यम के स्थान को किया उसी प्रकार मे इस प्रेत के निवास स्थान के लिये पितृ स्थान को ऊँचा रखता हूँ । हे बांधवो ! ऐसा करने से तुम वृद्धि को प्राप्त होगे ।। ५५ ।।

हे प्रेत ! इस सोने की अगूठी को घी से पहन। तेरा बाप ने जिस दहने हाथ मे सोना धारन कर लिया था उस स्वर्ग प्रापक हाथ को तू धो ।। ५६ ।।

जीवित, मृत, पैदा होने वाले सबके निमित्त शहद के प्रवाह के सिचेन करती हुई घी की नदी बने ।। ५७ ।।

भजन करने वालो को इच्छित देने वाला सो छन छन कर चलता है। वही सोम दिन-रात को निष्पन्न करता है। उषाकाल एव आकाश को भी वही बढाता है। वस्तीवर जलो

का वह प्राण है। इस प्रकार का सोम घडो की ओर जाता हुआ अत्यन्त शोर गुल करता है। वह तीनो शपनो मे पूज्य इन्द्र के पेट मे प्रवेश कर रहा है ॥ ५८ ॥

हे प्रेताग्ने! तुम्हारा धुआँ अन्तरिक्ष को मेघ रूप मे ढके। तुम स्तुति के कारण प्रदीप्त होकर सूर्य की तरह चमकते हो ॥ ५९ ॥

छन्ने से छनता हुआ यह सोम इन्द्र के पेट मे प्रविष्ट होता है। यष्टा के लिये मित्र के समान है और इसकी कामनाओ को व्यर्थ नहीं करता। आदमी को स्त्री से मिलने के समान यह सोम द्रोण कलश मे हजारो धाराओ से मिलता है ॥ ६० ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियां अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

आ यात पितर सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणै ।
आयुरस्मभ्य दधत प्रजां च रायश्च पोषैरभि न सचध्वम् ॥ ६२ ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरै पथिभि॰ पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तु सुप्रजसः सुवीरा ॥ ६३ ॥

यद् वो अग्निरजहादेकमङ्गं पितृलोकं गमयञ्जातवेदा ।
तद् व एतत् पुनरा प्याययामि साङ्गा स्वर्गे पितरो मादयध्वम् ॥ ६४ ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदा सायं न्यह्न उपवन्द्यो नृभि ।
प्रादा॰ पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्व देव प्रयता हवींषि ॥ ६५ ॥

असौ हा इह ते मन· ककुत्सलमिव जामय । अभ्येन भूम ऊर्णु हि ॥ ६६ ॥

शुम्भन्तां लोका पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि ॥ ६७ ॥

ये स्माक पितरस्तेषां बर्हिरसि ॥ ६८ ॥

उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधम विमध्यम श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो आदितये स्याम ॥ ६९ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यै समामे बध्यते यैर्व्यामे ।
अथा जीवेम शरद शतानि त्वया राजन् गुपिता रक्षमाणा ॥ ७० ॥

पूर्वज पिण्ड का सेवन करके सतुष्ट हो गये, फिर वे अपनी देह को कम्पायमान कर रहे हैं। वे हमारे यश का वखान करते हैं उन सतुष्ट पूर्वजो से हम अपने उत्तम फल की याचना करते हैं ॥ ६१ ॥

हे सोम के पात्र पितरो! तुम पितृयान से आओ। पिण्ड के लिये कुश को बिछाकर तिल के देने वाले हमे आयुष्मान करें एव धन और सतान से हरा-भरा परिवार रखें। ६२ ॥

पितरो! तुम पितृयानो से अपने देश को जाओ और अमावस्या दिन हवि का सेवन करने को हमारे घर पर पधारना। पुत्र, पौत्र क देने वाले हो ॥ ६३ ॥

हे प्रेत! इस उघने हुए आपके अ ग को अग्नि ने भस्म नही किया है। प्रवद्ध करने को मे तुम्हे उसमे पुन डालता हूँ प्रसन्नता से आप स्वर्ग पधारें ॥ ६४ ॥

सुबह और शाम को प्रार्थना के समय अग्नि को दूत के

रुप मे हमने भेजी है। हमारी हवि उन्हे प्रदान करो। वे हमारी हवियो का सेवन करें। हे अग्ने ! दी हुई अपनी हवि का तुम भी भक्षण करो ॥ ६५ ॥

हे प्रेत ! तेरा ध्यान इस श्मसान मे है। हे श्मसान भूमे ! इस प्रेत को उसी प्रकार से आच्छादित करो जिस प्रकार कि स्त्री अपने स्कन्ध को कपडे से ढकती हैं ॥ ६६ ॥

हे प्रेत ! तेरे लिये बैठने को पूर्वजो के लोक उपस्थित हो। उसी लोक मे तुझे भेजता हूँ ॥ ६७ ॥

हे वर्हि बैठने के लिये तू हमारे पूर्वजो का स्थान बन ॥ ६८ ॥

हे वरुण ! हमसे अपने उत्तम, मध्यम एव निकृष्ट पाश को दूर रख। पाशो के छुटने पर हम तेरी सेवा करते हुए आहिंसित रहे ॥ ६९ ॥

हे वरुण ! मनुष्य जिन पाशो मे फंस जाता है, उन्हे हमसे अलग रखो। तुमसे बचे हुए आगे भी रक्षा करते हुये हम सौ वर्ष तक जीवें ॥ ७० ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नम ॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्य स्वधा नम ॥ ७३ ॥

यमाय पितृमते स्वधा नम ॥ ७४ ॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु । ७५ ॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥

एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥

स्वधा पितृभ्य पृथिविषद्भ्य ॥ ७८ ।

'वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्य ॥ ७९ ॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य ॥ ८० ॥

स्वधा युक्त हवि कव्यवाहन अग्नि को प्राप्त हो। मैं उसे प्रणाम करता हूँ॥ ७१ ॥

यह हवि पितृयान सोम एव स्वधा को प्राप्त हो॥ ~ ॥

स्वधा एव नमस्कार से युक्त सोम वाले पूर्वजो को यह हवि प्राप्त हो ॥ ७३ ॥

स्वधा एव प्रणाम सम्पन्न पितरो के स्वामी यम को इस हवि की प्राप्ति हो ॥ ७४ ॥

हे प्रपितामह। पिण्ड रूप यह हवि तुम्हारे लिये स्वधाकार युक्त हो। पत्नि, पुत्रादि जो पूर्वज तुम्हारे अनुकूल रहते हैं। वे सब स्वधाकार की प्राप्ति करें। हे पिता। स्वधाकार हवि को आप प्राप्त करें॥ ७५-७६ ७७ ॥

पृथ्वी पर निवास करने वाले पितरो को, अन्तरिक्ष मे रहने वाले पूर्वजो को स्वधाकार हवि की प्राप्ति हो ॥ ७८-७९-८० ॥

नमो व पितर ऊर्जे नमो व पितरो रसाय॥ ८१ ॥

नमो' वः पितरो भामाय नमो व पितरो मन्यवे॥ ८२ ॥

नमो वः पितरो यद् घोर तस्मै नमो व पितरो यत् क्रूर तस्मै॥ ८३ ॥

नमो व पितरो यच्छिवं तस्मै नमो व पितरो यत् स्योन तस्मै ॥ ८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः॥ ८५ ॥

रुप मे हमने भेजी है। हमारी हवि उन्हे प्रदान करो। वे हमारी हवियो का सेवन करें। हे अग्ने! दी हुई अपनी हवि का तुम भी भक्षण करो ॥ ६५ ॥

हे प्रेत! तेरा ध्यान इस श्मसान मे है। हे श्मसान भूमे! इस प्रेत को उसी प्रकार से आच्छादित करो जिस प्रकार कि स्त्री अपने स्वन्ध को कपडे से ढकती हैं॥ ६६ ॥

हे प्रेत! तेरे लिये बैठने को पूर्वजो के लोक उपस्थित हो। उसी लोक मे तुझे भेजता हूँ ॥ ६७ ॥

हे वर्हि बैठने के लिये तू हमारे पूर्वजो का स्थान बन ॥ ६८ ॥

हे वरुण! हमसे अपने उत्ताम, मध्यम एव निकृष्ट पाश को दूर रख। पाशो के छुटने पर हम तेरी सेवा करते हुए आहिंसित रहे ॥ ६९ ॥

हे वरुण! मनुष्य जिन पाशो मे फंस जाता है, उन्हे हमसे अलग रखो। तुमसे बचे हुए आगे भी रक्षा करते हुये हम सौ वर्ष तक जीवें ॥ ७० ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वध नम ॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नम ॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्य स्वधा नम ॥ ७३ ॥

यमाय पितृमते स्वधा नम ॥ ७४ ॥

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये त्र त्वामनु। ७५ ॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥

एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥

स्वधा पितृभ्य पृथिविषद्भ्य ॥ ७८ ॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्य ॥ ७९ ॥
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य ॥ ८० ॥

स्वधा युक्त हवि व्यवाहन अग्नि को प्राप्त हो। मैं उसे प्रणाम करता हूँ॥ ७१ ॥

यह हवि पितृयान सोम एव स्वधा को प्राप्त हो॥ ॥

स्वधा एव नमस्कार से युक्त सोम वाले पूर्वजो को यह हवि प्राप्त हो ॥ ७३ ॥

स्वधा एव प्रणाम सम्पन्न पितरो के स्वामी यम को इस हवि की प्राप्ति हो ॥ ७४ ॥

हे प्रपितामह ! पिण्ड रूप यह हवि तुम्हारे लिये स्वधाकार युक्त हो। पत्नि, पुत्रादि जो पूर्वज तुम्हारे अनुकूल रहते हैं। वे सब स्वधाकार की प्राप्ति करें। हे पिता ! स्वधाकार हवि को आप प्राप्त करें॥ ७५-७६ ७७ ॥

पृथ्वी पर निवास करने वाले पितरो को, अन्तरिक्ष मे रहने वाले पूर्वजो को स्वधाकार हवि की प्राप्ति हो ॥ ७८-७९-८० ॥

नमो व पितर ऊर्जे नमो व पितरो रसाय॥ ८१ ॥

नमो वः पितरो भामाय नमो व पितरो मन्यवे॥ ८२ ॥

नमो वः पितरो यद् घोर तस्मै नमो व पितरो यत् क्रूर तस्मै॥ ८३ ॥

नमो व पितरो यच्छिव तस्मै नमो व पितरो यत् स्योनं तस्मै ॥ ८४॥

नमो वः पितरः स्वधा वः पितरः॥ ८५ ॥

येऽत्र पितर पितरो येऽत्र यूयं स्थ युष्मास्तेऽनु यूय तेषां श्रेष्ठा भूयास्थ ।। ८६ ।।
य इह पितरो जीवा इह वय स्म ।
अस्मांस्तेऽनु वय तेषा श्रेष्ठा भूयास्म । ८७ ।।
आ त्वाग्न इधीमहि द्युमन्त देवाजरम् ।
यद् घ सा ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवि ।
इष स्तोतृभ्य आ भर ।। ८८ ।।
चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पद विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ।। ८९ ।।

हे पितरो ! तुम्हारे अन्न रस को, तुम्हारी गुस्सा को, मानस गुस्सा को, भयकर रूप को, हिंसक रूप को, मगलकारी रूप को एव सुखकारी रूप को प्रणाम है, मेरा आपको नमस्कार है, आपके लिए यह हवि स्वाहूत हो ।। ८१-८२-८३-८४-८५ ।।

हे पितरो ! देवता के समान तुम इस पिण्ड पितृ मेघ यज्ञ मे विराजमान हो। आश्रित पितरो मे तुम सर्वोत्तम रहो वे आपके द्वारा जीवन यापन करें। आपकी प्राथना सर्व पिण्ड अ श का हिस्सा पावें। पिण्ड के देने वाले हमे आयुष्मान करो और अपने बराबर वालो में श्रेष्ठ करो ।। ८६ ८७ ।।

हे अग्ने ! समिधा के द्वारा हम तुम्हे प्रवृद्ध करते हैं। आपका यशोगान सर्व व्यापक है अभीष्ट अन्न हम स्तोताओ को दो ।। ८८ ।।

जलमय आलोक में सुषुम्ना नामक किरण से युक्त चन्द्रमा जल्दी से जा रहे है। हे चन्द्र किरणा ! कुए मे बन्द होने से मेरी आँख आपके सौन्दर्य को देख नही सकती। हे द्यावा पृथ्वी ! मेरे स्तोत्रो को जानती हुई तम मेरे ऊपर दयादृष्टि रखो। ८९।।

।। इति इत्यष्टादश काण्ड समाप्तम् ।।

एकोनविंश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

—ooo—

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—यज्ञ। छन्द—बृहती, पंक्ति)

स स स्रवन्तु नद्य स वाता' स पतत्रिण ।
यज्ञमिम वर्धयता गिर सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ १ ॥

इम होमा यज्ञमवतेमं संस्रावणा उत ।
यज्ञमिम वर्धयता गिर सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ २ ॥

रूपरूप वयोवय' सरभ्यैन परि ष्वजे ।
यज्ञमिम चतस्र प्रदिशो वर्धयन्तु सस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

नदियाँ प्रवाहित हो, वायु भी हमारी इच्छानुसार चले। पक्षीगण भी हमारे अनुकूल होवें हे देवगण ! तुम स्तुति योग्य हो। यजमान का शान्ति कर्म रूप यह यज्ञ पुत्रादि तथा धन का सम्पन्न करने का कारण होवे। मैं घृतादि युक्त हवि देवो को देता हूँ ॥ १ ॥

हे आहुतियो ! यज्ञ को सिद्ध करो। हे घृत, क्षीर आदि तुम इस यज्ञ का पालन करो। हे स्तुत्य देव ! यजमान को सन्तति तथा पशु धन प्रदान करो। मैं घृतादि आहुति देवों को देता हूँ ॥ २ ॥

मैं इस यजमान मे पुत्र, पशु, आदि रूपो को विद्यमान करता हूँ। समस्त दिशायें इसकी मनोभिलाषा को पूण करें। मैं घृतादि युक्त हवि देता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि—सिन्धुद्वीप देवता—आपः। छन्द—अनुष्टुप्)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः ।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः ।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मकरणीरपः ।
यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥

हे यजमान ! हिमवान के जल, झरने के जल, और सदा प्रवाह वाले जल तुझे कल्याणदायी हो। वर्षा जल भी कल्याणकारी हो॥ १ ॥

मरु जल, जल युक्त प्रदेश के जल, कूप, तडाग एवं बावडी के जल तथा कुम्भो मे लाए जल तुझे कल्याणदायी हो ॥ २ ॥

खोदने की सामिग्री पास न होने पर भी जो दोनो किनारो को खोदने में समर्थ है। जो अत्यधिक गहन स्थानो को प्राप्त है ऐसे जल वैद्यो से भी अधिक कल्याणदायी है। मैं इनको नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

हे ऋत्विजो ! तुम अन्तरिक्ष जलवत शान्ति रूपी उदक मे शीघ्रता प्रदान करो ॥ ४ ॥

हे प्रोक्ताओ ! यक्षादि रोगो की शान्ति को औषधि रूप जलो को यहाँ लाओ ॥ ५ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता—अग्नि, छन्द—त्रिष्टुप्, भुरिक त्रिष्टुप्)

दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षाद् वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्य ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥
यस्ते अप्सु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशष्व प्स्वन्त ।
अग्ने सर्वास्तन्व स रभस्व ताभिर्न एहि द्रविणोवा अजस्र ॥ २ ॥
यस्ते देवेषु महिमा स्वर्गो या ते तनू पितृष्वाविवश ।
पुष्टिर्या ते मनुष्येषु पप्रऽग्ने तया रयिमस्मासु धेहि ॥ ३ ॥
श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय वचोभिर्वाकैरुप यामि रातिम् ।
यतो भयोमभय तन्नो अस्त्वव देवाना यज हेडो अग्ने ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमारे स्तोत्र को मुग्धता के स्थान पर आओ। आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष पुष्पफल रहित तथा पक्व फल औषधियो से युक्त यहाँ पधारो। १ ॥

हे अग्ने ! जल और जगल मे तुम्हारा जो रूप है, औषधियो मे फल पाक रूप है समस्त जीवो मे जो वैश्वानर रूप है, आकाशमें जो तडित रूपहै, अपने समस्त रूपो सहित धन देती हुई यहाँ पधारो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! देवो मैं तुम्हारी स्वर्गगामी महिमा है, जिससे तुम पितरो मे प्रविष्ट हो तुम्हारा जो मन पोषण कर्म मे है, अपनी इन समस्त महिमा युक्त यहाँ पधारो। ३ ॥

हे अग्ने ! तुम हमारी स्तुति के सुनने योग्य,के अभीष्ट दाता, ज्ञाता, अतीन्द्रिर्थदर्शी हो। मैं मन्त्र समूहमे तुम्हारी स्तुति करता हूँ जिससे अभय होऊ। तुम क्रोधी देवो को भी शान्तना प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता —अग्नि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदा । तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ॥ १ ॥

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु । यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेना मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥

आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि । अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥

बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरस प्रति जानातु वाचमेताम् । यस्व देवा देवताः सबभूवु स सुप्रणीता कामो अन्वेत्वस्मान ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! पहिले देवताओ की प्रसन्नता को अथर्वा रूप ईश्वर ने आहुति दी थी तथा अग्नि ने देवगणो के पास पहुँचाया। उसी आहुति को मैं आपके मुख मे डालता हूँ। त्रिशरीर द्वारा पूजे गये देवगणो को हवि प्राप्त करावे ॥ १ ॥

सौभाग्यमयी वाणी देवी को मैं पूजता हूँ। श्रेष्ठ कर्मी पुरुषवत हम उसे माता के रूप मे सरस्वती को मानते हैं वह हमे कल्याणकारी होवे। मुझे अभीष्ट की प्राप्ति होवें ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! तुम मनुष्य के पालक हो। समस्त [illegible] को हमारे अभीष्ट के लिए प्रेरित करो जिससे हम गौ आदि धन वाले बनें ॥ ३ ॥

अङ्गिरस बृहस्पति देवी [illegible] का मुझे [illegible] करें। देवताओं को वश में करने वाले बृहस्पति अभीष्ट फल दाता हैं अतः हमारे समीक्ष आकर हमको अभीष्ट प्रदान करें ॥ ४ ॥

सूक्त (५)

(ऋषि—अथर्वाङ्गिरा । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध
उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥

त्रिलोक वासी प्राणी देवताओं के स्वामी तथा अनन्त धन पति इन्द्र पृथ्वी के समस्त धन को मुझ हविदाता को प्रदान करे। प्रसन्न हुए इन्द्र हमको धन प्रदान करें ॥ १ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—नारायणः । देवता—पुरुष । छन्द—अनुष्टुप्)

सहस्रबाहुः पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङ् ङशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूत यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४ ॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥ ७ ॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥
विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

असख्यभुजा, असख्यनेत्र, असख्यपैरो वाले नारायण सप्तसिन्धु मयी पृथ्वी को अपनी महिमा से व्याप्त कर, दशागुल मात्र स्थान मे विराजते हैं ॥ १ ।

इस यज्ञ के अनुष्ठाता अपने तीनो पैरो सहित स्वर्ग में चढ़े। इनका चतुर्थ पैर इस लोक मे बारम्बार प्रकट होता है। यह पद भोजन जीवी समस्त जीवो मे और वृक्षादि में व्याप्त है ॥ २ ॥

सम्पूर्ण विश्व उसी यज्ञानुष्ठाता पुरुष का महान् कर्म है, यह महिमा का भी आश्रय रूप है। इसका चतुर्थ पाद सब भूतो में व्याप्त है। इसके तीन पाद अमृत लोक स्वर्ग मे स्थित हैं । ३ ॥

भूत, भविष्यत् और वर्तमान ससार सब नारायण रूप

अथवा विराट रूप ही है, यही विराट पुरुष अमृतत्व तथा अन्य भूतो का स्वामी है ॥ ४ ॥

साध्य एवम् वस्तु नाम के देव ने जब इसकी कल्पना की तब न जाने इसे कितनी तरह से सोचा। इसके मुख, भुजा, उरु, और पाद क्या कहलाते है ॥ ५ ॥

इसका (विराट् पुरुष का) मुख, ब्राह्मण, भुजा, क्षत्रिय, उरु वैश्य, एव पाद शूद्र कहलाते हैं ॥ ६ ।

विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा, मुख से इन्द्राग्नि और प्राण से वायु की उत्पत्ति भई है ॥ ७ ।

शिर से स्वर्ग लोक, नाभि से अन्तरिक्ष, और पैरो से पृथ्वी लोक की उत्पत्ति हुई है। इस विराट् पुरुष के कानो से दिशायें उत्पन्न हुई। इस तरह साध्य आदि देवो ने लोको और वर्णो की कल्पना की ॥ ८ ॥

सृष्टि की प्रारम्भ मे विराट् उत्पन्न हुआ, विराट से अन्य पुरुष की उत्पत्ति भई। वह पैदा होते ही वृद्धि को पाकर पृथ्वी आदि लोको के आगे और पोछे व्याप्त हो गया। तथा जीवो को देह रचना का कार्य सम्पन्न किया ॥ ९ ॥

देवगणो के अश्व रूप हवि से अश्वमेघ यज्ञ किया तब बसन्तऋतु ने घृत ग्रीष्म ने समिधा और शरत ऋतु ने हवि का कार्य पूर्ण किया ॥ १० ॥

तं यज्ञ प्रावृषा प्रोक्षन् पुरुष जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावय ॥ १२ ॥
तस्माद् यज्ञात्ः सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत सभृत पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताश्चक्रे वायव्या नाराण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन् परिध्यस्त्रिः सप्त समिधः कृता ।
देवा यद् यज्ञ तन्वाना अवध्नन् पुरुष पशुम् ॥ १५ ॥

मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अ शवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥ १६ ॥

सृष्टि के प्रारम्भ मे उस पूज्य पशु को प्रावृट् नाम की ऋतु से धोकर उससे साध्य तथा वसु देवगणो ने यज्ञ किया ॥ ११ ॥

उस यज्ञात्मक पशु से अश्व, खिच्चर, और गधे की उत्पत्ति भई ॥ १२ ॥

उसी यज्ञ से सामवेद और ऋजु की उत्पत्ति भई ॥ १३ ॥

उसी ने दधि युक्त घी का कार्य किया। साध्य व्यापक देवगणो ने उस घृत कर्म को, और वायु ने श्वापद, पक्षी, सरीसृप, वन्दर, हाथी, अश्व, भेड, गधे, वकरे आदि पशुओ को रचना की ॥ १४ ॥

साध्यादि देवो ने यज्ञ के समय पुरुष को पशु रूप मे वाँधा और गायित्री आदि सप्त छन्दो परिधि वनाकर इक्कीस समिधाओ की रचना की । १५ ॥

यह पुरुष मे ४९० महान सोम दीप्ति युक्त रश्मियाँ आदि उसके सिर से उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥

सूक्त (७)

(ऋषि गार्ग्य । देवता--नक्षत्राणि । छन्द--त्रिष्टुप्)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥

पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥

आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥

नाना प्रकार के चमकने वाले नक्षत्र, प्रत्येक क्षण तीव्र-गति से युक्त होते हैं। इनकी मैं मन्त्र द्वारा स्तुति करता हूँ। चूंकि मैं उनकी श्रेष्ठ और कल्याण मयी वाणी की अभिलाषा करता हूँ ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हमारे आह्वान के अनुकूल कृतिका नक्षत्र बने। हे ब्रह्माजी ! रोहणी नक्षत्र भी आह्वान योग्य हो। हे सोम ! मृगशिरा नक्षत्र हमारे लिये कल्याण युक्त आह्वान कारी होवे। हे रुद्र ! आर्द्रा नक्षत्र खुश करे वृहस्पति का पुण्य नक्षत्र

लाभ कारी होवे। सर्प का अश्लेषा नक्षत्र हमे तेज प्रदान करें। पितृदेव का मघ नक्षत्र भी अभीष्ट धता होवे ॥ २ ॥

अर्यमा का पूर्वा फाल्गुनी, भग का उत्तरा, फाल्गुनी सवि देव का हस्त, इन्द्र देव का चित्रा, मुझे कल्याण प्रदान करे। वायु का स्वाति, इन्द्र का राधा, और विशाखा और मित्र का अनुराधा सुखमयी होवे, इन्द्र का ज्येष्ठा और पितरो को मूल नक्षत्र हमे सुख प्रदान करें ॥ ३ ॥

जलदेव का पूर्वाषाढ मुझे सुभक्ष्य बनावें। विश्व देवताओ का उत्तरापाढ, हमे अन्न प्रदान करे, ब्रह्मदेव का अभिजित नक्षत्र सुखमयी होवे। विष्णु का श्रवण, वसु का घनिष्ठा, अजैक-पाद का पूर्वा, भाद्रपद और अहिबुध्न्य का उत्तरा भाद्रपद हमको अत्यधिक फलो से भी युक्त करें। पूपा का रेवती और अश्विद्वय का अश्वयुक्त नक्षत्र मुझे शोभाग्यी करें। यम का भरणी नक्षत्र मुझे यश प्रदान करें ॥ ४ ५ ॥

सूक्त (८)

(ऋषि—गार्ग्य । देवता—नक्षत्राणि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु ।
प्रकल्पयश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योग भजन्तु मे ।
योग प्र पद्ये क्षेम च क्षेम प्र पद्ये योग च
नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥
स्वस्तित मे सुप्रात सुमाय सुदिव सुमृग सुशकुन मे अस्तु ।
सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्या पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥

अनुहव परिहव परिवाद परिक्षवम् ।
सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान् परा तान्त्सवित सुव ॥ ४ ॥

अपपाप परिक्षव पुण्य भक्षीमहि क्षवम् ।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥ ५ ॥

इमा या ब्रह्मणस्पते विषूच वांत ईरते ।
सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति नो अस्त्वभय नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥

आकाश, अ तरिक्ष, पृथ्वी, जल, पर्वत एव दिशाओ मे नक्षत्र देखे जाते है। चन्द्रमा जिन्हे प्रदीप्त करता प्रकट होता है वे सभी मिलकर मुझे सुख प्रदान करें ॥ १ ॥

सुख देने वाले अठठ ईस नक्षत्र मुझे समान बुद्धि रूप फल देवें। नक्षत्रो के योग से मैं अप्राय वस्तु को पाऊ तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा करने योग्य बनू। दिवस-रात्रि को मेरा नमस्कार है ॥ २ ॥

प्रात मुझे सुखदायी हो। तया सांय और दिवस और रात्री भी सुखदायी हो मैं जिसमें गति करु उसमें हरिन आदि शुभ योग मेरे अनुरूप होवें। हे अग्ने ! हवि परम नक्षत्रो को हवि पहुँचाओ ॥ ३ ॥

हे सविता देव ! सब नक्षत्रो युक्त तुम शोक, परिहव, कटु एव कठोर भाषण, वर्जित स्थल प्रवेश, खाली पाय और छीक आदि अपशकुन और बुरे कारणो को हमसे दूर रखो ॥ ४ ॥

अशुभ कारी छीक हमसे दूर रहे। धन के लिए, शृगाल दर्शन, नपुसकदर्शन, निषिद्ध है, यह सभी हमारे पाक शमनी होवे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आँधी के वेग से युक्त दिशाओं के मुझे कल्याण कारी करो ॥ ६ ॥

हमारा भय नष्ट हो। दिन और रात्री को हमारा प्रणाम है। हमको सभी। मंगलकारी होवें ॥ ७ ॥

सूक्त (९)

(ऋषि—शन्ताति । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, अनुष्टुप्, प्रभृति)

शान्ता द्यौ शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीराप. शान्ता न सन्त्वोषधी ॥ १ ॥

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्त नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्त भूत च भव्य च सर्वमेव शमस्तु न. ॥ २ ॥

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु न· ॥ ३ ॥

इदं यत् परमेष्ठिन मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोर तेनैव शान्तिरस्तु न ॥ ४ ॥

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मन षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणासंशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥

शं नो मित्र· शं वरुण. शं विष्णु शं प्रजापति ।
शं न इन्द्रो बृहस्पति शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥

शं नो मित्र शं वरुण शं विवस्वांछमन्तक· ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षा शं नो दिविचरा ग्रहा. ॥ ७ ॥

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हत च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीरा, शं भूमिरव तीर्यती ॥ ८ ॥

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः ।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु ।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥ १२ ॥

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः ।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं अस्त्वभयं मे अस्तु ॥ १३ ॥

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः । ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेवशमस्तु नः ॥ १४ ॥

द्युलोक हमें सुखमयी होवे विशाल पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष भी हमे सुखमयी होवे । समुद्र के जल व ओषधियाँ हमे शान्ती प्रदान करें ॥ १ ॥

कार्यं कारण और कठिन कार्यं भी सुख मयी होवे । मेरे पूर्व कर्म के पाप, दुष्कर्म, व्यभिचार भी शान्त को प्राप्त होवे ।

भूत, भविष्यत और वर्तमान काल के सभी दोष शमनता को पावे ॥ २ ॥

परम स्थान वासी मन्त्रो द्वारा अकृष्ट और विद्वानो द्वारा पूज्य सरस्वती जो शाप आदि मे भी उच्चरित होती है हमे कल्याणकारी होवे ॥ ३ ।

परमेष्टी विरचित ससार का मूल कारण रूप मन जो कि अत्यधिक बुरे कम करने वाला है हमने सद् कार्यों मे प्रयोग होवे ॥ ४ ॥

जिन्हे (पचेन्द्रियो को) मैंने बुरे कर्म मे लगाया वे ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे बुरे कर्मों को शान्त करने मे समर्थ हो ॥ ५ ।

अरुण, और वरुण, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र' बृहस्पति और अर्यमा देव हमे शान्ति प्रदान करें ' । ६ ।

मित्रावरुण, सूर्य, अन्तक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष मे होने वाले उत्पात और आकाश में से चलायमान ग्रह हमको शान्ति प्रदान करें ॥ ७ ॥

कम्पन युक्त पृथ्वी, कम्प दोष को दूर कर शान्त हो । ज्वाला के समान बिजली पडने वाला स्थान भी शान्ति पावें । दूध के स्थान पर रक्त प्रदान करने वाली गाये और फटती हुई पृथ्वी भी हमारे दोषो को नष्ट करें ॥ ८ ॥

उल्कारो के प्रभाव से च्युत नक्षत्र सुखमयी बन । शत्रु अभिचार भी सुखी करें । विष पुत्तलिकायें हमको शान्ति प्रदान करें । विद्युत व्यधियो को दूर करें । राष्ट्र के विघ्न भी दूर हो ॥ ९ ॥

चन्द्र-मडल के ग्रह, राहू ग्रस्त सूर्य, धूमकेतु का अनिष्ट, और रुद्र के तीक्ष्ण सन्ताप, देने वाले उपद्रव सभी शान्ति को प्राप्त होवे ॥ १० ॥

ग्यारह रुद्र, आठ वसु, बारह आदित्य, इन्द्रादि देव-गण, वृहस्पति सहित सभी अग्नि हमे शान्ति प्रदान करें ॥ ११ ॥

ब्रह्म, प्रजापति, धाता, और समस्त लोक, चारो वेद, सप्तर्षि और अग्नियाँ शुभकारी होवें। इन्द्र, ब्रह्मा, विश्वदेवा युक्त सभी देव गण मेरे लिये शुभकारी बनें ॥ १२ ॥

ऋषिगण, शान्ति को देने वाली जिन स्तुतियो के ज्ञायक हैं वे सभी मुझे सुख प्रदान करें। मुझे सब जगह सुख मिले ॥ १३ ॥

पृथ्वी, द्यो, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, विश्वदेवा, और समस्त देवगण मुझे शान्ति प्रदान करें। विपरीत फल, क्रूर फल और पाप युक्त फल जो कि हमको कर्माधीन प्राप्त होते हैं वे सभी शान्ती को ग्रहण करें तथा हमको कल्याण कारी और शुभकारी होवे ॥ १४ ॥

सूक्त १० (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—त्रिष्टुप्)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभि श न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय श योः श न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥ १ ॥

श नो भग शमु न शसो अस्तु श न पुरंधि शमु सन्तु राय।
श न सत्यस्य सुयमस्य शस श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २ ॥

श नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभि।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रि शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥ ३ ॥

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥ ४ ॥

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ १० ॥

हे इन्द्राग्ने ! तुम अपनी रक्षामयी मन से हमारी रक्षा का कार्य सम्पन्न करो। यजमान से हवि को पाकर इन्द्र और वरुण कल्याणकारी बने। सोम और इन्द्र सुख देवें। इन्द्र व पूष'देव अत्यधिक घनघोर युद्ध में शान्ति तथा सुख प्रदान करें॥ १ ॥

भग देव नराशस देव, हमे शुभकारी हो। बुद्धि, धन, वाणी ये भी हमे सुखकारी हो। अर्यमा सहित देवगणो की स्तुतियाँ हमें कल्याण प्रद हो ॥ २ ॥

धाता, वरुण, पृथ्वी द्यावापृथ्वी, और पर्वत युक्त देव गणो ! की स्तुतियाँ कल्याणप्रद हो ॥ ३ ॥

ज्योतिर्मुख अग्नि, मित्रावरुण, और अश्विनी कुमार हमें शुभकारी होवे। पुण्यजीवो के कर्म शुभकारी हो। वायु हमे शान्ति प्रदान करें॥ ४ ॥

पूर्वाहुति यज्ञ मे आकाश और वायु हमे कल्याणप्रद हो अन्तरिक्ष हमारी दृष्टि को सुखी करें। औषधि, वृक्ष, लोकपाल विजयी इन्द्र, हमे कल्याण प्रद हो ॥ ५ ॥

वसुओ युक्त इन्द्र, वरुण, रुद्रोयुक्त त्वष्टा देव हमे कल्याणप्रद हो ॥ ५ ॥

विषपक्ष सोम, मन्य, सोम कूटने का पत्थर और सोम से सम्पादित होने वाले, यज्ञ हमे मगलमयी होवे। वेदी भी मङ्गल दायी होवें। हविया भी मगलकारी होवे ॥ ७ ॥

महान तेजस्वी आदित्य कल्याण युक्त होकर उभय होवे। चारो दिशायें, पर्वत, नदियाँ और उनके जल कल्याण कारी होवे ॥ ८ ॥

देवमाता अदिती हमे सुखकारी होवे। विष्णु पूषा, और

मरुदगण युक्त देव हमे कल्याण प्रद होगे। जल तथा वायु हमको शान्ति प्रदान करें ।। ६ ।।

भय के रक्षक सविता देव, उषा की अभिमानी देवता विभाति, वर्षामयी पर्जन्य और क्षेत्र पालक हमको मगलकारी बने ।। १० ।।

सूक्त (११)

(ऋषि—वशिष्ठ. । देवता—मन्त्रोक्ता छन्दः—त्रिष्टुप्)

शं न सत्यस्य पतयो भवन्तु श नो अर्वन्त शमु सन्तु गाव ।
श न ऋभवः सुकृत. सुहस्ताः श नो भवन्तु पितरो हवेषु ।। १ ।।
श नो देवा विश्वदेवा भवन्तु श सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः श नो दिव्या पार्थिवा श नो अप्या ।। २ ।।
श नो अज एकपाद् देवो अस्तु शम हिर्बुध्न्यः श समुद्र ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु श नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ।। ३ ।।
आदित्या रुद्रो वसवो जुषन्तामिद ब्रह्म क्रियमाण नवीय ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियास ।। ४ ।।
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ।
ये नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभि सदा न ।। ५ ।।
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ।। ६ ।।

सत्य को निभाने वाले देव मगलमयी होवें। गवाश्व शान्तिदायक होवे। ऋभु और पितर हमारी स्तुतियो से प्रसन्न होकर हमे सुख मयी बनावें ।। १ ।।

अनेक स्तोत्रमयी देवगण हमको कल्याण मयी होवें। सरस्वती और विश्वदेव हमे सुखी करें। आकाश पृथ्वी, और जल से उत्पन्न देव भी हमारी रक्षा करें॥ २॥

अजेकपाद देव हमे शान्ति देवें। अहिबुध्न्य, अपान्नपात देव, समुद्र और मरुतो की माता पृश्नि ये सभी मंगलमयी कर ॥ ३॥

आदित्य रुद्र, और वसुदेव इस स्तोत्र को ग्रहण कर। यज्ञार्ह द्युलोक और पृथ्वी के देवगण हमारे इस नव स्तोत्र का श्रवण करे॥ ४॥

देवताओ के ऋत्विज, यज्ञार्ह, मनुपुत्र, तथा अमृतत्व पायी देवगण हमको अत्यधिक यशस्वी बनावें। हे देवगणो! हमारी कल्याणमयी साधनो से रक्षा करो ।५॥

हे दिनभिमानी मित्र देव! हे राज्यभिमानी वरुण! हमे रोग शांति और भय दूर का वरदान दो। हम खेत आदि को प्राप्त करें। आकाश तथा सर्वाश्रम मयी पृथ्वी को हमारा प्रणाम है॥ ६॥

सूक्त (१२)

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—उषा। छन्द—त्रिष्टुप्)

उषा अप स्वसुस्तमः स वर्तयति वर्तनिं सुजातता।
अया वजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥ १॥

अपनी बहन रात्रि के अन्धकार को, उषा आते ही नष्ट कर देती है। अपनी प्रकाशित हुई इहलोक और पारलौकिक मार्गों को दिखाती है। उषा से हम हव्यरूप अन्न प्राप्त करें। हम इससे अपत्य मयी होकर सैकडो हेमन्तो तक का जीवन प्राप्त करे ॥ १॥

सूक्त (१३)

(ऋषि--अप्रतिरथः । देवता--इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां
स्वर्यत् ॥ १ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्
साकमिन्द्रः ॥ २ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन
वृष्णा ॥ ३ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यु ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
गोविदन् ॥ ५ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म
प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्रां अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून् प्रमृणन्नमित्रानमस्माकमेध्यविता
तनूनाम् ॥ ८ ॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञ पुर एतु सोमः ॥ ९ ॥

देव,सेनानामभिभजतीना जयन्तीनां मरुतो शर्ध उग्रम् ।
महामनसा भुवनच्यवानां घोषो देवानां
जयतामुदस्थात् ॥ १० ॥

अस्माकमिन्द्र समृतेषु ध्वजेष्वस्माक या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माक वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता
हवेषु ॥ ११ ॥

मैं राक्षसो को जीतने वाली इन्द्र की भुजाओ को पूजती हूँ, जो आयुध और अभीष्ट वषर्क है ॥ १ ॥

द्रुत कर्मा, बुद्धि को तेज करने वाला, भयकर, बिजली प्रेरक शत्रुनाशक, स्वयम् ही इन्द्र शत्रुसैन्य पर विजय पाने वाले हैं। हम अभीष्टभिलाषी उनको ही सहायता लेते हैं ॥ २ ॥

विजय शील, रणक्षेत्राशक्त, वैरियो को रुलाने वाले, धनुर्धारी, अभीष्ट दाता, इन्द्र की सहायता से विजय रूपी लक्ष्मी को ग्रहण करो। हे वीरो! उन्ही के अनुग्रह से शत्रु को वश मे करो ॥ ३ ॥

खंगधारी, वाण धारो, वीरो सहित इन्द्र शत्रु का सामना करते हैं और युद्धाभिलापी शत्रुओ पर विजय पाते हैं। ये सोम पान करने वाले, विशाल धनुष युक्त भुजबल मे प्रबृद्ध और शत्रुनाशक है। हे रणवीरो! इन्द्र की सहायता से विजयी बनो ॥ ४ ॥

यह इन्द्र महाबली, अन्नयुक्त, धनयुक्त, शत्रु विजयी वीरो अर से युक्त है। हे इन्द्र! तुम इन गुणो से युक्त होते हुए रथ पर सवार होवे ॥ ५ ॥

हे समान कर्म और मति युक्त वीरो ! तुम इन्द्रादि को आगे कर वीरता सहित शत्रुओ का सहार करो। इन्द्र शत्रु के ग्रामो, गाओ और अन्नादि धनो को जीतने वाला है और इनकी भुजायें वज्र के समान है। ये अपने पराक्रम द्वारा शत्रु का सहार करते है ॥ ६ ॥

ये शत्रुओ की सेना मे चिरते हुए के समान घुस जाते है और वश मे कर लेते हैं। ये हमारी शैन्य के रक्षक होवे चूंकि इनका कोई भी सामना करने मे समर्थ नही ॥ ७ ॥

इन्द्र देव पालक है। हे इन्द्र ! तुम शत्रुमर्दन के लिए हमारे रथ पर सवार होओ और शत्रुओ तथा अमित्रो का सहार करो ॥ ८ ॥

इन्द्र शत्रुविजयी हमारी सेनाओ के स्वामी बनें। बृहस्पति पूर्व मे सोम और यज्ञ दक्षिणा मे और मरुद्गण इनके मध्य मार्ग मे चले ॥ ९ ॥

शस्त्रास्त्र को वर्षा करने वाले इन्द्र, शत्रु को भागने वाले वरुण, मरुद्गण और आदित्य शत्रुओ को वश में करने वाली शक्ति सहित प्रकट होवें। और देवताओ का इस ससार मे यश फैल जाय ॥ १० ॥

युद्धावसर पर इन्द्र हमको रक्षा प्रदान करें। हमारे आयुध शत्रु विजयी हो। हमारे आयुध शत्रु विजयी हो। हमारे सैनिक विजय युक्त उल्लासित होव। हे देवताओ सग्राम भूमि मे तुम हमारे रक्षक बनो ॥ ११ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषि—अथर्वा। देवता – द्यावापृथिव्यौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।

असपत्ना प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभय नो अस्तु ॥ १ ॥

श्रेष्ठ फल रूप लक्ष को मैंने पा लिया है। आकाश, पृथ्वी मगलमयी तथा चारो दिशाये निरूपद्रो होवें। हे सम्पत्न ! हम तुम्हारे द्वेषी नही अत हमे अभय प्रदान करो ॥ १ ॥

सूक्त (१५)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—इन्द्र, मन्त्रोक्ता। छन्द—वृहती, जगती-पक्ति, त्रिष्टुप्)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभय कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव त्व न ऊतिर्भिव द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥
इन्द्र वयमनूरावं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा ।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विपूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥
इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमत स मध्यता स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्यञ्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥
अभय न· करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभय पश्चादभय पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभय ज्ञातादभय परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा न सर्वा आशा मम मित्र भवन्तु ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभय दाता हो। हमारे भय को दूर करो। तुम रक्षा साधनो से हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

हम इन्द्र की कामना पूर्ति को बुलाते हैं। शत्रु सेना जो कि हमारे दुपाये, चौपायो की अभिलाषा पूर्ति मे बाधक होती है दूर रहे। हे इन्द्र ! हमारे शत्रु को नष्ट करो ॥ २ ॥

वृत्रासुर को ताडने वाले इन्द्र हमारी रक्षा करे। स्वर्ग मे प्रकाशमान सूर्य हमे कल्याण देता हुआ अभय प्रदान करें। हे इन्द्र ! तुम्हारी महाबली भुजाओ को पाकर हम शत्रुओ का सहार करे ॥ ३ ४ ॥

आकाश तथा अन्तरिक्ष हमे अभय दाता होवे। चारो दिशायें भी हमे सब ओर से अभय प्रदान करे ॥ ५ ॥

मित्रो से और शत्रुओ से हम अभयी बनें। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार के शत्रु ही हमे भयभीत न कर सकें। दिवस, रात्रो, और सम्पूर्ण दिशायें मुझे अभय प्रदान करें और मित्रवत हितकारी होवें ॥ ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—अनुष्टुप्, शक्वरी)

असपत्नं पुरस्तात् पश्चान्नो अभयं कृतम्। सविता मा दक्षिणत-उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम्।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥

हे सविता देव ! हे सपत्निक देवो ! पूर्व, पश्चिम दिशाओ को शत्रु रहित करो। उत्तर मे इन्द्र और दक्षिण मे सूर्य देव हमको रक्षा प्रदान करें ॥ १ ॥

सूर्य मण्डल मे आदित्य हमारी रक्षा करें, पृथ्वी पर अग्नि, पूर्व दिशा मे इन्द्राग्नि मेरे रक्षक होवे। दिशाओ मे अग्नि रक्षक हो। वे भूत और पिशाचो से रक्षा करे ॥ २ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—जगती, शक्वरी)

अग्निर्मा पातु वसुभि पुरस्तात् तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि-ददे स्वाहा ॥ १ ॥

वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परिददे स्वाहा ॥ २ ॥

सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिश पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि ददे स्वाहा ॥ ३ ॥

वरुणो मादित्यैरेतस्या दिश पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये ता पुर प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥

सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिश पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुर प्रैमि। सा मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मान परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥

आपो मौषधीमतीरेतस्या दिश पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये ता पुर प्रैमि। त मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्त ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥

विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि। स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १० ॥

पृथ्वी पर अग्नि और पूर्व में वसु मेरी रक्षा करे। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान मे जहाँ जाऊँ अग्नि मेरी रक्षा करे। मैं रक्षा के लिए उनका सहारा लेता हूँ ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष और पूर्व दिशा मे वायु मुझे रक्षा प्रदान करे। पाद-प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थान पर जहाँ भी मैं जाऊँ वायु मेरी रक्षा करे। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनकी शरण लेता हूँ ॥ २ ॥

सोम और इन्द्र दक्षिण मे मेरी रक्षा करे। पाद-प्रक्षेप एव पाद-प्रक्षेप के स्थान पर भी मेरी रक्षा करे। जाने वाली शय्या पर सोम मेरे रक्षक होवे। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनका आश्रय लेता हूँ ॥ ३ ॥

आदित्यो सहित वरुण मेरी रक्षा दक्षिण दिशा मे करे। पाद प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थानो पर वे मेरे रक्षक होवें।

शय्या रूप पुर मे वे मेरे रक्षक थे, मैं अपनी रक्षा का कार्य उन्हे सोपता हूँ ।। ४ ।।

द्यावा पृथ्वी युक्त सूर्य मेरे पश्चिम दिशामे रक्षक होवें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थान मे सूर्य रक्षा करे तथा शय्या रूप पुर में भी रक्षा करे। मैं अपनी रक्षार्थ सूर्य को सोपता हूँ। ५ ।।

औषधि रूप जल इस दिशा में मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद प्रक्षेप के स्थानो मे तथा शय्या रूप पुर में जल ही मेरी रक्षा करें। जल के लिए मैं अपने को सोपता हूँ ।। ६ ।

परमेश्वर सप्तऋषियो युक्त उत्तर दिशा मे मेरे रक्षक होवें। पाद प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो मे तथा शय्या रूप पुर मे ये मेरी रक्षा करें। अपनी रक्षा निमित्त मैं उनकी शरण लेता हूँ ।। ७ ।।

मरुद्गण सहित इन्द्र उत्तर दिशा मे मेरी रक्षा करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो तथा शय्या रूपी पुर मे वे मेरी रक्षा का कार्य सम्पन्न करे। मैं अपनी रक्षा के निमित्त उनकी शरण लेता हूँ ।। ८ ।।

प्रजापति ध्रुव दिशा में मेरी रक्षा करे। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानो तथा शय्या रूप पुर मे प्रजापति हमारी रक्षा करें। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनकी शरण मे जाता हूँ ।। ९ ।।

हे देव हितैषी वृहस्पति देव देवगण युक्त उर्ध्व दिशा मे मुझे रक्षा प्रदान करें। पाद-प्रक्षेप और पाद-प्रक्षेप के स्थानों तथा शय्या रूप पुर मे वे मेरी रक्षा करे। मैं अपनी रक्षा निमित्त उनका आश्रय लेता हूँ ।। १० ।।

सूक्त (१८)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्)

अग्नि ते वसुवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥

वायु तेन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥

सोम ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥

वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥

सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव प्रतीच्या दिशोऽभिदासात ॥ ५ ॥

अपस्त ओषधीमतीऋच्छन्तु ।
ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥

इन्द्र ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥

प्रजापति ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥

बृहस्पति ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु ।
ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥ १० ॥

दूसरो की हिंसाभिलाषी शत्रु मुझे रात्रि मे अनुष्ठान

करने वाले को पूर्व की ओर से आकर हिंसा करना चाहते हैं वे वशुंवत अग्नि मे गिरकर नष्ट हावें ॥ १ ॥

अन्य हिंसाभिलापी जो शत्रु मुझे रात्रि मे अनुष्ठान करते हुए दक्षिण दिशा से आकर मारना च हते है व रुद्रवत सोम को पा नष्ट होवे ॥ २ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो मुझे पूर्व दिशा से आकर नष्ट करना चाहते हैं वे अन्तरिक्ष युक्त वायु को पाकर नष्ट होवें ॥ ३ ॥

हिंसा गामी जो शत्र मुझ अनुष्ठान करते हुए को दक्षिण दिशा स आ नष्ट करना चाहते हैं वे आदित्यवान वरुण के पाश को पाकर नष्ट होवें ॥ ४ ॥

दूसरो की हिंसागामी जो शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को पश्चिम दिशा से आ नष्ट करना चाहते हैं वे सूय को प्राप्त हो नष्ट होवें ॥ ५ ॥

दूसरो की हिंसा गामी जो शत्रु मुझ रात्रि में अनुष्ठान करने वाले को मारना चाहते हैं वे औपधिमय जल को पाकर नष्ट होवें ॥ ६ ॥

दूसरो की हिंसा मे प्रवृत्त जो श मुझे रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आ मारना चाहते हैं वे शत्र सप्तर्षि मय विश्व कर्मा द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ७ ॥

दूसरो की हिंसा मे प्रवृत्त जो शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को उत्तर दिशा से आकर मारना चाहते हैं वे मरुत्वान इन्द्र द्वारा नष्ट किये जावें ॥ ८ ॥

जो पाप रूप हिंसायुक्त, शत्रु मुझ रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले को ध्रुव दिशा से आ नष्ट करना चाहते है वे प्रजापति द्वारा नष्ट को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

जो पाप रूप शत्रु मुझ रात्रि अनुष्ठानी को मारने की कामना से उर्द्ध्व दिशा से आकर नष्ट करना चाहते हैं वे बृहस्पति से नष्ट किए जावें ॥ १० ॥

सूक्त (१९)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, पङ्क्ति)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥

वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ २ ॥

सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ३ ॥

चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥

सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म यच्छतु ॥ ५ ॥

यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ६ ॥

समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुर प्र णयामि व ।
तामा विशत तां प्र विशत सा व शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ७ ॥
ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत ता प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छत ॥ ८ ॥
इन्द्रो वीर्यणोदक्रामत् तां पुर प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ९ ॥
देवा अमृतेनोदक्रामस्तां पुर प्र णायामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा व शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ १० ॥
प्रजापति प्रजाभिरुदक्रामत् ता पुर प्र णयामि व ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च
यच्छतु ॥ ११ ॥

मित्र नाम वाले अग्निदेव अपने आश्रय स्थान पृथ्वी से जिस पुर की रक्षा को उठते हैं उस शय्या पुर मे तुम प्रजावान, पत्नीवान् राजा को प्रविष्ट कराता हूँ। तुम इन्द्र द्वारा रक्षित उस पुर मे शय्या, भवन आदि ग्रहण करो। वह पुरी आपको अभेद्य कवच वत रक्षक है ॥ १ ॥

वायु अपने स्थान अन्तरिक्ष से जिसपुर की रक्षा निमित्त चलता है वह पूर्ण रूपेण वायु से रक्षित है। उस शय्या आदि युक्त पुर मे मैं तुम प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ। तुम उसमे जाकर शय्या, भवन आदि ग्रहण करो। यह पुर कवच वत सुखदायी है ॥ २ ॥

आदित्य अपने स्थान स्वर्ग से जिस पुर को रक्षा निमित्त उदय होते हैं वह पूर्ण रूपेण उससे रक्षित है। उस शय्या, भवन आदि से युक्त पुर मे मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुमको प्रवेश कराता हूँ। तुम्हारे निवास को वह अभेद्य कवच की तरह सुखदायी है ।। ३ ।।

जिस पुर की रक्षा को नक्षत्रवान चन्द्रमा उदय को प्राप्त होते हैं वह पूणरूप से उनके द्वारा रक्षित है। अत शय्या, भवन आदि से युक्त पुरमे प्रजा तथा सपत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। उसमे तुम कवच के समान सुखपूर्वक निवास करोगे । ४ ।।

जिसकी रक्षा को सोम ओषधिया प्रकट करते हे वह पुर उनके द्वारा पूर्ण रूम से रक्षित हैं। उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं प्रजा पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हे कवचवत सुखदायी होवे ।। ५ ।।

जिस पुर की रक्षा निमित्त दक्षिणा युक्त यज्ञ शुरु हुआ वह पुर उससे पूर्ण रूप सुरक्षित है अत उस शय्या, भवनादि से सुसज्जित पुर मे मैं प्रजा तथा पत्नी युक्त तुम राज्यको प्रवेश करता हूँ। वह पुर अभेद्य कवचवत तुम्हे सुख प्रदान करेगा ।६।

जिस पुर को रक्षा निमित्त समुद्र नदियो सहित प्रकट हुआ उस शय्या भवनादि से युक्त पुर मे मैं तुम निवास करो। मे प्रजा और समत्नीक राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह तुम्हे अभेद्य कवचवत रक्षा प्रदान करे ।। ७ ।।

ब्रह्मचारियो से युक्त ब्रह्म जिस पुर की रक्षा निमित्त तत्पर हुए उसमे प्रजा युक्त और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश करता हूँ। वह शय्या, भवनादि से सुसज्जित है और अभेद्य कवचवत सुखदायी है ।। ८ ।।

अपने भुजबल से इन्द्र जिस पुर की रक्षा करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित हैं उसमे प्रजा तथा पत्नी युक्त राजा को मैं प्रवेश करता हूँ। तुम उसमे निवास करो। वह तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ ९ ॥

जिस पुर की रक्षा अमृत सहित देवगण करते हैं जो शय्या और भवनादि से सुसज्जित है वहाँ प्रजा और पत्नी सहित राजा को प्रवेश कराता हूँ। वह पुर तुम्हारे लिए अभेद्य कवचवत सुखदायी होवें ॥ १० ॥

मनुष्य आदि प्रजाओ सहित जिस पुर की प्रजापति ने रक्षा की है जो शय्या और भवनादि से सुजज्जित हैं। उसमे प्रजा और पत्नी युक्त राजा को प्रवेश कराता हूँ। तुम वहा निवास करो। वह पुर तुमको अभेद्य कवचवत सुखदायी होवे ॥ ११ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, बृहती)

अप न्यधु पौरुषेयं वध यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पति ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यम. पूषास्मान् परि पातु मृत्यो ॥ १ ॥

यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्य ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥

यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्यु राजयो देहिनि ।
इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान् पातु विश्वतः ॥ ३ ॥

वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्य. ।
वर्म मे विश्वे देवाः क्रन् मा मा प्रापत् प्रातीचिका ॥ ४ ॥

जिस मरण को कर्म शत्रु ने गुप्त रूप में किया है, उससे इन्द्र, अग्नि, धाता, सविता, बृहस्पति, सोम, वरुण, अश्विदय, यम और पूषा हमारे कवचधारी राजा की रक्षा कार्य करे ॥ १ ॥

प्रजापति ने प्रजा रक्षण को जो कवच बनाया है और जिनको मातरिश्वा प्रजापति और दिशा, महादिशा, अवान्तर दिशायें, रक्षार्थ कारण करती है, वे अनेक कवच होवें ॥ २ ॥

असुर युद्ध मे जिसको देवताओ ने धारण किया और इन्द्र ने भी धारण किया। वह कवच सभी ओर से हमारा रक्षक होवे ॥ ३ ॥

द्यावा, पृथ्वी, अग्नि, सूर्याग्नि मुझ युद्धभिलाषी को रक्षण-साधन रूप कवच प्रदान करे। शत्रु जैसा हमारे राजा के पास गुप्त रूप मे न जावें ॥ ४ ॥

सूक्त २१ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—छन्दांसि। छन्द—बृहती)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब् बृहती पक्तिस्त्रिष्टुब् जगत्यै ॥ १ ॥

गायत्री छन्द, उष्णिक् छन्द, वृहती, पक्ति, त्रिष्टुप और जगती छन्दो को स्वाहुति हो ॥ १ ॥

सूक्त (२२)

(ऋषि—अङ्गिराः। देवता—मन्त्रोक्ता.। छन्द—जगती प्रभृति)

आङ्गिरसानामाद्यैः पचानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥

षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥
नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
पर्यायिकेभ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
प्रथमेभ्य शखेभ्य स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वितीयेभ्य शंखेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥
तृतीयेभ्य शंखेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥
उत्तमेभ्य स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥
ऋषिभ्य स्वाहा ॥ १४ ॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥
गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥
सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्य स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृतः वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनर्हति ब्रह्मणा
स्पर्धित् क ॥ २१ ॥

यह आहुति अ गारसो आदि कांच अनुवाको को स्वाहुत होवे ॥ १ ॥

षष्ठ, सप्त और अष्टम, के लिए, नील नखो के लिए,

हरितो के लिए, क्षुद्रो को, पर्यायिको के लिए प्रथम शखो के लिए, द्वितीय, तृतीय शखो के लिए, उपोत्तमो के लिए, उत्तमो के लिए, उत्तरो के लिए, ऋत्वियो के लिए, शिखियो के लिए, गणो के लिए, महागणो के लिए, विद्वान अङ्गिराओ के लिए पृथक् सहस्त्रो के लिए और ब्रह्मा के लिये आहुति स्वाहुत होवें ॥ २-२० ॥

सभी वीबू कर्म महाज्येष्ठ होते हैं। ये सभी कर्म वेद द्वारा सम्पन्नता प्राप्त करते हैं। ब्रह्म ने पहले आकाश का विस्तार किया। समस्त प्राणियो मे ब्रह्म सर्व प्रथम हुये अतः उनकी समानता कोई नही कर सकता है ॥ २१ ॥

सूक्त (२३)

(ऋषि—अथर्वा—देवता—मन्त्रोक्ता । छन्दः—बृहती त्रिष्टुप्, पक्ति, गायत्री, जगती)

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्य स्वाहा ॥ १ ॥
पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥
षड्चेभ्य स्वाहा ॥ ३ ॥
सप्तर्चेभ्य स्वाहा ॥ ४ ॥
अष्टर्चेभ्य स्वाहा ॥ ५ ॥
नवर्चेभ्य स्वाहा ॥ ६ ॥
दशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
एकादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ ९ ॥
त्रयोदश र्चेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
चतुर्दशर्चेभ्य. स्वाहा ॥ ११ ॥
पञ्चदशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १२ ॥

षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥
सप्तदशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १४ ॥
अष्टादशर्चेभ्य स्वाहा ॥ १५ ॥
एकोनविंशति स्वाहा ॥ १६ ॥
विंशतिः स्वाहा ॥ १७ ॥
महत्काण्डाय स्वाहा ॥ १८ ॥
तृचेभ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥
एकर्चेभ्य स्वाहा ॥ २० ॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ २१ ॥
एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥ २२ ॥
रोहितभ्यः स्वाहा ॥ २३ ॥
सूर्याभ्य स्वाहा ॥ २४ ॥
व्रात्याभ्या स्वाहा ॥ २५ ॥
प्राजापत्याभ्या स्वाहा ॥ २६ ॥
विपासह्यै स्वाहा ॥ २७ ॥
मगलिकेभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २९ ॥
ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूताना ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा
स्पर्धितुं कः ॥ ३० ॥

आथवणो की चारो भुजाओ को, पांच ऋचाओ को छः ऋचाओ को, सप्त ऋचाओ को, आठ ऋचाओ को, नौ ऋचाओ को, दश ऋचाओ को, ग्यारह ऋचाओ को, बारह ऋचायो, तेरह ऋचाओ को, चौदह ऋचाओ को, पन्द्रह ऋचाओ को, सोलह ऋचाओ को, सत्तरह ऋचाओ को, अठारह ऋचाओ को, उन्नीस ऋचाओ को, बीस ऋचाओ को, महत्काण्डों को,

तृचो को, एकर्चो को, क्षुद्रो को, एकानृचो को, रोहितो को, सूर्यों को, व्रात्यो को, प्राजापात्यो को, विषासहि मांगलिको को और ब्रह्मा को स्वाहुत हो ॥ १-२९ ॥

सभी वीर कर्म ज्येष्ठ होते हैं। ब्रह्मा ने ही आकाश का सर्व प्रथम उत्पन्न हो विस्तार किया। अत कोई भी मनुष्य या देव उनकी समानता कैसे कर सकता है ॥ ३० ॥

सूक्त (२४)

ऋषि—अथर्वा । देवता—मन्त्रोक्ता । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री)

येन देव सवितार परि देवा अधारयन् ।
तेनेम ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन ॥ १ ॥

प रीममिन्द्रमायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैन जरसे नया ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ २ ॥

परीम सोममायुषे महे श्रोत्राय धत्तन ।
यथैन जरसे नयां ज्योक् श्रोत्रेऽधि जागरत् ॥ ३ ॥

परि धत्त धत्त नो वर्चसेम जरामृत्यु कृणुत दीर्घमायु ।
बृहस्पतिः प्रायच्छद् वास एतत् सोमाय राज्ञे परिधातवा उ ॥ ४ ॥

जरा सु गच्छ परि धत्स्व वासो भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ ।
शत च जीव शरद पुरूची रायश्च पोषमुपसंव्ययस्व ॥ ५ ॥

परीद वासो अधिथा स्वस्तयेऽभूर्वापीनामभिशस्तिपा उ ।
शत च जीव शरद. पुरूचीर्वसूनि चार्यवि भजासि जीवन् ॥ ६ ॥

योगेयोगे तवस्तर वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्यु· प्रजया श विशस्व ।
तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पति सविता तदिन्द्रः ॥ ८ ॥

देवों ने जिस आदित्य को धारण किया, उस शत्रु नाश रूप हे ब्रह्मणास्पते ! इस महान शान्ति कर्म वाले यजमान को राष्ट्र रक्षा को प्रतिष्ठित करो । १ ॥

हे ऐश्वरयुक्त इन्द्र ! तुम साधक को परोपकार और आयु के निमित्त क्षात्र बल सम्पन्न करो। जिससे यह शान्ति कर्मी यजमान चिरकाल जीवी बने। यह शत्रुओ पर विजय पावे ॥ २ ॥

हे वस्त्राभिमानी देव सोम ! इस शान्ति कर्मी यजमान को दीर्घ आयु सबलता और यश के लिए पुष्ट करो। यह यजमान वृद्धावस्था तक श्रोत्रादि इन्द्रियो से युक्त और यशस्वी होवे ॥ ३ ॥

हे देवगण ! इस बालक को तेज युक्त करो। यह सौ वर्ष की आयु पावे। यह वृद्धावस्था मे ही मृत्यु को प्राप्त होवे। इस वस्त्र को वृहस्पति ने सोम को धारण करने को दिया ॥ ४ ॥

हे यजमान ! तुम वृद्धावस्था तक सुख पूर्वक रहो। इस वस्त्र को धारण कर गौओ की सुभावना से रक्षा प्राप्त कर। तुम सन्तति सहित सौ वर्ष तक जीवन धारण करो ॥ ५ ॥

हे यजमान ! तुम कल्याण के लिए इस वस्त्र को धारण करो। तुम वस्त्रो से सुसज्जित पुत्र, स्त्री, मित्र, आदि को धन प्रदान कर और प्रजावान होकर शत आयु वाला हो ॥ ६ ॥

हम स्तुति करने वाले सखा सम, परमेश्वर्यवान इन्द्र को हम अन्नादि प्राप्ति के लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

हे यजमान ! तुम पुष्टता सहित कान्तिवान बनो । पुत्रादि से युक्त अकाल मरण से रक्षित हुआ प्रजा सहित इस घर मे वास करो ॥ ८ ॥

सूक्त (२५)

(ऋषि—गोपथ । देवता—वाजी । छन्द—अनुष्टुप्)

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च ।
उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥ १ ॥

हे अश्व ! तुमको मैं शत्रु घर्षण के लिए उत्सुक करता हूँ और सवार को भी उत्साहित करता हूँ । तुम शत्रु पर आक्रमण मन वाले बनो । तुम अश्व जाति के मन से युक्त करो । बाढ युक्त नदी के समान तुम शत्रुओं पर चढो और सतत बढो । तेरे से मैं शत्रु को जीतूं । तुम शीघ्रता से विजय पाने वाले स्थान को प्राप्त होवो ॥ १ ॥

सूक्त (२६)

(ऋषि - अथर्वा । देवता—अग्निः हिरण्यम् । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्तिः)

अग्नेः प्रजात परि यद्धिरण्यममृत दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्य सूर्येण सुवर्ण प्रजावन्तो मानवः पूर्व ई षिरे ।
तत् त्वा चन्द्र वर्चसा स सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जना अनु ॥ ३ ॥
यद् वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।

इन्द्रो यद् वृत्रहा वेद तत् त आयुष्य भुवत् तत् ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥

अग्नि से उत्पन्न होने वाला सुवर्ण और अमृत रूप से मरण युक्त मनुष्यो मे व्याप्त सुवर्ण के इन रूपो को जानने वाले पुरुष ही इसके धारणधिकारी हैं। जो इस स्वर्ण को आभूषण रूप धारण करता है। वह वृद्धावस्था मे ही मरण को पाता है ॥ १ ॥

जिसको मनु ने धारण किया था, वह दीप्तियुक्त सुवर्ण तुम्हे कान्ति प्रदान करे। ऐसा मनुष्य दीर्घ जीवी होता है ॥ २ ॥

हे स्वर्णधारी मनुष्य ! यह सुवर्ण तुम्हे दीर्घ जीवी करें। यह तुझे वच से युक्त करें। मृत्यादि से युक्त करें। तुम सुवर्ण के समान तेज को धारण कर मनुष्यो में तेजस्वी बनो ॥ ३ ॥

वरुण, जिस सुवर्ण को जानते है। बृहस्पति भी जिसके ज्ञाता हैं, उस सुवर्ण के मृत्यु-नाशक गुण से इन्द्र भी परिचित है। यह सुवर्ण तुम्हे आयु और वर्च युक्त करे ॥ ४ ॥

सूक्त २७ (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—भृग्वङ्गिराः। देवता—त्रिवृत्। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, जगती, उष्णिक्, शक्वरी)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः ।
वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः ।
माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान् ।

त्रिवृतं स्तोम त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भि ॥ ३ ॥

त्रीन्नाकांस्त्रीन् समुद्रांस्त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान् ।
त्रीन् मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान् गोपतृन् कल्पयामि ते ॥ ४ ॥

घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्ने आज्येन वर्धयन ।
अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राण मायिनो दभन् ॥ ५ ॥

मा व. प्र ण मा वोऽपान मा हरो मायिनो दभन् ।
भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥

प्राणेनाग्नि स सृजति वात प्राणेन सहित ।
प्राणेन विश्वतोमुख सूर्य देवा अजनयन् ॥ ७ ॥

आयुषायुःकृता जीवायुष्मान् जीव मा मृथा ।
प्राणेनात्मन्वता जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

देवाना निहित निधि यमिन्द्रोऽन्वविन्दत् पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ६ ॥

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुर प्स्वन्त ।
अस्मिश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद् वीर्याणि ॥ १० ॥

ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिद जुषध्वम् ॥ ११ ॥

ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिद जुषध्वम् ॥ १२ ॥

ये देवा पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिद जुषध्वम् ॥ १३ ॥

असपत्न पुरस्तात् पश्चान्नो अभय कृतम् ।
सविता मा दक्षिण त उत्तरान्मा शचीपति ॥ १४ ॥

दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म । १५ ॥

हे पुरुष ! तुम त्रिवृत् मणि के धारक हो । दलपति वृषभ गौओ सहित तुझे रक्षा प्रदान करें । प्रजनन योग्य अश्व भी तुझे रक्षा प्रदान करें । वायु ये व्याप्त ब्रह्म इन्द्र की इन्द्रियां तेरी रक्षा करे ।। १ ।।

सोम औषधियो से युक्त हुआ तेरी रक्षा करें । सूर्य नक्षत्र सहित तेरा पोषण कर्म करें । मासो सहित वृममारक चन्द्रमा तेरे रक्षक हो । प्राण वायु सहित वायु तुम्हारी रक्षक होवें ।। २ ।।

तीन प्रकार के स्वर्ग, तीन प्रकार के अन्तरिक्ष, तीन प्रकार की पृथ्वी, चार समुद्र, त्रिवृत स्तोम, त्रिवृत्, जल, यह सब अपने भेदो युक्त मणि के सुवर्ण, रजत, लोहमयी त्रिवृत् द्वारा तेरे रक्षक होवें ।। ३ ।।

हे पुरुष ! तुम त्रिवृत्मणि के कारक हो । इसके द्वारा मे त्रिभेदात्मक स्वर्ग को तेरी रक्षा करने वाला बनाता हूँ । तीन भुवन तीन समुद्र और तीन आदित्य तेरी रक्षा करें । त्रिगुणात्मक वायु रश्मि और उनके देवता भेद वाले त्रिस्वर्गों को तेरे रक्षक रुप मे बनाता हूँ ।। ४ ।।

हे अग्ने ! मैं तुम्हे घृत से जलाता हूँ और उसी से सींचन कर्म करता हूँ । हे मणि युक्त पुरुष ! घृत युक्त अग्नि की, औषधि आदि को पुष्ट कर्ता चन्द्रमा की और सूर्य की कृपा से मायामयी असुरगण तुम्हे पीडित न करें ।। ५ ।।

हे पुरुष ! ये मायामयी राक्षस तुमको मार न पावें और न तेरे तेज और प्राणयान को ही नष्ट कर सकते हैं। हे समस्त देवगणो ! इसकी रक्षा के निमित्त तीव्रग मी रथ पर सवार होकर चलो। ६ ॥

यजमान प्राण से अग्नि को युक्त करता है। वायु भी प्राण युक्त है। देवो ने प्राण से ही विश्वतोमुख सूर्य को उत्पन्न किया था ॥ ७ ॥

हे मणिमान पुरुष पाचीन ऋषियो मे स्वयं और दूसरे की आयु से मरण को बढ़ाने की शक्ति थी। तुम उन्ही महर्षियो को आयु से मरण को न प्राप्त होता हुआ आयुष्मान बनो। तुम उन्ही के पाणो से जिवित रहो ॥ ८ ॥

हे पुरुष ! जिस धरोदर छिपे हुये सुवर्ण को इन्द्र ने खोज निकाला, जिसकी त्रिवृत जलो ने रक्षा की वे त्रिवृत जल त्रिवृत-मणि रुप देह से तेरी रक्षा करे। ९ ॥

तेतीस देवो ने तीन पकार के वीयो और सुवर्णो को पिय जानकर जल मे विद्यमान किया। जो सुवर्ण चन्द्रमा मे है, उससे यह मणि तेतीस देवो की नाना पकार की शक्तियो को इस पुरुष को पदान करें ॥ १० ॥

आकाश मे विद्यमान ग्यारह आदित्य इस घृतमयी हवि को भक्षण करे। अन्तरिक्ष के ग्यारह रुद्र और पृथ्वी के ग्यारह देव भी इसका भक्षण करे ॥ ११-१३ ॥

हे सविता देव ! हे शचिपते ! पूर्व पश्चिम मे शत्रुओ को नष्ट कर हमे अभय पदान करो। सविता दक्षिण और इन्द्र उत्तर दिशा मे मेरे रक्षक बने ॥ १४ ॥

सूर्य स्वर्ग लोक मे भय से बचावे। पृथ्वी अग्नि पृथ्वी

के भयो और इन्द्राग्नि सम्मुख भयो से रक्षा करें। अश्विद्वय समस्त दिशाओ से मेरी रक्षा करें। अग्नि तिर्यंक् स्थान मे रक्षा करें। पचभूतो के स्वामी अग्नि मुझे सब ओर से रक्षा करने मे समर्थ कवच प्रदान करें ॥ १५ ॥

सूक्त (२८)

(ऋषि- ब्रह्मा। देवता—दर्भमणि। छन्द—अनुष्टुप्)

इम बध्नामि ते मणि दीर्घायुत्वाय तेजसे।
दर्भ सपत्नदम्भन द्विषतस्तपन हृदः ॥ १ ॥
द्विषतस्तापयन् हृद शत्रूणां तापयन् मन ।
दुर्हार्द सर्वांस्त्व दर्भ घर्मइवाभीन्त्सन्तापयन् ॥ २ ॥
घर्म इवाभितपन् दर्भ द्विषतो नितपन् मणे।
हृदः सपत्नानां भिन्द्धीन्द्रइव विरुज बलम् ॥ ३ ॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे ।
उद्यन् त्वचमिव भूम्या शिर एषां वि पातय ॥ ४ ॥
भिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे भिन्द्धि मे पृतनायत ।
भिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दो भिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
छिन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे छिन्द्धि मे पृतनायत ।
छिन्द्धि मे सर्वान् दुर्हार्दश्छिन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
वृश्च दर्भ सपत्नान् मे वृश्च मे पृतनायतः ।
वृश्च मे सर्वान् दुर्हार्दो वृश्च मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥
कृन्त दर्भ सपत्नान् मे कृन्त मे पृतनायत ।
कृन्त मे सर्वान् दुर्हार्द कृन्त मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
पिंश दर्भ सपत्नान् मे पिंश मे पृतनायतः ।
पिंश मे सर्वान् दुर्हार्द पिंश मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

विध्य दर्भ सपत्नान् मे विध्य मे पृतनायतः ।
विध्य मे सर्वान् दुर्हार्दो विध्य मे द्विषतो मणे ॥ १० ॥

हे पुरुष ! तुम विजय और बल के अभिलाषा वाले हो। यह दर्भमय मणि शत्रु-नाशक और उनके हृदय को सन्ताप देने वाली है। मैं इसे तेज और दीर्घायु के लिए धारण करता हूँ ॥ १ ॥

हे दर्भमणे ! तुम शत्रुओं के मन को सन्ताप करती हुई हृदय को दुःखी बना। तुम मलिन हृदय युक्त शत्रु के पशु, प्रजा, और खेतादि को नष्ट कर ॥ २ ॥

हे दर्भमणे ! सूर्य के समान तुम अपने तेज से शत्रुओं को सन्तप्त कर। तू इन्द्र वत उसके हृदय और बल को नष्ट कर ॥ ३ ॥

हे दर्भमणे ! तुम शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण करने वाली हो। घर बनाने को जैसे मनुष्य वहाँ से घास आदि को साफ करता है उसी प्रकार तुम शत्रुओं को साफ कर दें ॥ ४ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध शैन्य इकट्ठा करने वाली, कपटी हृदय वालो, और मेरे से दुश्मनी रखने वालो को नष्ट भ्रष्ट कर दें ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना इकट्ठे करने वालो को चीर डाल। मेरे शत्रुओं को और मेरे प्रति बुरे मान रखने वालों को नष्ट कर डाल ॥ ६ ॥

हे दर्भमणे। मेरे विरुद्ध सेना इकट्ठा करने वालो को और मलिन हृदय वालो को, और मेरे द्वेपियो को काट डाल ॥ ७ ।

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सेना एकत्रित करने वालो, मलीन हृदयी और मुझसे द्वेष युक्तों को छिन्न मस्तक कर डाल ॥ ८ ॥

हे दर्भमण ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति इकट्ठा करने वालो मलीन हृदमियो और मेरे द्वेषियो को तुम पीस डलो ॥ ९ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रुओ को ताडो। मेरे विरुद्ध सेना एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय से युक्त पुरुषो और मेरे से राग-द्वेष रखने वालो को पीस डालो ॥ १० ॥

सूक्त (२९)

(ऋषि– ब्रह्मा। देवता—दर्भमणि। छन्द—त्रिष्टुप्)

निक्ष दर्भ सपत्नान मे निक्ष मे पृतनायत ।
निक्ष मे सर्वान् दुर्हार्दो निक्ष मे द्विषतो मणे ॥ १ ॥
तृन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे तृन्द्धि मे पृतनायतः ।
तृन्द्धि मे सर्वान दुर्हार्दस्तृन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ २ ॥
रुन्द्धि दर्भ सपत्नान् मे रुन्द्धि मे पृतनायत. ।
रुन्द्धि म सर्वान् दुर्हार्दो रुन्द्धि मे द्विषतो मणे ॥ ३ ॥
मृण दर्भ सपत्नान् मे मृण मे पृतनायत ।
मृण मे सर्वान् दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥ ४ ॥
मन्थ दर्भ सपत्नान् मे मन्थ मे पृतनायत ।
मन्थ मे सर्वान दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥ ५ ॥
पिण्डढ दर्भ सपत्नान् मे पिण्ड्ढ मे पृतनायतः ।
पिण्ड्ढ मे सर्वान् दुर्हार्दः पिड्ढ मे द्विषतो मणे ॥ ६ ॥
ओष दर्भ सपत्नान् मे ओष मे पृतनायतः ।
ओष मे सर्वान् दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥ ७ ॥

दह दर्भ सपत्नान् मे दह मे पृतनायतः ।
दह मे सर्वान् दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥ ८ ॥
जहि दर्भ सपत्नान् मे जहि पृतनायत ।
जहि मे सर्वान् दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥ ९ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे शत्रु, मेरे विरुद्ध सैन्य इकट्ठा करने वालो, मलीन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वालो शत्रुओ को चूस डाल ॥ १ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो, और मेरे से द्वेष करने वालो का तुम नाश कर डालो ॥ २ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष रखने वालो को रोको ॥ ३ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वालो को मार डाल ॥ ४ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वाल मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वाले शत्रुओ का मन्थन कार्य करो ॥ ५ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो और मेरे से द्वेष करने वाले शत्रुओ को भस्म कर दे ॥ ६ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने वालो, मलिन हृदय वालो मेरे से द्वेष रखने वाले शत्रुओ को तुम जला डालो ॥ ८ ॥

हे दर्भमणे ! मेरे विरुद्ध सैन्य शक्ति एकत्रित करने

वालो मलीन हृदय वालो और मेरे से द्वेष रखने वालो को तुम मार डालो ।। ९ ।।

सूक्त (३०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—दर्भमणि । छन्द—अनुष्टुप्)

यत् ते दर्भ जरामृत्युः शत वर्मसु वर्म ते ।
तेनेमं वर्मिण कृत्वा सपत्नाञ्जाह वीर्यै ।। १ ।।
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्र वीर्याणि ते ।
तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदु ।। २ ।।
त्वामाहुर्देव वर्म त्वा दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् ।
त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि । ३ ।।
सपत्नक्षयण दर्भ द्विषतस्तपन हृदः ।
मणि क्षत्रस्य वर्धन तनूपान कृणोमि ते ।। ४ ।।
यत् समुद्रो अभ्यक्रन्दत् पर्जन्यो विद्युता सह ।
ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ।। ५ ।।

हे दर्भमणे ! तेरी गाँठो मे अपरिमित जरामृत्यु व्याप्त हैं और जरा मृत्यु का नाशक तेरा कवच है उससे रक्षा और विजय की अभिलाषा से युक्त शत्रु को उपद्रव सहित नष्ट कर डालो ।। १ ।।

हे दर्भ ! तेरे पास पीड़ा पहुँचाने वाली सैकडो गाठे हैं और उन पीडाओ को दूर करने की शक्ति तेरे में विद्यमान हैं । तुम कवच को इस राजा के लिए देवो ने जरा-नाशन रूप मे प्रदान किया है । अत तुम इसकी वृद्धावस्था को दूर करो और पुष्टता प्रदान करो ।। २ ।।

हे दर्भमणे ! तुम देव रक्षक कवच हो । तुम ब्रह्मणस्पति

और इन्द्र रक्षक भी हो। अत तुम इस राजा के राज्यो की रक्षा कार्य कर ॥ ३ ॥

हे दर्भ! तुम शत्रु नाशक द्वेषी सतप्त करण और जल वृद्धिकारक हो। मैं तुम्हे शरीर रक्षा के निमित्त धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

जिस मेघ से जल बरसता है, उसमे विद्युत द्वारा उत्पन्न गडगडाहट से हिरण्यमय जल की बूंदे उत्पन्न हुईं। इसी बूँद से दर्भ की उत्पत्ति हुई है ॥ ५ ॥

सूक्त (३१)

(ऋषि—सविता (पुष्टिकाम)। देवता – औदुम्बरमणिः। छन्दः—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, पक्ति, शक्वरी)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टकामाय वेधसा ।
पशूनां सर्वेषा स्फाति गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्य· पशूनामधिपा असत् ।
औदुम्बरो वृषा मणि. स मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥
करीषिर्णी फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे ।
औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः ।
गृह्णे ह त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् । ४ ॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पय पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पति. सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणि. प्रजया च धनेन च ।

इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥
देवो मणि सपत्नहा धनसा धनसातये ।
पशोरन्नस्य भूमान गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥
यथाग्रे त्व वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे ।
एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ६ ॥
आ मे धन सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् ।
सिनीवाल्युपा वहादय चौदुम्बरो मणि ॥ १० ॥
त्व मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्ट पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वोदुम्बरः स त्वमस्मत्-
सहस्वारादरातिममतिं क्षुध च ॥ ११ ॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बर स त्वमस्मासु धेहि रयिं च न सर्ववीर ।
नियच्छ रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अह त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स न सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च न सर्ववीरं नि
यच्छात् ॥ १४ ॥

प्राचीन समय मे ब्रह्मा ने गूलर की मणि द्वारा, पशु, पुत्र, धन, शरीर, पोषण आदि का प्रयोग किया था। मैं उससे पुष्टता के कामी तुझे पुष्ट बनाता हूँ। सविता मेरे कर मे दुपाये और चौपायो की वृद्धि करें ॥ १ ॥

गार्हपत्य अग्नि हमारे गवादि पशुओ के स्वामी और रक्षक होवें। मनोभिलाषा की पूर्ति करने वाली गूलर मणि शरीर की वृद्धि और पशुओ की पुष्टि करें ॥ २ ॥

गूलर तेज से धाता मेरे शरीर को पुष्ट करे। हमारे अन्न और गोवश वाली भूमि होवे ॥ ३ ॥

दो पाँव वाले मनुष्य चोपाये, ग्राम्य अन्न, बन अन्न, दही, दूध, गुड मधु आदि रस इन सबको गूलर मणि धारण करने वाला मैं प्राप्त करता हूँ ॥ ४ ॥

मैं मनुष्यो और पशुओ की धान्यादि से पुष्टी करूँ। पशुओ का सार रूप दूध और अन्नादि को मुझे सविता और वृहस्पति देव प्रदान करें ॥ ५ ॥

मैं पुत्रो और पशुओ से सम्पन्न बनू। गूलर मणि युक्त पुष्टिकाम्य पुरुष को पुष्ट करे। ये मणि मुझे स्वर्णादि देवें ॥६॥

इन्द्र प्रेरणा से यह मुझे इच्छित तेज सहित प्राप्त हुई। इस मणि से मुझे सन्तति पशु, धन, सुवर्ण, आदि की प्राप्ति भी हो गई है ॥ ७ ।

यह गूलर मणि पुष्टि के निमित्त निर्मित होने से देव सज्ञक है। यह शत्रु नाशक और अभीष्ट धाता है। यह गवादि धन को बढाकर धन लाभ प्रदान करें ॥ ८ ॥

हे गूलर मणे! जैसी कि तुम पुष्ट उत्पन्न हुई हो वैसी ही मुझे करो और धनादि प्रदान करो ॥ ९ ॥

सरस्वती सीनीवाली और यह औदुम्बर, मणि मुझे सुवर्ण रूप यश ब्रीह्वि, यव आदि औषधि और अन्न को प्रदान करें ॥ १० ॥

हे मणे! तुम अभीष्ट दाता हो। प्रजापति ने तुम्हे समस्त पदार्थों से पुष्ट बनाया है। तेरे प्रभाव से मुझे नाना प्रकार के धन मिले। हे गूलर मणे! तुम दुर्गति और अन्न की कमी को हमसे दूर रख ॥ ११ ॥

हे गूलर मणे! तुम ग्रामीण नेतावत मणियो मे श्रेष्ठ हो। तू अभीष्ट दाता और वर्च से समान्त है। अतः मुझे वच प्रदान कर। तेजमयी होने से मुझे भी तेज युक्त कर॥ १२॥

हे मणे! तुम पुष्टिदाता हो अत मुझे पुष्ट करो। गृह मेधी होने स मुझे घर का स्वामी बना। तेरे ग्रामीणत्व और वर्च गुणो को मुझ प्रदान कर। पुत्रादि प्रसन्न करने के धन को भी मुझ प्रदान कर॥ १३॥

हे मणे! धन पुष्टि के लिए मैं तुमको धारण करता हूँ। शत्रुनाशक यह मणि शत्रु को नाश करे। यह पुत्रादि सहित धन देकर हमको मधुमयी बनावे॥ १४॥

सूक्त (३२)

(ऋषि—भृगु (आयुष्काम.)। देवता—दर्भ। छन्द—अनुष्टुप, बृहती, त्रिष्टुप्, जगती)

शतकाण्डो दुश्च्यवन सहस्रपर्ण उत्तिरः।
दर्भो य उग्र ओषधिस्त ते बध्नाम्यायुषे॥ १॥
नास्य केशान प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते।
यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति॥ २॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठित.।
त्वया सहस्रकाण्डेनायु प्र वर्धयामहे॥ ३॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत तिस्र इमा. पृथिवीरुत।
त्वयाह दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचासि॥ ४॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्।
उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि॥ ५॥
सहस्व नो अभिमाति सहस्व पृतनायतः।
सहस्व सर्वान् दुर्हार्द सुहार्दो मे बहून् कृधि॥ ६॥

दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित् ।
तेनाहं शश्वतो जनां असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥
यो जायमानः पृथिवीमदृंहद् यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो
दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः
पृतन्यतः ॥ १० ॥

हे मृत्यु के डर युक्त पुरुष ! जो दर्भ अपरिमित गाठो के युक्त है । सहस्त्रो वण सम्पन्न प्रचण्ड वीय दायक औषधि को तुम्हारी आयु वृद्धि के लिए बाँधता हूँ ॥ १ ॥

प्रयोगी पुरुष जिस भयभीत मनुष्य के इस मणि को बाँधता है, यमदूत उसके केशो को नही उखाडते और न हृदय को विदीर्ण करते हैं ॥ २ ॥

हे सहस्य काण्डी औषधे ! तुम पृथ्वी पर पूर्ण रूप से विद्यमान हो । तेरा अग्रभाग स्वर्ण हो । तुम आकाश पृथ्वी पर व्याप्त इस पुरुष को आयुष्मान करो ॥ ३ ॥

हे औषधे ! तुम त्रिवृत्त आकाश और त्रिगुण सम्पन्न पृथ्वी को व्याप्त कर रही हो । तेरे द्वारा मैं मलिन हृदयी पुरुष और शत्रु की वाणी दोनो को रोकने का कार्य सम्पन्न करता हूँ ॥ ४ ॥

हे औषधे ! तुम शत्रु विजयी हो, मैं भी शत्रु को मारने मे समर्थ हूँ । अतः हम दोनो ही शत्रु-नाशक समान मति युक्त है ॥ ६ ॥

हे औषधे ! सेना एकत्रित कर मुझे वश मे करने वाले शत्रुओ को मेरे वश मे कर और मित्रो को बढाओ ॥ ६ ॥

स्तम्भ रूप आकाश और देवताओ के समीप उत्पन्न दर्भ द्वारा मैं दीर्घायु पुत्रो से सम्पन्न होऊँ ॥ ७ ॥

हे दर्भ ! तेरे धारण करने वाला मैं (ब्राह्मण) क्षत्रिय के लिए प्रिय बनूं । आर्य पुरुष, शुद्ध और जिसके हम प्रिय बनने चाहे उसका ही हमे प्रिय बनाओ ॥ ८ ॥

उत्पन्न होते ही जिस दर्भ ने पृथ्वी को स्थिर किया, जिसने अन्तरिक्ष और स्वर्ग को भी स्तम्भित किया, जिसके धारण करने वाला निष्पाप हो जाता है ऐसा यह दर्भ हमे प्रकाश से सम्पन्न करे ॥ ९ ॥

यह दर्भ अन्य औषधियो मे श्रेष्ठ हैं । यह सभी पर समानत्व की अभिलाषा युक्त है । यह चारो दिशाओ मे हमारा रक्षक हो । मैं इसके तेज से सैन्य शक्ति युक्त शत्रु को वश में करने मे समर्थ होऊँ । १० ॥

सूक्त (३३)

(ऋषि—भृगु । देवता—दर्भ । छन्द जगती, त्रिष्टुप, पंक्ति)

सहस्रार्घं शतकाण्ड पयस्वानपामग्निर्वीरुधा राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भ परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा स सृजाति न. ॥ १ ॥

घृतोदुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान् भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णु. ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन् दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥

त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् त ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥
दर्भेण त्वं कृणवद् वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठा ।
अतिष्ठाया वचसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्र ॥ ५ ॥

यह प्रसिद्ध मणी जलो मे अग्नि रूप, अनेकानेक काण्डो से युक्त, और बल से सम्पन्न है। हमारी रक्षा करती हुई यह हमे दीर्घजीवी बनावे ॥ १ ॥

होम से बचे हुए घी मे व्याप्त, मधुर, विनाश रहित, अपनी जड से पृथ्वी को स्थिर करने मे सम्पन्न दर्भमणे ! तूम शत्रु को भगाकार निर्बल बना। अन्य औषधियो को बल सम्पन्न कर मेरी भुजाओ पर आरोहण करो ॥ २ ॥

हे मणी रूपे दर्भ ! तुम अहिंसक वेदी मे विराजमान सुंदर और पवित्र हो। ऋषि तुझे शुद्धि के निमित्त धारण करते है अत हमें भी पाप रहित कर ॥ ३ ॥

अन्य मणियो मे श्रेष्ठ, असुर नाशक, शत्रु विजयी सर्व ज्ञाता, देवो का बल, रूप यह दर्भ प्रयोगी का रक्षक बन कर कार्य करता है ॥ ४ ॥

हे पुरुष ! तुम दर्भ मणी के प्रभाव से शत्रु विजयी कर्म कर। तुम सूर्य के समान सभी को वश मे करोगे और चारो तरफ यशस्वी बनोगे ॥ ५ ॥

सूक्त ३४ (पाँचवां अनुवाक)

(ऋषि—अङ्गिरा । देवता—जङ्गिडो वनस्पति । छन्द—अनुष्टुप्)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः ।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिड ॥ १ ॥

या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसोऽरसाञ्जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥

अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः ।
अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥

कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः ।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः ।
विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥

त्रिष्ट्वा देवा अजनयन् निष्ठितं भूम्यामधि ।
तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥

न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः ।
विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गल ॥ ७ ॥

अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य ।
पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥

उग्र इत् ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ ।
अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥

आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् ।
तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥

जङ्गिड औषधि से बने मणे ! तुम कृत्याओ और कृत्य कर्मों की भी भक्षक हो । तुम निडर बनाने वाली हो अत मनुष्यो और पशुओ की रक्षा करो ॥ १ ॥

पुतलियो की निर्माता और तिरेपन प्रकार की गृहिका कृत्यायें हैं उनके यह जंगिड निर्वीर्य करें ॥ २ ॥

हमारे कानो और सिर आदि स्थानो मे उत्पन्न कृत्रिम ध्वनि इसके प्रभाव से नष्ट होवे। नासिका छिद्र, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र, और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्ति को पावें। हे मणे! तुम धारण कर्ता की दरिद्रता और पापो को वाण मारने के समान नष्ट कर दें॥ ३॥

यह मणि शत्रु नाशक है। दूसरो के कृत्यो का नाशक है। यह बल युक्त मणि कृत्या आदि को दूर करती भई हमारे आयुष्मान करें॥ ४॥

यह मणि महावन रोगी नाशनी है। यह विस्कन्ध रोग नाशक है। इसके प्रभाव से हमारे सभी उपद्रव दूर होवें। ५।

हे जंगिड मणे! तुमको देवो ने तीन बार प्रयत्न कर प्राप्त किया। महर्षि-अंगिरा और प्राचीन ऋषि इसको जानते थे॥ ६॥

हे जंगिड तुम सभी मे शक्तिशाली हो। प्राचीन और नवीन औषधि तेरे समान उत्तम नही हो सकती। क्यो कि तुम अमित बली, रोग और शत्रु-नाशक तथा धारण करने वाली की रक्षा करती हो॥ ७॥

हे जंगिड! तुमको कृत्यादि के शमनार्थ प्राप्त किया जाता है। तुम अत्यधिक सामर्थ्यवान हो। इन्द्र ने तुम्हे अत्यधिक बलवान बनाया॥ ८॥

हे जंगिड! इन्द्र ने तेरे को बल दिया है अतः तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। इसी से तुम साध्य और असाध्य का ध्यान न कर समस्त रोगो और उनके कारणो को नष्ट करने वाले हो॥ ९॥

आशरीक, विशरीक, बलाज, पृष्ठय, तक्मा, विश्व-शारद आदि रोगो को यह मणि निरुन्माद करने मे समर्थ है ॥ १० ॥

सूक्त (३५)

(ऋषि—अङ्गिरा. । देवता—जङ्गिडो वनस्पति. । छन्द—अनुष्टुप, पंक्ति, त्रिष्टुप)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषियो जङ्गिडं ददु' ।
देवा य चक्रर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ।। १ ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव ।
देवा य चक्रुर्ब्राह्मणः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

दुर्हार्द संघोर चक्षु' पापकृत्वानमागमम् ।
तां'स्त्व सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिड ॥ ३ ।

परि मा नाः दिव परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्य ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिड पात्वस्मान् ।। ४ ॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्य ।
सर्वास्तान विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

परम वीर्य अभिलाषी अंगिरा आदि महर्षियो द्वारा इन्द्र का स्मरण करने पर, इन्द्र से जंगिड नामक वृक्ष की यह मणि प्राप्त की थी। इन्द्रादि देवो ने इसे विस्कन्ध रोग नाशक बतलाया है। अत यह हमारी रक्षा करें । १ ।

राजा के कोषाध्यक्ष के धन के रक्षक के समान हमारी

हमारे कानो और सिर आदि स्थानो मे उत्पन्न कृत्रिम ध्वनि इसके प्रभाव से नष्ट होवे। नासिका छिद्र, नेत्र गोलक, कर्ण छिद्र, और मुख छिद्र भी अभिचार कर्म के अनिष्ट से मुक्ति को पावें। हे मणे ! तुम धारण कर्ता की दरिद्रता और पापो को बाण मारने के समान नष्ट कर दें ॥ ३ ॥

यह मणि शत्रु नाशक है। दूसरो के कृत्यो का नाशक है। यह बल युक्त मणि कृत्या आदि को दूर करती भई हमारे आयुष्मान करें ॥ ४ ॥

यह मणि महावन रोगी नाशनी है। यह विस्कन्ध रोग नाशक है। इसके प्रभाव से हमारे सभी उपद्रव दूर होवें। ५ ।

हे जंगिड मणे ! तुमको देवो ने तीन बार प्रयत्न कर प्राप्त किया। महर्षि अंगिरा और प्राचीन ऋषि इसको जानते थे ॥ ६ ॥

हे जंगिड तुम सभी मे शक्तिशाली हो। प्राचीन और नवीन औषधि तेरे समान उत्तम नही हो सकती। क्यो कि तुम अमित बली, रोग और शत्रु-नाशक तथा धारण करने वाली की रक्षा करती हो ॥ ७ ॥

हे जंगिड ! तुमको कृत्यादि के शमनार्थ प्राप्त किया जाता है। तुम अत्यधिक सामर्थ्यवान हो। इन्द्र ने तुम्हे अत्यधिक बलवान बनाया ॥ ८ ॥

हे जंगिड ! इन्द्र ने तेरे को बल दिया है अतः तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। इसी से तुम साध्य और असाध्य का ध्यान न कर समस्त रोगो और उनके कारणो को नष्ट करने वाले हो ॥ ९ ॥

आशरीक, विशरीक, बलाज, पृष्ठय, तक्मा, विश्व-शारद आदि रोगो को यह मणि निरुन्माद करने मे समर्थ है ॥ १० ॥

सूक्त (३५)

(ऋषि—अङ्गिरा. । देवता—जङ्गिडो वनस्पति । छन्द—अनुष्टुप, पक्ति, त्रिष्टुप)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिड ददु ।
देवा य चक्रर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥

स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालोधनेव ।
देवा य चक्रुर्ब्राह्मणः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

दुर्हार्द सघोर चक्षु पापकृत्वानमागमम् ।
तास्त्व सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिड ॥ ३ ॥

परि मा दिव परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् परि मा वीरुद्भ्य ।
परि मा भूतात् परि मोत भव्याद् दिशोदिशो जङ्गिड पात्वस्मान् ॥ ४ ॥

य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्य ।
सर्वास्तान विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

परम वीर्य अभिलाषी अंगिरा आदि महर्षियो द्वारा इन्द्र का स्मरण करने पर, इन्द्र से जंगिड नामक वृक्ष की यह मणि प्राप्त की थी। इन्द्रादि देवो ने इसे विस्कन्ध रोग नाशक बतलाया है। अत यह हमारी रक्षा करें। १।

राजा के कोषाध्यक्ष के धन के रक्षक के समान हमारी

रक्षा का कार्य करे। इस मणि को देवो और ब्राह्मण ने शत्रु नाशक बताया है। और पहनने वाले का रक्षक बताया है वह यह मणि हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

हे मणे! दुष्ट हृदय शत्रु के हृदय को चूर्ण चूर्ण कर दे। हिंसामयी पुरुषो को अपने तेज से नष्ट कर डाल ॥ ३ ॥

यह मणि आकाश, पाताल, अन्तरिक्ष से उत्पन्न भयो से मेरी रक्षा करें। वृक्षादि के विष और विभिन्न जीवो के भय तथा दिशा, प्रदिशाओ के भय से युक्ति प्रदान करें ॥ ४ ॥

देवो से बनाये गये हिंसक, मनुष्यो द्वारा कष्ट देने वाले कर्म ज्यो भी हैं सभी को जगिड मणि नष्ट कर डाले ॥ ५ ॥

सूक्त (३६)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—शतवार। छन्द—अनुष्टुप्)

शतवारो अनीनशद् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा।
आरोहन् वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातन ॥ १ ॥

शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः।
मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥

ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः।
सर्वान् दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥

शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत्
दुर्णाम्न सर्वान् हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभ शातवारो अयं मणि।
दुर्णाम्न सर्वांस्तृड्ढ्वाव रक्षांस्तक्रमीत् ॥ ५ ॥

शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्॥
शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥

यह शतवार औषधि से बनी मणि है। यह मणि अनेक रोग और राक्षसो को अपने तेज से नष्ट करने की क्षमता रखती है। यह दुर्नाम रोग को शांत करती है। यह मणि इस पुरुष के द्वारा धारण की गई इन लाभो से लाभान्वित करे ॥ १ ॥

यह अग्रभाग से राक्षसो को, मध्य भाग से समस्त रोगो और जड भाग से समस्त पिशाचियो को नष्ट करती है। इस शतवार मणि का पापी लाग उलांघ सकने की क्षमता नही रखते है ॥ २ ॥

दुसाध्य रोगो और यक्ष्मादि रोगो को यह दुर्नाम राग नाशक मणि अन्तत: नष्ट कर देती है ॥ ३ ॥

यह मणि सैकडो रोगो, उत्पातो, दुर्नाम, कुष्ठ, खाज, दद्रु आदि त्वचा रोगो को भी नष्ट करेगी। यह सकडो पुत्रो को देन वाली है ॥ ४ ॥

सर्वौषधियो से उत्तम इसका अग्रभाग सुवर्णवत चमकता है। अत. यह समस्त त्वचा सम्बन्धी रोगो को शमन करे ॥ ५ ॥

शतवार मणि से मे समस्त त्वचा रोगों को शान्त करता हूँ। अप्सरा, गन्धर्व, आदि प्राणी मनुष्यो को बलि के निमित्त अपहृत कर लेते हैं उनके कर्म को मैं इससे दूर करता हूँ। यह मणि समस्त रोग और पीडाओ को नष्ट करने वाली है ॥ ६ ॥

सूक्त (३७)

(ऋषि—अथर्वा। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पङ्क्ति, बृहती, उष्णिक्)

इद वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।

त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वा सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि
शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्ज त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा ।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः ।
धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥

अग्नि प्रदत्त वर्च तेज, ओज कीर्ति, बल और युवावस्था मुझे मिले । अग्नि देव मुझे तेतीस वीर्यों को प्रदान करे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! शत्रु नाशक वर्च को मुझे प्रदान करो । ओज, युवावस्था, बल भी प्रदान करो । हे गृहणीय पदार्थ ! इन्द्रियो तथा यज्ञ की दृढ़ता को मै तुझे धारण करता हूँ । मैं आयुष्मान होने को तुम्हे धारण करता हूँ ॥ २ ॥

हे पदार्थ ! तुमको मै अन्न, तेज, ओजस्व, शत्रु वशीकरण के लिए धारण करता हूँ । राज्य पुष्टि और शत आयु पाने को भी मै तुम्हे धारण करता हूँ ॥ ३ ॥

हे पदार्थ ! मैं तुम्हे ऋतुदेव, ऋतु, बारह महीनो संवत्सर सभी की प्रसन्नता के लिए धारण करता हूँ । धाता, विधाता तथा अन्य सब देवो की प्रसन्नता और सभी उत्पन्न पदार्थो के स्वामी के लिए धारण करता हूँ ॥ ४ ॥

सूक्त (३८)

(ऋषि—अथर्वा । देवता—गुल्गुल । छन्द—अनुष्टुप्)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते ।

य भेषजस्य गुल्गुलो सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा मृगा अश्वाइवेरते ।
यद् गुल्गुलु सैन्धवं यद् वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥
उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥

गूगल रूप औषधि की धूम लेने वाले राजा को व्याधिया तथा दूसरो का दिया शाप आदि दु ख नही पहुँचाता है ॥ १ ॥

द्रुतगामी अश्व और हरिण के भागने समान गूगल की धुआँ लेने से व्याधिया भाग जाती है ॥ २ ॥

हे गूगलो ! तुम समुद्र से प्रकट हुई हो । मैं तुम्हारे नाम को विद्यमान रोग के नष्ट करने को लेता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (३९)

(ऋषि - भृग्वङ्गिरा । देवता—कुष्ठ । छन्द - अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, अष्टि, प्रभृति)

ऐतु देवस्त्रायमाण कुष्ठो हिमवतस्परि ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥
त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः ।
नद्याय पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥
जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता ।
नद्याय पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥
उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्र श्वपदामिव ।
नद्याय पुरुषो रिषत् ।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

त्रि शाम्बुभ्यो अ गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि ।
त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्य ।
स कुष्ठो विश्वभेषज । साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य. ।। ५ ।।

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि ।
यत्रामृतस्य चक्षण तत कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषज: साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य: ।। ६ ।।

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य चक्षण तत कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषज साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मान सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य. ।। ७ ।।
यत्र नावप्रभ्रशन यत्र हिमवत शिर ।
तत्रामृतस्य चक्षण तत कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषज: साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्य: ।। ८ ।।

य त्वा वेद पूर्वं इक्ष्वाको य वा त्वा कुष्ठ काम्य: ।
य वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषज: ।। ९ ।।

शीर्षशोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायन: ।
तक्मानं विश्वधावीर्याधराञ्च परा सुव ।। १० ।।

कूट हिमवान पर्वत से हमारी रक्षा निमित्त आवें । हे कूट ! तुम इन सभी दु ख दायी रोगो को नष्ट करो । समस्त राक्षसियो को मारो ।। १ ।।

हे कूट ! तुम रहस्य युक्त हो । तुम नद्यमार, नद्यरिष और नद्य कहलाते है । तुम्हे भूल जाने पर मरण आ घेरता

है। हे त्रिनाम कूट ! मैं प्रात सांय और मध्य रोगी पुरुष निमित्त तेरा नाम लेता हूँ। हे नद्य ! मेरे द्वेपी का नाश हो॥ २॥

हे कूट ! तुम्हारे माँ-बाप रोगो को नाण करने वाले है तथा तू भी उन गुणो से युक्त है। हे नद्य ! जिस रोगी को मैं तेरा नाम दिन मे तीन वार लेता हूँ वह तेरे नाम न लेने से मृत्यु को प्राप्त होता है ॥ ३॥

हे कूट ! भार वहन करने वालो मे जैसे वृषभ श्वपदो में वाघ, श्रेष्ठ है। उसी तरह तुम औषधो ! मैं श्रेष्ठ माने जाते हो। हे नद्य कूट ! तेरे नामोच्चारण न करने से रोगी मर जाता है अत मैं तेरे नाम को तीनो समय लेता हूँ॥ ४॥

आंगिरस, शाम्बु ऋषियो तथा विश्व देवो ने इसे तीनो लोको की भलाई के निमित्त तीन-तीन बार प्रकट किया। पहिले यह सोम से सुसज्जित थी। हे कूट ! तुम समस्त रोगो को समाप्त कर॥ ५॥

भूलोक से तीसरे लोक मे देवगण रहते हैं वहाँ अश्वत्थ है। यह कूट पहले सोम के साथ था। हे कूट ! तुम समस्त रोग और यातुधानियो को समाप्त करो॥ ६॥

सुवर्णमयी नोका स्वर्ग मे घूमती है। वहाँ अमृत प्रकाश मे कूट उत्पन्न हुआ। कूट सोम साथी सब रोगो को मारने वाला है। हे कूट ! समस्त रोग और पिशाचियो को नष्ट कर॥ ७॥

जहाँ प्रतिष्ठित पुण्यात्मा जीव औधे मुख स्वर्ग मे नही गिरते, जहा हिमावान पर्वत की चोटी है, वहाँ अमृत प्रकाश में कूट पैदा हुआ। पहले यह सोम का साथी था। हे कूट समस्त रोग और यातुधानियो को समाप्त कर॥ ८॥

हे कूट ! तुमको इक्ष्वाकु राजा ने समस्त रोग नाशक जाना था। काम पुत्र और यम के मुखों के समान वसुओं ने भी तुम्हे ऐसा ही जाना। अत तुम समस्त रोगो का नष्ट करो ॥ ९ ॥

हे कूट ! तीसरा स्वर्ग है जो तेरा सिर है। तेरी उत्पत्ति का समय समस्त व्यक्तियों का नाश कर सुख प्रदान करने वाले हो। अत इस जीवन को दुख देने वाले रोगो को हमसे पराङ् मुख करो ॥ १० ॥

सूक्त (४०)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—विश्वेदेवा, बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, गायत्री)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाच सरस्वती मन्युमन्त जगाम ।
विश्वैस्तद् देवैः सह संविदान. स दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥
मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन ।
शुष्यदा यूय स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्ट यत् तपः ।
शिवा नः शं सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातर ॥ ३ ॥
या न पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥

मेरे मनोव्यापार की त्रुटि को सरस्वती देवी पूर्ण करे। सम्पूर्ण देवो सहित बृहस्पति देव भी उसे पूर्ण करे ॥ १ ॥

हे जलो ! तुम वेदाध्यन से युक्त हमारी बुद्धि को भ्रष्ट मत करो। मेरे शुष्क हुए कर्म को आद्रता प्रदान करो। मैं सुन्दर मति मय हुआ ब्रह्मचर्य को धारण करूं ॥ २ ॥

हे द्यावा पृथ्वी ! तुम भी हमारी बुद्धि को भ्रष्ट मत करो

और न दीक्षा और तप को हो। जल हमे आयुष्मान कर। ससार की पालन पोषणता से युक्त जल हमें माहन्नत मगलता प्रदान करें ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय! हमे बाधा युक्त अन्धकार को निस्कृत करने वाली रात्री को हमे प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (४१)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—तपः। छन्द—त्रिष्टुप्)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥

अथ द्रष्टा महर्षियो ने कल्याणकामी स्वर्ग को सृष्टि के आदि मे पाया। उसके साधन ब्रतादि से युक्त तथा दण्डादि धारण से साध्य दीक्षा को किया। उसी शक्ति से राष्ट्र बल और ओज की उत्पति हुई। इस सभी को देवगण इस पुरुष के लिए देवें ॥ १ ॥

सूक्त (४२)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्म। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति., त्रिष्टुप्, जगती)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृत ।
शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥
अंहोमुचं प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इमामिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥

अंहोमुचं वृषभ यज्ञियाना विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपा नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं
दत्तमोजः ॥ ४ ॥

ब्रह्म ही होता, बल ही यज्ञ, ब्रह्म से ही स्वरो की यज्ञानुवेष्ठता आदि है। ब्रह्म से ही अध्वर्यु उत्पन्न हुए और ब्रह्म मे ही हवियां अवस्थित हुई हैं ॥ १ ॥

घृत युक्त स्मुच भी ब्रह्म है, वेदी भी ब्रह्म से निर्मित है। यज्ञ ब्रह्म है। और हवि कर्ता ऋत्विज भी ब्रह्म ही है ॥ २ ॥

परम कल्याण दायी और पापमुन्तक जो है, वो इन्द्र है। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। हे इन्द्र! यजमान की आयु आदि की कामना सत्य होवे और इस हवि को स्वीकार करो ॥ ३ ॥

इन्द्र यज्ञ-भागी देवो में श्रेष्ठ है अत मैं उनका आह्वान करता हूँ। जलो के स्त्रष्टा अग्नि का और अश्विद्वय को भी मैं बुलाता हूँ। हे अश्विद्वय तुमको इन्द्र की शक्ति से इन्द्रियां और बल के देने वाले होवे ॥ ४ ॥

सूक्त (४३)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—अन्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्दः—पंक्ति.)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे ।
अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायु प्राणान् दधातु मे ।
वायवे स्वाहा ॥ २ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षु सूर्यो दधातु मे ।
सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे ।
चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे ।
सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे ।
इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
आपो मा तत्र नयन्त्वमृत मोप तिष्ठनु अद्भ्य स्वाहा ॥ ७ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ।
ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥

ब्रह्म ज्ञानी दीक्षा और तप से जिस स्थान पर पहुँचते है उस स्थान पर मुझे अग्नि देव ले जांय । अग्नि मुझे स्वग प्राप्ति की बुद्धि प्रदान करे ॥ १ ॥

ब्रह्म ज्ञानी तप और ज्ञान से जिस स्थान को ग्रहण करते हैं, वायु देव वही ले जाय । वायु मेरे मे प्राण पान आदि पाचो वायु स्थापित करें ॥ २ ।

ब्रह्म ज्ञानी तप और दीक्षा से जिस स्थान को प्राप्त करते हैं उसी स्थान पर सूर्य देव मुझे चक्षु प्रदान करें । मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ३ ॥

तपोधन और कर्मवान ब्रह्म ज्ञानी जिस स्थान को ग्रहण करते है। चन्द्र देव मुझे भी उस स्थान पर पहुँचावें और मन प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ। ४।

तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिस स्थान को प्राप्त करते हैं सोम देव भी मुझे उसी स्थान पर पहुँचावे और दूध रस से सम्पन्न करें। मैं उन्हे स्वाहुत करता हूँ ॥ ५ ॥

तपोधन और कर्मवान ब्रह्मज्ञानी जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, इन्द्र मुझे भी उस स्थान को प्रदान करे और बल भी प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ६ ॥

तपोधन ब्राह्मण और कर्मवान ब्रह्महोता पुरुष जिस स्थान मे जाते हैं वही स्थान मुझे जलाभिमानी देव द्वारा दिया जावे और जल मुझे अमृतत्व प्रदान करें। मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ७ ॥

तप और कर्म से ब्रह्मज्ञाता जिस स्थान को प्राप्त होते हैं, ब्रह्मा भी मुझे उस स्थान पर पहुँचावे और ब्रह्म ज्ञान प्रदान करें मैं उनको स्वाहुत करता हूँ ॥ ८ ॥

सूक्त (४४)

(ऋषि—भृगु । देवता—आजनम्, वरुण । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री

आयुषोऽसि प्रतरण विप्रं भेषजमच्यसे ।
तदाञ्जन त्वं तातें शमापो अभयं कृतम् । १ ।
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः ।
सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाजनम् ॥ २ ॥
आंजन पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम् ।
कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥

प्राण प्राण त्रायस्वासो असवे मृड ।
निर्ऋते निर्ऋत्या न पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम् ।
वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥
देवाञ्जन त्रैककुद परि मा पाहि विश्वतः ।
न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
वीदं मध्यमवासृपद् रक्षोहामीवचातनः ।
अमीवाः सर्वाश्चातयन् नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥
बह्विदं राजन् वरुणानृतमाह पूरुषः ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम ।
तस्मात् सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन ।
तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥

हे आञ्जन ! तू शत वर्षा आयु देने वाला है। चिकित्सकों के अनुसार तुम्हें शुद्ध ब्राह्मण वत् मंगलरूप हो। हे आंजन ! तुम जल देव युक्त हमें सुख प्रदान करो ॥ १ ॥

पांडु रोग शरीर को हरा करने वाले अत्यधिक दुःख दायी है। आंजन धारण करने वाले पुरुष को सभी रोग इससे शान्त होवें ॥ २ ॥

यह आंजनमणी कल्याणदायी और जीवन दायी है। यह मुझे मृत्यु से बचावें ॥ ३ ॥

हे प्राण रूप आंजन ! मेरे प्राण काल के ग्रास न बनें। तुम उसे यम के चक्कर से मुक्त कराओ। तुम सागर गर्भ और विद्युत पुष्प माने जाते हो। तुम वात रूप प्राण ! सूर्य रूप

नेत्र हो। त्रिककुट पर्वत से उत्पन्न तुम मेरी रक्षा करो। अन्यत्र उगी हुई ओषधि तेरी समानता नहीं कर पाती है। रोग नाशक यह आंजन पर्वत के नीचे जाकर हर पदार्थ मे व्याप्त होने मे समर्थ है। समस्त रोग नाशक है ॥ ४-७ ॥

हे वरुण ! प्रात समय तक सोने मे बहुत से मिथ्याभाषण के अपराधी इसको क्षमा करो। हे ओषधे ! तुम मिथ्याभाषण के पाप से हमे मुक्त कर ॥ ८ ॥

हे जनो ! हे गोओ ! जो कुछ हमने कहा हम उसके साक्षी हैं। हे वरुण ! तुम ज्ञाता हो हे मेरुकुट पर्वतोत्पन्न आंजन ! हमे समस्त पापों से मुक्त करो ॥ ९ ॥

हे आंजन ! मित्रावरुण स्वर्ग से पृथ्वी पर आये और लौट गये। उन्होने तुम्हे फिर लौटकर आने की अनुज्ञा प्रदान की ॥ १० ॥

सूक्त (४५)

(ऋषि--भृगु । देवता--आञ्जनम् अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता । छन्द--अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती)

ऋणादृणमिव सनयन् कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् ।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्ठीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ।
अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥
चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥

आक्ष्वैक मणि मेक कृणुध्व स्नाह्योकेना पिबकमेषाम् ।
चतुर्वीर नैऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्य
पारपात्वम्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणाय'पानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये ।, ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे
स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ १० ॥

जैसे ऋणी पुरुष ऋण को ऋण दाता को ही लौटाता है उसी प्रकार पीडा देने वाले कर्मों को हे सूर्य चक्षु रूप आंजन ! तुम भेजने वाले के पास पहुँचाओ ॥ १ ॥

हमारे और गाओ के दुस्वान के भय को हमारा शत्रु अनजान मे आभूषणो के समान धारण करे ॥ २ ॥

यह आंजन ओज का बढाने वाला, चारो दिशाओ मे कुण्ठित न होने वाला, जलो का रस रूप अग्नि के समीप प्रकट होता है यह पुष्ट और समस्त ससार के सुखो को देने वाला है । ३ ॥

हे रक्षा काम्य पुरुष ! चारो दिशाओ मे यह आंजन रूप मणि वीर्य रूप है । तुम्हारे बांधने से तुम भय रहित, सूर्यवत तेजस्वी हो । प्रजा तुम्हे स्वर्ण, मणि, रत्न आदि वस्तुओ को देवें ॥ ४ ॥

हे पुरुष ! तुम एक आंजन को मणि बना, एक को आंज और एक से स्नान कर। यह चतुर्वीर है। यह आंजन सर्वौषधि रक्षक है ॥ ५ ॥

अग्नि देव समस्त गुण युक्त मेरी रक्षा करें। प्राणापान, आयुवर्च, ओज, तेज, कल्याण और अपत्य के निमित्त मेरे रक्षक होवें ॥ ६ ॥

इन्द्र प्राणापान, आयु, वर्च, ओज, तेज कल्याण और सुभूति की प्राप्ति के लिए ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय को बलवती कर मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

संसार को तृप्त करने वाले सोम मेरी रक्षा करें। प्राण, अपान, आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के निमित्त मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥

ऐश्वर्य युक्त गुणो द्वारा वे मेरी रक्षा करें। वे प्राण, अपान आयु, वर्च, ओज, तेज, मंगल, सुभूति के निमित्त मेरे रक्षक होवे ॥ ९ ॥

मरुद्गण प्राण, आयु, वर्च ओज, तेज, मंगल, सुभूति के हेतु मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥

सूक्त ४६ (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—प्रजापति । देवता—अस्तृतमणि । छन्द—त्रिष्टुप्, प्रभृति)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात् प्रथममस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय ।
चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन् पणयो यातुधानाः ।

इन्द्रइव दस्यूनव धूनुष्व पृयन्थतः सर्वाञ्छत्रून् वि
षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥

शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे ।
तस्मिन्निन्द्र पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि
रक्षतु ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो
बभूव ।
पुनस्त्वा देवा प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥

अस्मिन् मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते ।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान् यस्त्वा पृतन्यादधरः
सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥

घृतादुल्लुप्तो मधुमान् पयस्वान्त्सहस्रप्राणः
शतयोनिर्वयोधाः ।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि
रक्षतु ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद् वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि
रक्षतु ॥ ७ ॥

हे मणे! तुम अबाधित शत्रुओं को वश में करने योग्य हो। सृष्टि के आदि में विधाता ने तुमको धारण किया था हे पुरुष! ऐसी मणि को तेरे बांधता हूँ। आयु, बल, तेज और ओज की प्राप्ति में तेरी यह रक्षा करे॥ १॥

हे अस्तृत मणे! तुम इस पुरुष की रक्षा करो। मणि जातीय सुर तेरी शक्ति को कम न कर पावे। हे पुरुष! इन्द्र के समान इन शत्रुओं को औंधा गिरा। युद्ध रत सैन्य बल को

वश मे करो। यह मणि इन कार्यों मे तेरी रक्षा का कार्य करें ॥ २ ॥

अनन्त प्रहारी शत्रु भी इसका भेद न पावे। यह अमृत नाम युक्त है। इन्द्र के द्वारा इसमे चक्षु प्राण, बल आदि की स्थापना की गई है। अत. बल युक्त यह मणि तेरी रक्षा काय करें ॥ ३ ॥

हे मणे ! स्वर्गस्थ स्वामी के कवच से हम तुझे आच्छादित करते है। सभी देव भी तुम्हे आच्छादित करें। इस प्रकार होने पर तुम इस धारण कर्ता की पूर्णत रक्षा करो ॥ ४ ॥

एक सौ एक वीर्यों से यह मणि युक्त है। सभी देवो के ग्रहण करने से यह सर्व शक्तिमान है। हे पुरुष। तुम इसको धारण कर व्याघ्र के समान बनो और शत्रु सैन्य को शक्तिहीन कर। यह मणि तेरी रक्षा करेगी ॥ ५ ॥

सर्वदेवो की कृपा से सर्वशक्तिमान, घृत से सीचित, इन्द्र कवचछादित यह मणि शत्रु भगाने मे समर्थ है। हे पुरुष ! यह धारण कर्ता को शरीर सुख, अन्न, पुत्र, पशु आदि से सम्पन्न करती है। यह तेरी रक्षक होवे। हे पुरुष ! तुम सर्वोत्तम बनो, निशत्रु होवे, शत्रु को मारकर भगाने मे समथ बनो, धन और कर्म मे श्रेष्ठता धारण करो। सविता देव तुझे ऐसा बनावें। यह प्रस्तृत मणि भले प्रकार से तेरी रक्षा का कार्य करें ॥ ७ ॥

सूक्त (४७)

(ऋषि—गोपथ । देवता—रात्रि । छन्द—बृहती, जगती, अनुष्टुप्)

आ रात्रि पार्थिव रज पितुरप्रायि धामभि. ।
दिव सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेष वर्तते तमः ॥ १ ॥

न यस्या पार ददृशे न योयुवद् विश्वमस्यां
निविशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि
भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥
ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव ।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि ।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः ।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥
रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत ।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥
माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः ।
परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि ।
गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥ ९ ॥

हे रात्रि तेरा अन्धकार समस्त पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष मे व्याप्त हो गया है। नीले रग का अन्धकार ही चारो ओर छा गया है ॥ १ ॥

जिस रात्रि मे समस्त ससार एक सा दिखाई देता है, चेष्टा युक्त प्राणी चलने मे असमर्थ होते हैं। हे प्रभूत तममयी रात्रि ! हम सब अहिंसित रहते हुए तुमको पार करे ॥ २ ॥

हे रात्रि ! मनुष्य फल द्रष्टा जो तुम्हारे निन्य नवे गण हैतथा अठ्ठासी और सतत्तर गणहैं उन सभो से युक्त तुम हमारे रक्षक बनो ॥ ३ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारे छियासठ, पचपन और चवालीस, गण हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

हे रात्रि ! तुम अपने बाईस व ग्यारह गणो सहित हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

मारने की धमकी युक्त कोई शत्रु मेरे पास न आवे, कोई मेरे को दुर्वचन कहे, चोर भी हमारी गायो को न चोर सकें, भेडिया हमारी भेडो को न ले पावे। हे रात्रि ! ऐसा कार्य करो ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! हमारे घोडे को तश्कर न चुरा सके। राक्षसियाँ और पिशाचगण मनुष्य को न मारे। चोर अन्य मार्गी होवे। सर्पिणी और हिंसात्मक मनुष्य भी अन्य मार्गगामी बने ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! पीडा पहुँचाने वाले सर्प को मस्तक रहित करो। भेडिया की ठोडी को नष्ट कर दो जिससे मर जाय ॥ ८ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारी रक्षा बल पर ही हम रह रहे हैं। तथा उसी से निद्रा आती है। तुम हमारी गौ, सन्तानादि की रक्षा करते हुए हमारी रक्षक बनो ॥ ९ ॥

सूक्त (४८)

(ऋषि—गोपथः । देवता—रात्रिः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् पक्ति)

अथा यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि ।

तानि ते परि दद्मसि ।। १ ।।
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि ।
उषा नो अह्ने प र ददात्वहस्तुभ्य विभावरि ।। २ ।।
यत् किं चेद पतयति यत् किं चेद सरीसृपम् ।
यत् किं च पर्वतायासत्व तस्मात् त्वं रात्रि पाहि न ।। ३ ।।
सा पश्चात् पाहि सा पुर सोत्तरादधरादुत ।
गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ।। ४ ।।
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति य च भूतेषु जाग्रति ।
पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ।
ते न पशुषु जागृति ।। ५ ।।
वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
ता त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ।। ६ ।।

खुले हुये चारागाह की वस्तुयें घर की वस्तुये उन सभी को हे रात्रि ! तुमको हम सुपर्द कराते है ।। १ ।।

हे रात्रि ! तुम मातृवत रक्षक हो, अपने बाद के उषा काल को हमारी रक्षार्थ देवो ! उषाकाल के बाद होने वाले दिन को सुख पूर्वक दो । फिर हम उसे तुम्हे लौटा दगे ।। २ ।।

आकाशगामी पक्षी और पृथ्वी पर रेंगने वाले सर्प आदि, पर्वत और बनो मे घूमने वाले हिंसक आदि पशुओ से हे रात्रि ! हमारी रक्षा करो ।। ३ ।।

हे रात्रि ! हमारे चारो तरफ सोने बैठने वाले स्थानो को सुरक्षित करो हम तुम्हारा यशोगान करते है ।। ४ ।।

रात्रि मे अनुष्ठान करने वाले, चोरी आदि कर्मों से सावधान रहने वाले, वे पशुओ और मनुष्यो की रक्षा निमित्त ही जागते है ।। ५ ।।

हे रात्रि ! भारद्वाज ऋषि ने तुम्हे घृताची बताया था। ऐसी हे रात्रि ! हमारे पशु आदि की रक्षार्थ सचेत रहना ॥ ६ ॥

सूक्त (४६)

(ऋषि- गोपथ भारद्वाजश्च। देवता—रात्रि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, जगती)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितर्भगस्य ।
अश्वक्षभा सुहवा सम्भृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥

अति विश्वान्यरुहद् गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती रात्र्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्रइव स्वधाभिः ॥ २ ॥

वर्ये वन्दे सुभगे सुजात आजगन् रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मा स्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि
पुष्ट्या ॥ ३ ॥

सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे
विभाती ॥ ४ ॥

शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु
दिक्षु ॥ ५ ॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥

शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत् पुनर्न
विद्यते ॥ ७ ॥

भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।

चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्व दिव्या न
क्षाममुक्था ॥ ८ ॥
या अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपु ।
रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवा प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् ।
यो मलिम्लुरुपायति स सपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥

एक अवस्था युक्त सर्व पूज्य, चक्ष तिरस्क्रणीय, आह्वा-नीय रात्रि विश्व मे व्याप्त होने से एकाकार वाली मालूम देती है द्यावा पृथ्वी उसकी महिमा से युक्त है ॥ ॥

सर्वत्रमयी इस पृथ्वी को सभी स्तुति करते है। यह सब जगह व्याप्त है। यजमान आदि के दान के प्रभाव से जैसे सूर्य जगत पर चढते है वैसे ही यह चढ बैठती है ॥ २ ॥

हे सुन्दर जन्म युक्त सौभाग्ययुक्त रात्रि ! तू आ गई है। मैं प्रसन्न हूँ। तुम भी प्रसन्न होकर, पशु, पुत्रादि और मनुष्यो की रक्षा करो ॥ ३ ॥

यह रात्रि सिंह, हाथी, गैडा, आदि के बल को क्षीण करती है। प्राणी की आह्वान शक्ति को भी खीच लेती है। हे रात्रि ! तुम दीप्तमान होकर अपने रूप को प्रकट करती हो ॥ ४ ॥

हे रात्रि तुम मगल युक्त हो। रात्रि मरण सूर्य की भी स्तुति करता हूँ। हे रात्रि ! मेरी स्तुति को ठीक प्रकार से सुनो। तुम सर्वत्र व्याप्त हो अत हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे विभावरि ! जैसे प्रशसको की स्तुति को राजा प्रसन्न चित से सुनता है वैसे ही तुम अपने यशोगान को प्रसन्न चित्त से सुनो ॥ ६ ॥

तुम्हारे स्तोत्रो के श्रवण कर लेने पर हम पुत्र पौत्रादि से युक्त हुए उषाकाल को प्राप्त करें ।। ७ ।।

हे रात्रि ! तुम शत्रु शमन करने वाली हो। धन को हरण कर्ताओं को सम्प्राप्त करो, नष्ट करो और वे कभी भी प्रकट न हो सकें। इस प्रकार तुम मंगलमयी होकर आओ ।। ८ ।।

हे रात्रि ! तुम सर्वत्र व्याप्त हो। घोर अन्धकार से सम्पन्न धेनु रूप और चमस के समान मंगलकारी हो। तुम दर्शन इन्द्रिय देती हुई आओ। जैसे दिव्य शरीर को नहीं छोड़ता वैसे हमारे शरीरो को पृथ्वी पर न छोड ।। ९ ।।

पांव हाथ से हीन होता हुआ वह शत्रु अत्यधिक निद्रा को प्राप्त होवे तथा शुष्क वृक्ष के नीचे स्थान ग्रहण करें ।। १० ।।

सूक्त (५०)

(ऋषि—गोपथः। देवता—रात्रि। छन्द—अनुष्टुप्)

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु ।
अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ।। १ ।।
ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णश्रृङ्गाः स्वाशवः ।
तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ।। २ ।।
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ।
गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ।। ३ ।।
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान् नानुविद्यते ।
एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ।। ४ ।।
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् ।
अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ।। ५ ।।
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु ।

यद्वेनदस्मान् भोजय तथेऽन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
उपसे न परि देहि सर्वान् रात्र्यनागम ।
उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्य विभावरि ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! धूम रूप श्वास जो सप का कष्टदायक है उसे सिर-रहित करो। शृगाल को नेत्रहीन करके वृक्ष के स्थान पर मार डाला। १ ॥

हे रात्रि ! तुम्हारे तीक्ष्ण शृंग वाले बैल तीव्र गति युक्त होवे। उनमे तुम अजीत अनर्थों को जीत ॥ २ ॥

हम पुत्र पौत्रादि युक्त रात्रि को आनन्द पूवक बितायें परन्तु शत्रु नही बिता सक। हे रात्रि ! तुम्हारा रक्षा रूपी नाव से रहित हमारे शत्रु मार्ग मे ही नष्ट हो जांय ॥ ३ ॥

हे रात्रि ! हमारे बुरे विचार करने वाला जो शत्रु आ रहा है उसे शाम्याक के समान पृथ्वी पर गिरा दो ॥ ४ ॥

वस्त्रापहारक, गो और अश्वादि को परिहारक क हे रात्रि ! समाप्त करो। ५।

हे सुभगे! हे रात्रि ! जिस सुवर्ण आदि धन को शत्रु हममे प्राप्त करना चाहे और जिस माग से लेना चाहे उसी माग से हमारे धनो को हमारे पास पहुँचाओ ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! तुम उषाकाल सूर्योदय तक हमारी रक्षा करे वह दिन सुख पूर्वक तुम्हे प्राप्त कराव। इस प्रकार दिन रात्रि हमको धन आदि से सम्पन्न कर शत्रु रहित करें ॥ ७ ॥

सूक्त (५१)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—आत्मा, सविता। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुत मे चक्षुरयुत मे श्रोत्रमयुतो मे

प्राणोऽमृतो मेऽपानोऽमृतो मे व्यानोऽमृतोऽहं सर्व ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥

मैं कर्मानुष्ठान की इच्छा से सम्पन्न हूँ। मेरा शरीर नेत्र, श्रोत्र, नासिका, प्राण, अपान व्यान सभी अंग पूर्ण और सम्पन्नता युक्त है अर्थात् मैं सर्वेन्द्रिय सम्पन्न हूँ ॥ १ ॥

हे कर्म सविता देव की प्रेरणा से, अश्विनी कुमारो की भुजाओ से, और हाथो से तुझे प्रारम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

सूक्त (५२)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता - काम । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥
त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये ।
आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन् हृदयाद्धृदयं परि ।
यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥

सृष्टि के पूर्व परमात्मा के मन भली प्रकार से काम व्याप्त हो गया। हे काम ! तुम प्रथम उत्पन्न हुए परमात्मा के समान हो तुम हविदाता को धन सम्पन्न कर ॥ १ ॥

हे काम ! तुम सहास से प्रतिष्ठित, विभु और विभावा हो। हे मित्र ! तुम हमसे मित्रता का भाव रखते हो। तुम महान वली और शत्रु विजयी हो। इस यजमान को आज और बल प्रदान करो ॥ २ ॥

पूर्वादि समस्त दिशाओं ने इस दुर्लभ फल की इच्छा युक्त पुरुष को फल देने और अक्षय सुख देने का निश्चय किया है ॥ ३ ॥

अभीष्ट फल युक्त फल मुझे मिले और ब्राह्मणो का फल प्राप्त मन भी मुझे मिले ॥ ४ ॥

हे काम देव ! जिस कामना युक्त हम तुम्हे हवि देते हैं उसे ग्रहण करो। और हमारी मनोकामना पूर्ण करो ॥ ५ ॥

सूक्त (५३)

(ऋषि—भृगु । देवता—काल. । छन्द—त्रिष्टुप्, बृहती, अनुष्टुप्)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मि सहस्राक्षो अजरो भूरिरेता ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चि-तस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृत न्वक्ष ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् काल स ईयते प्रथमो नु देव ॥ २ ॥

पूर्ण कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्त ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् काल तमाहु. परमे व्योमन् ॥ ३ ॥

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव स भुवनानि पयत् ।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेज. ॥ ४ ॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत ।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥ १० ॥

कलात्मक वस्तुओ को व्याप्त कर लेने वाले वह सप्तरश्मि वाले सहस्त्रो नेत्र वाले नित्य युवा भूरि वीर्य युक्त है । उस अश्व रूप पर बुद्धिवान ही आरूढ होते है । समस्त ससार उस अश्व का चक्र है ॥ १ ॥

कालात्मक सवत्सर सात ऋतुओ को वहन करता है । यह चक्र इसके नाभि रूप है । अमृत अक्ष है । कलात्मक ब्रह्म ही इस चराचर विश्व की रचना और विध्वंस का कार्य करता है ॥ २ ॥

यह परमेश्वर काल से कुम्भ के समान पूर्ण रूप से व्याप्त है । हम उसको (काल को) अनेक भेदी देखते हुए उसे व्योम वत निर्लेपमानते है ॥ ३ ॥

वही काल परम जीवो की उत्पत्ति करता है वह भुवन पिता और पुत्र रूप मे विद्यमान हैं । अन्य कोई तेज इस काल मे नही पाया जाता है ॥ ४ ॥

द्यूलोक और पृथ्वी की काल से ही उत्पत्ति हुई है। इसी काल के आश्रय मे भूत, भविष्यत्, और वर्तमान काल रहता है ॥ ५ ॥

ससार की रचना उसी काल द्वारा हुई, सूर्य इसी के सहारे प्रकाशित होते हैं। इन्द्रिय अधिष्ठाता भी कालाधीन होकर इन्द्रियो का सचालन कर्म करता है ॥ ६ ॥

काल मे ही सृष्टि रचना का मन और उसी मे प्राणी निवास निहित है। समस्त प्रजायें आने वाले काल से अभीष्ट फल की कामना करती है। ७ ॥

काल ही तप, काल ही ज्येष्ठ और काल ही ब्रह्म प्रतिष्ठित माना जाता है। काल समस्त जीवो का ईश्वर पिता और प्रजापति है। ८ ॥

ससार काल से उत्पन्न हो उसी मे विद्यमान है। काल ही ब्रह्म होता रूप मे ब्रह्मा को धारण करता है ॥ ९ ॥

काल ने प्रथम प्रजापति तथा बाद मे प्रजाओ की रचना की, काल से ही कश्यप हुए। वह काल स्वयम्भू है ॥ १० ॥

सूक्त (५४)

(ऋषि—भृगु। देवता—काल। छन्द—अनुष्टुप, गायत्री, अष्टि)

कालादाप· समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः।
कालेनोदेत्ति सूर्यं· काले नि विशते पुन ॥ १ ॥
कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥
कालो ह भूत भव्य च पुत्रो अजनयत् पुरा।
कालादृच समभवन् यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् ।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्
विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु
देवः ॥ ५ ॥

काल से ही जल, ब्रह्म, तप, दिशायें, और सूर्य की उत्पत्ति हुई है। काल ही सूर्य को बाद मे अस्त कर देता है ॥ १ ॥

काल मे वायु चलती है, पृथ्वी ऐश्वर्य युक्त है, और द्युलोक भी कालाश्रित है ॥ २ ॥

काल से ही भूत, भविष्य पुरा, पुर, ऋचा, और यजुर्वेद की उत्पत्ति भई है ॥ ३ ॥

काल ने यज्ञ को देवों के भाग मे बनाया। काल द्वारा ही अप्सरा और गन्धर्व हुए। समस्त ससार कालाधीन है ॥ ४ ॥

अंगिरा, अथर्वा आदि महर्षि काल द्वारा ही उत्पन्न हुए। वह काल स्वर्ग तथा अन्य लोकों को देश, काल, कारण से रहित परम ब्रह्म के द्वारा व्याप्त करके स्थित रहता है ॥ ५ ॥

सूक्त (५५)

(ऋषि—भृगुः। देवता—अग्निः, छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, उष्णिक)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।

रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥
या ते वसोर्वात इषुः सा म एषा तया नामृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम् ॥ २ ॥
सायसाय गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वय त्वेन्धानास्तन्व पुषेम ॥ ३ ॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायसाय सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिम. ऋधेम ॥ ४ ॥
अपश्चाद्दग्धान्नस्य भूयासम् ।
अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ॥ ५ ॥
सभ्य सभा मे पाहि ये च सभ्या सभासद ।
त्वयेद्गा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥ ६ ॥
अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! गार्हपत्य आदि स्वरूपो मे तुमको हवि देते हुए हम अन्न और धन से सम्पन्न रहे। तुम्हारी समीपता से हम आयुष्मान होवे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तुम हमे अन्न प्रदान करो। हम तुम्हारी समीपता मे अन्न और धन से सम्पन्नता प्राप्त करें ॥ २ ॥

गार्हपत्य अग्नि सुबह और शाम हमे सुखदायक होवे। हे अग्ने ! तुम हमे धन आदि से सम्पन्न करो। हम तुम्हे हवियो द्वारा प्रदीप्त करते हैं। जिससे हमारा शरीर स्वस्थ होवे ॥३॥

गार्हपत्य अग्नि सुबह और साँय हमें सुखमयी बनावें।

हे अग्ने ! तुम वृद्धि पाकर हमें धन प्रदान करो । हम सौ वर्षों हाने को तुम्हे प्रदीप्त करते हैं । ४ ॥

पात्र के पेंदे में जले अन्न को मैं नहीं खाऊँ । अन्न सेवन धिकारी रुद्रात्मक अग्नि को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥

सभा में प्रतिष्ठित हुए तुम मेरी सन्तति की रक्षा करो । और सभासद इस सभा के रक्षक होवे ॥ ६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! तुम ऐश्वर्य सम्पन्न हो । हमें अन्न और जीवन दो । घोड़े को तृण देने के समान ही जो पुरुष तुमको हवि प्रदान करते हैं उन्हे अन्न से सम्पन्न करो ॥ ७ ॥

सूक्त (५६)

(ऋषि—यम । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द-त्रिष्टुप्)

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः ।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य
योनौ ॥ १ ॥
बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत् पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि ।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥
बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन् ।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥
नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम् ।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो
वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥
यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः ।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि
जज्ञिषे ॥ ५ ॥

विद्म ते सर्वा परिजाः पुरस्ताद्‌ विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद्‌ द्विषेभिरप याहि दूरम्‌ ॥ ६ ॥

हे पिशाच ! तुम यम लोक से दुस्वप्न के रूप में इस पृथ्वी पर आये हो। तुम निर्भय होकर स्त्री पुरुषों के दु स्वप्न ग्रस्त रथ पर जा चढते हो ॥ १ ॥

हे दु स्वप्न ! तुमको प्रजापति आदि ने सृष्टि रचना के आरम्भ मे और दिन रात की रचना से पूव देखा था। तुम सभी से इस ससार मे व्याप्त हो। चिकित्सकों के सामने तुम छुप जाते हो ॥ २ ॥

यह असुरो को याम से महिमा पाने को देवो के पास चलता है। तब देवो ने उसे नष्ट करने की शक्ति प्रदान की ॥ ३ ॥

तेतीस देवो के अतिरिक्त उस अनिष्ट कारी शक्ति को पितर भी नही जानते हैं। पाप नाशक वरुण से उपदेश देने पर आदित्यो मे महर्षित्रित मे इसको विद्यमान किया ॥ ४ ॥

पापी पुरुष जिससे अनेक अनर्थ को पाते हैं। और पुण्यात्मा पुरुष दु स्वप्न रहित अनेक लाभो को ग्रहण करते है। ऐसा दु स्वप्न विधाता के पास सुख को प्राप्त होता है। तुम पापी की मरने की सूचना देने वाले हो ॥ ५ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरे परिजन वर्ग और स्वामी की भी जानकारी रखते हैं। तुम दु स्वप्न से हमारी रक्षा करो। तुम हमसे द्वेष करने वालो को दूर कर ॥ ६ ॥

सूक्त (५७)

(ऋषि—यम । देवता—दुःस्वप्ननाशनम् । छन्द—अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, जगती)

यथा कला यथा शफ यथर्ण सनयन्ति ।
एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये स नयामसि ॥ १ ॥

स राजानो अगु समृणान्यगु स कुष्ठा अगु स कला अगु ।
समस्मासु यद् दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प हिण्म ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥

त त्वा स्वप्न तथा स विद्म स त्व स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नानाहम् ।
अनास्माक देवपीयुं पियारु वप यदस्मासु
दुःष्वप्न्यं यद् गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥

अनास्माकस्तद् देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम् ।
नवारत्नीनपमया अस्माक ततः परि ।
दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥

जिस प्रकार यज्ञ मे अवदानीय अंगो को लेकर संस्कार निभाने वाले ऋत्विज दूसरी जगह उठा ले जाते हैं और जिसे ऋण के भार के समान उतारते है। उसी प्रकार हम दुस्वप्न से उत्पन्न हुए अनिष्टो को जल पुत्र त्रित पर उतारते हैं ॥ १ ॥

जिस प्रकार शत्रु नाश के लिए एकत्रित होते हैं, जिस तरह ऋण, कुष्ट रोग आदि बृद्धि को पा एकत्र हो जाते हैं और पके हुए खुर डाढ़े मे एकत्र हो जाते है उसी प्रकार दुस्वप्न से

जो अनिष्ट एकत्र हो जाते हैं उनको हम शत्रुओ पर छोड़ते हैं। २ ॥

हे देव पत्निगर्भ ! हे स्वप्न ! तेरा कल्याणमयी भाग मुझे और दु खदायी भाग शत्रु को प्राप्त होवे। काले काग का स्वप्न वत मुख मुझे दु खदायी न बनें ॥ ३ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरे आवागमन को भली भाँति जानते हैं, जैसे धूल मे धूसरित घोड़ा शरीर को झाड़ता है और काठी आदि को फक देता है। उसी प्रकार तुम हमारे देवताओ और यज्ञ के बाधक शत्रुओ का नाश कर। गौ के लिए दुस्वप्न को यहाँ से भगा ॥ ४ ॥

हे देव ! उस अनिष्ट को शत्रु प्राप्त करें। हमारे दुस्वप्न के फल को नीतुठठो पीछे हटाओ। हमारे शत्रु इस दुस्वप्न जनित फल को प्राप्त करें ॥ ५ ॥

सूक्त (५८)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—मन्त्रोक्ता। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, शक्वरी)

घृतस्य जूति. समना सदेवा सवत्सर हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षु प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चस ॥ १ ॥

उपास्मान् प्राणो ह्वयतामुप वय प्राणं हवामहे ।
वर्चो जग्राह पृथिव्यन्तरिक्ष वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥

वर्चसो द्यावापृथिवी सग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवी मनु सं चरेम ।
यशस गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु स चरेम ॥ ३ ॥

व्रज कृणुध्व स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्व बहुला पृथूनि ।

पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि ।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥
ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥

परमात्मा रूप बुद्धि, संवत्सर रूप ईश्वर को शब्द स्पर्श रूप हवि द्वारा पुष्ट बनाती है। साधक जन अपनी इन्द्रियो को भोगो से रहित करते हुए रहते हैं हम इस प्रकार के कर्म मे निष्ठ हुए श्रेय, चक्षु, प्राण, आयु, वर्च आदि से युक्त होवें ॥ १ ॥

प्राण हमे दीर्घ जीवी करें प्राण से ही हम अनन्त काल तक शरीर निवास करते है। पृथ्वी अन्तरिक्ष और सूर्य से सोम और वृहस्पति ने हमको देने के निमित्त वर्च को धारण किया है ॥ २ ॥

हे आकाश पृथ्वी हमको वर्च देवो। हमे गाओ की प्राप्ति होवे। हम अपने तेज से गाओ सहित पृथ्वी और आकाश मे भ्रमण कर सके ॥ ३ ॥

हे इन्द्रियो ! इस रक्षक शरीर से मिलकर रहो। अपने कार्यों को ठीक तरह करते हुए अपने विषयो को गहण करो। इस शरीर का नाश न होवे ॥ ४ ॥

यज्ञ के नेम रूप अग्नि प्रथम पूज्य होने से मुख रूप बना। अग्नि के लिए मे हवि देता हूँ। इन्द्रादि देव भी इस विश्व कर्मा के यज्ञ मे शामिल होवे ॥ ५ ॥

देवों ने ऋत्विज रूप तथा यज्ञार्ह, जिनको हवि प्रदान की जाती है इस यज्ञ में अपनी पत्नियों युक्त आवें और हवि ग्रहण करें। सभी देव हम पर प्रसन्न होवें ॥ ६ ॥

सूक्त (५९)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता - अग्निः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा ।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥

यद् वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम मनुष्य में जठराग्निवत निवास करते हो। तुम कर्मों की रक्षा करते हो अतः यज्ञस्तुतिओं द्वारा पूज्य हो ॥ १ ॥

हे देव ! जिन विद्वत जनों के कर्मों को हम अल्पज्ञाता नहीं जानते हैं उनको देवगण जानते है। सोम की अर्चा करने वाले ब्राह्मणों के सामने यह अग्नि प्रतिष्ठित हैं ॥ २ ॥

अनुष्ठान की कामना वाले हम देवयान मार्ग को जान गये हैं। अग्निदेव की पूजा अर्चा करना उत्तम है चूँकि वे देवयान के ज्ञाता और होता रूप और आह्वान करने वाले हैं। वे अहिंसित यज्ञों का समय निश्चित करते है ॥ ३ ॥

सूक्त (६०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—वागादिमन्त्रोक्ता । छन्द—बृहती, उष्णिक्)

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिता केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः ।
प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥

मुख मे मेरे वाणी, नासिका मे प्राण, नेत्रो मे देखने की शक्ति, दांत अक्षुण और केश पलित रोग से रहित रहे, मेरी बाहु बलवती होवे ॥ १ ॥

अरुओ मे ओज, जांघो मे वेग और पांवो मे खडे रहने की शक्ति होवे । आत्मा और अग अहिंसा और पाप से रहित होवें ॥ २ ॥

सूक्त (६१)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पति । छन्द—बृहती)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।
स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥ १ ॥

जीवन भर मे अपने दांतो को खाता रहूँ तथा शत्रुओ के शरीर को नीचा दिखाने योग्य बनू हे अग्ने ! तुम यहां और स्वर्ग मे सुख प्रदान करो ॥ १ ॥

सूक्त (६२)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्मणस्पति । छन्द—अनुष्टुप्)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

हे अग्ने ! मुझे देव और राज्य प्रिय करो। मैं शूद्र, आर्य और सभी देखने वालो को प्रिय होऊँ ॥ १ ॥

सूक्त (६३)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता—ब्रह्मणस्पति.। छन्द—बृहती)

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।
आयु प्राण प्रजा पशून् कीर्ति यजमानम च वर्धय ॥ १ ॥

हे ब्राह्मणस्पते ! उठकर देवो को यज्ञ के लिए सचेत करो। इस यजमान की आयु, प्राण, प्रजा, पशु, यश, की बढोत्तरी का कार्य सम्पन्न करो ॥ १ ॥

सूक्त (६४)

(ऋषि ब्रह्मा। देवता—अग्नि। छन्द—अनुष्टुप्)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे ।
स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदा· प्र यच्छतु ॥ १ ॥
इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।
तथा त्वमस्मान् वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥
यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु मे शिव तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥
एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्ध समिद् भव ।
आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥

उन जातवेदा अग्नि को समिधायें लाकर मैं प्रदीप्त करता हूँ। ये मेरे को श्रद्धा और बुद्धि देवें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हम तुम्हे समिधा रूप में प्रदीप्त करते है अतः तुम हमे धन और सन्तान से सम्पन्न करो ॥ २ ॥

सूक्त (६७)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्य । छन्द—गायत्री)

पश्येम शरद शतम् ॥ १ ॥   जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरद शतम् ॥ ३ ॥   रोहेम शरद शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरद शतम् ॥ ५ ॥   भवेम शरद' शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥   भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

हे सूर्य ! तुमको हम शत वर्ष देखते रहे ॥ १ ॥
हम सौ वर्ष तक जीवे ॥ २ ॥
हमे सौ वर्ष तक सद्‌बुद्धि दो ॥ ३ ॥
हम सौ वर्ष तक वृद्धि को पाते रहे ॥ ४ ॥
हम सौ वर्ष तक पुष्टता प्राप्त करते रहे ॥ ५ ॥
हम सौ वर्ष तक पुत्रादि से सम्पन्न रहे । हम सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवन धारण हो ॥ ६-७-८ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—मन्त्रोक्त कर्म । छन्द—अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

मैं अपने व्यान और प्राण वायु के मूलाधार से अत्यन्त कर अक्षरात्मक वेद से युक्त हम कर्म करने मे प्रवृत्त होते हैं । १ ॥

सूक्त (६९)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आपः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

हे अग्ने ! ये यज्ञीय और अयज्ञीय लकडी तुमको दी है। यह सब मेरे को मगल प्रदान करे। तुम इन सभी लकडी को अपने तेज से भक्षण कर डालो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम्हारे लिए लाई हुई समिधाओ मे प्रदीप्त होवो। समिधा देने वाले को आयु तथा आचार्य को अमृतत्व प्रदान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (६५)

(ऋषि--ब्रह्मा। देवता--सूर्यो जातवेदाः। छन्द-जगती)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य ! तुम अन्धकार नाशक तथा आकाशगामी हो। तुम अपने तेज से हिंसित शत्रुओ को भस्म कर दो। तुम अपने इसी तेज से स्वर्ग मे विद्यमान होवो ॥ १ ॥

सूक्त (६६)

(ऋषि--ब्रह्मा। देवता--सूर्यो जातवेदा वज्र। छन्द--जगती।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयै पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेद सहस्रऋष्टि सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्र ॥ १ ॥

पुण्यात्माओ को मारने वाले को राक्षस लोह-पाश हाथ मे लिए घूमते हैं उनको हे सूर्य ! मैं तुम्हारे तेज से वश मे करता हूँ। तुम सहस्र रश्मि और वज्रधारी हो अत: हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

सूक्त (६७)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—सूर्य । छन्द—गायत्री)

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥

हे सूर्य ! तुमको हम शत वर्ष देखते रहे ॥ १ ॥
हम सौ वर्ष तक जीवें ॥ २ ॥
हमें सौ वर्ष तक सद्‌बुद्धि दो ॥ ३ ॥
हम सौ वर्ष तक वृद्धि को पाते रहे ॥ ४ ॥
हम सौ वर्ष तक पुष्टता प्राप्त करते रहे ॥ ५ ॥

हम सौ वर्ष तक पुत्रादि से सम्पन्न रहे । हम सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवन धारण हो ॥ ६-७-८ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—मन्त्रोक्त कर्म । छन्द—अनुष्टुप्)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥

मैं अपने व्यान और प्राण वायु के मूलाधार से अत्यन्त करके अक्षरात्मक वेद से युक्त हम कर्म करने मे प्रवृत्त होते हैं । १ ॥

सूक्त (६९)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—आपः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

उपजीवा स्थोप जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ २ ॥
संजीवा स्थ स जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ३ ॥
जीवला स्थ जीव्यास सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ ४ ॥

हे देव ! आपकी कृपा से मैं आयुष्मान बनूं ॥ १ ॥

मैं पूर्ण उम्र धारण करूं ॥ २ ॥

मैं अपने जीवन को सत कार्यों मे लगाऊ ॥ ३ ॥

हे देवो ! तुम आयुष्मान होवो और मुझे भी आयुष्मान करो ॥ ४ ॥

सूक्त (७०)

(ऋषि—ब्रह्मा । देवता—इन्द्रादयो मन्त्रोक्ता । छन्द—गायत्री)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् ।
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम जीवन धारण करो। हे सूर्य ! तुम जीवन धारण करो। हे देवो तुम भी जीवन धारण करो और मैं भी आपकी कृपा से जीवन धारण करूं ॥ १ ॥

सूक्त (७१)

(ऋषि—ब्रह्मा। देवता। गायत्री। छन्द—जगती)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥

स्तुति की जाती हुई वेद मा मुझ स्तोता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, ब्रह्मचर्य और धन से सम्पन्न करे और ब्रह्म लोक को प्रदान करे ॥ १ ॥

सूक्त (७२)

(ऋषि--भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा । देवता--परमात्मा देवाश्च । छन्द--त्रिष्टुप्)

यस्मात् कोशादुदभराम वेद तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥

हम जिस कोश से वेद को निकाल कर, जिससे कर्म करते है उस स्थान से उसे पुन प्रतिष्ठित करते हैं। ब्रह्म के कर्म प्रतिपादक वीर्य रूप वेद से जो कर्म किया है उस अभीष्ट कर्म के फल स्वरूप देवगण मेरा पालन कर्म कर। १ ॥

॥ इति इत्यकोनविंश काण्ड समाप्तम् ॥

विंश काण्ड

सूक्त १ (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्र., गौतम, विरूप । देवता--इन्द्र., मरुत , अग्नि । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धस. ॥ १ ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहस ।
स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
स्तोमैर्विधेमाग्नये । ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट वर्षक और ऐश्वर्य युक्त हो। सोम निष्पक्षीकरण से हम तुम्हे बुलाते हैं। अत यहाँ पधार कर मधुर रस युक्त सोम का पान करो ॥ १ ॥

हे मरुद्गण ! सर्व देवो से अत्यधिक तेज वाले हो। तुम जिस यज्ञ गृह मे आकाश से आ सोमपान करते हो उससे यजमान को आश्रितो का रक्षक बनाओ ॥ २ ॥

वृषभ और गौ रूप जिसके भाग पर सोम रूपी स्वामी रहता है, उन अग्नि देव की हम स्तुति स्तोत्रो द्वारा करते है ॥ ३ ॥

सूक्त (२)

(ऋषि—? । देवता—मरुत , अग्निः, इन्द्र , द्रविणोदा. । छन्द—गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

मरुत पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्काहतुना सोम पिबतु ॥ १ ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुष्टुभः स्वर्काहतुना सोम पिबतु ॥ २ ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभ स्वर्काहतुना सोम पिबतु ॥ ३ ॥

देवो द्रविणोदा. पोत्रात् सुष्टुभ स्वर्काहतुना सोम पिबतु ॥ ४ ॥

मरुद्गण पोता के निमित्त सुन्दर स्तोत्र और मन्त्रो वाले यज्ञ कर्म में पवित्र सोम को आकर ग्रहण करे ॥ १ ॥

अग्नि समिधन करने वाले ऋत्विज को कर्म से खुश होकर अग्नि सोम पान करें। यह अग्नि कर्म सुन्दर वर्ण आर मन्त्रो से युक्त है ॥ २ ॥

इन्द्र ही महान होने से ब्रह्मा है । हे ब्रह्मात्मक इन्द्र ! सुन्दर स्तुतियों से युक्त इस यज्ञ मे पवित्र सोम का पान करो ॥ ३ ॥

द्रविणोदा हमे धन प्रदान करो। ऋत्विज कृत सुन्दर स्तोत्र द्वारा इस यज्ञ मे पवित्र हुये रस को इन्द्र ग्रहण करे ॥ ४ ॥

सूक्त (३)

(ऋषि—इरिम्बिठि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम ।
एद बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न श्रृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वय युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहा पधारो । हमारे द्वारा सस्कारित सोम को ग्रहण करो और विस्तृत कुशाओ पर विराजमान होओ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे हयंश्व मन्त्रो से रथ जुडते और अभीष्ट स्थान पर पहुँचाते है। उन अश्वो द्वारा लाने पर तुम स्तुति को सुनो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अनुष्ठानाभिलाषी ब्राह्मणो से पवित्र सोम यहाँ पर है। तुम सोम पायी की हम स्तोत्रो द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४)

(ऋषि—इरिम्बिठि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धस ॥ १ ॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु ससुदे मधुमान् तन्वे तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सुन्दर स्तोत्र को सुनते हुए हम सोम रखने वालो के पास आओ। तुम सुन्दर हनु वाले हो अत हमारे इस सोम का पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारी दोनो कोखो को सोम रस द्वारा परिपूर्ण करना चाहता हूँ। यह सोम तुम्हारे सभी अगो मे भ्रमण करें। अतः तुम इस मीठे रस को अपनी जीभ से पीओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम धन-दान आदि वर्चों के लिए विख्यात हो। हमारी भेट का सोम तुम्हे स्वादिष्ट लगे और तुम्हे शक्ति प्रदान करें। यह सोम तुम्हे प्रसन्नता प्रदान करे ॥ ३ ॥

सूक्त (५)

(ऋषि—इरिम्बिठि । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि सवृत ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्व विश्वस्येशान ओजसा ।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ३ ॥
दीर्घस्ते अस्त्वङ कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं य इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥

शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुनः ।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।
न्यस्मिन् दध्र आ मनः ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सन्तानवती स्त्रियाँ जैसे पुत्रो से घिरी रहती है वैसे ही सोम अध्वर्यु आदि से घिरा हुआ रखा है। यह सोम इन्द्र के लिए है ॥ १ ॥

इन्द्र के स्कन्ध सोम पान से वृषभवत मोटे ताजे बनते हैं। पेट विशाल और भुजायें वज्र के समान होती है। इस प्रकार शक्ति प्राप्त कर इन्द्र वृत्रासुर आदि का हनन करता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम जगत स्वामी, और वृत्रासुर के मारक हो। अत हमारी सैन्य शक्ति के आगे चलकर वृत्रासुर के समान घेरने वाले शत्रुओ का हनन करो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अ कुशवत झुका तुम्हारा हाथ दान देने को अग्रसर होवे। तुम यजमान को धन-मान प्रदान करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! यह सोम अच्छी प्रकार छानकर तुम्हारे लिए रखा गया है अत यहाँ आओ। तुम्हारे लिए सस्कारित इस सोम का पान करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुमने प्राणियो द्वारा अपहृत गागे निकाल ली। तुम स्तोत्रो के सुन्दर फलो के ज्ञाता हो। सोम सस्कारित कर हम तुम्हे आहुति करते है। आप शत्रु सहारक हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सीगो के समान ऊँची उठने वाली सूर्य किरणो का पतन नही होने देते। कुण्डपाय्य तुम्हारा क्रतु है। उससे सोम से युक्त यज्ञ मे अपने चित्त को लगाओ ॥ ७ ॥

सूक्त (६)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभ वय सुते सोमे हवामहे ।
स पाहि मध्वो अन्धस ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविद सुत सोम हर्य पुरुष्टुत ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावान यज्ञ विश्वेभिर्देवेभि ।
तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमा सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।
क्षय च द्रास इन्दव ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुत सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्यु क्षास इन्दव ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि न सुत मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद् यश ॥ ६ ॥
अभि द्यु म्नानि वनिन इन्द्र सचन्ते अक्षिता पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
यदन्तरा परावतमर्वावत च हूयसे ।
इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! सस्कारित हुए सोम को पीने के लिए हम तुम्हे बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम यजमानो द्वारा स्तुति किए जाते हो, सस्कारित सोम की इच्छा करते हुए इसे पीकर तृप्त होओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सभी देवगणो सहित यहा पधार कर यज्ञ हवि को ग्रहण करो और उसकी वृद्धि करो ।। ३ ।

हे इन्द्र ! तुम यजमान रक्षक हो । यह सस्कारित साम तुम्हारे पेट मे जा रहा है ।। ४ ।।

हे इन्द्र ! इस विशिष्ट माग रूप सोम को हृदय मे धारण करो ।। ५ ।।

हे इन्द्र ! तुम स्तुति द्वारा पूज्य हमारे सोम को ग्रहण करो । ये अ हुति हम सोम से देते हैं । यह सोम तुम्हारा सुन्दर यश रूप है ।। ६ ।।

यजमान के पवित्र व सस्कारित सोम को पीते हुये इन्द्र वृद्धि पा रहे है । ७ ।।

हे इन्द्र ! तुम वृत्र मारक हो । तुम हमसे दूर हो अथवा पास हो शीघ्र ही हमारे पास आओ स्तुतियो को ग्रहण करो ।। ८ ।।

हे इन्द्र ! तुम निकटस्थ और दूरस्थ दोनो स्थानो से ही बुलाये जाते हो । अत शीघ्र ही इस यज्ञ मण्डप मे प्रवेश करो ।। ९ ।।

सूक्त (७)

(ऋषि—सुकक्ष, विश्वामित्र । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उद् घेदभि श्रुतामघ वृषभ नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्य ।। १ ।।
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।
अहिं च वृत्रहावधीत् ।। २ ।।
स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद् गोमद् यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥
इन्द्र क्रतुविद सुत सोम हर्य पुरुष्टुत् ।
पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

हे सूय ! स्तुति और यज्ञ करने वाले को इन्द्र धन देता है। इन्द्र अभीष्ट दाता है शत्रु सहारक और अशुभ निवारक है। तुम इन्द्र को ध्यान मे रखते हुए उदित होते हो । १ ॥

शम्बर माया से रचित निन्यानवे नगरो को जस इन्द्र द्वारा तोडे गये उन्ही से वृत्रासुर मारे गये हैं ॥ २ ॥

वे इन्द्र प्रिय बनते हुए, हमको सुख, गायो, अश्व, तथा अन्य धनो को प्रदान करें। जिससे हम धनवान बनें । ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम ज्योतिष्टोम आदि के कर्त्ता हो और नाना स्तोत्रो द्वारा स्तुत्य हो सोम को इच्छा से पीते हुए तृप्त होवो ॥ ४ ॥

सूक्त (८)

(ऋषि—भरद्वाज, कुत्स, विश्वामित्र । देवता इन्द्र । छन्द:—त्रिष्टुप्)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भि ।
आवि सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रू रभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥
अर्वाङ हि सोमकाम त्वाहुरय सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव न शृणुहि हूयमान ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलश स्वाहा सेक्तेव कोश सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! प्राचीन महर्षियो द्वारा पीये गये सोम के समान

ही हमारा सोम पीओ। यह सोम तुम्हे आनन्द दायक होवे। हमारी स्तुति को श्रवण कर वृद्धि को प्राप्त हुए, सूर्य को प्रकाशित करो। हे इन्द्र! पाणियो द्वारा अपहृत गाओ को हमे पुन वापिस करा और शत्रुओ का सहार करो। अन्नो की वृद्धि करो॥ १॥

हे इन्द्र! विद्वान तुम्हे सोम पायी बताते हैं। अत हमारे समीप आओ और सस्कारित सोम को आनन्द के साथ ग्रहण करो। इससे अपनी कोखो का सम्पन्न करो। जैसे पिता पुत्र की बात सुनता है। वैसे तुम हमारी बातो को श्रवण करो॥ २॥

यह द्रोण कलश इन्द्र के लिये सोम से भरा रखा है, जल छिडकने वाले के समान हो सोम रस घडे मे भरा है। इस सोम को इन्द्र सहर्ष स्वीकार कर॥ ३॥

सूक्त (६)

(ऋषि - नोधा, मेध्यातिथि। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप, वृहती)

त वो दस्ममृतीषह वसोर्मन्दानमन्धस।
अभि वत्स न स्वसरेषु धेनव इन्द्र गीर्भिर्नवामहे॥ १॥
द्युक्ष सुदानु तविषीभिरावृत गिरि द पुरुभोजसम्।
क्षुमन्त वाज शतिन सहस्रिण मक्षू गोमन्तमीमहे॥ २॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ३॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शव।
यद्य: सो अस्य महिमा न सनशे य क्षोणीरनुचक्रदे॥ ४॥

हे यजमानो! यज्ञ की पूर्णता के लिये हम इन्द्र की स्तुति करते है। यह दशन योग्य और शत्रु सहारक है। ये सोम

द्वारा परिपूर्ण है। जो दिनो के प्रकट और अस्त करने वाले सूर्य हैं जैसे इसी समय गायें रंभाती हुई बछडो के पास आती हैं वैसे ही हम स्तोत्रो द्वारा स्तुति करते हुये इन्द्र के समीप जाते हैं ॥ १ ॥

दानवान, प्रजापालक दीप्ति युक्त, स्तुत्य और गवादि से सम्पन्न धन की हम इसी प्रकार प्रार्थना करते है जैसे दुभिक्ष भोगी कन्द मूल फलो से सम्पन्न पर्वतो की कामना करते है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मैं शक्तिदायक अन्न को तुमसे मागता हूँ। जिस धन से भृगु ऋषि को शान्त किया और जिसके द्वारा काण्व पुत्र का पालन किया इसी धन की हम तुमसे कामना करते हैं। ३ ॥

हे इन्द्र ! जिस बल द्वारा तुमने सृष्टि के आदि मे जल से सम्पन्न समुद्र की कामना की वह बल अभीष्ट दाता हो। जिस शक्ति को हम भूलोकवासी गाते है उसको शत्रु प्राप्त न कर सकें ॥ ४ ॥

सूक्त (१०)

(ऋषि--मेध्यातिथि । देवता- इन्द्र। छन्द- बार्हत प्रगाथा।)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथाइव ॥ १ ॥
कण्वाइव भृगवाः सूर्याइव विश्वमिद् धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥

यह गायन तथा अगायन मन्त्रो से साध्य स्तुतिया कही जा रही हैं। रथारोही के अनुकूल की रथ गमन करने के समान ये इन्द्र की संतुष्टि को गमन करती है ॥ १ ॥

कण्व गोत्रिय महर्षि जैसे तीनो लोको के नाथ हैं, जैसे सूर्य नियन्ता इन्द्र को प्राप्त होते हैं, और जैसे भृगु वशी इन्द्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मनुष्य स्तुतियो से इन्द्र का प्राप्त होवें ॥ २ ।

सूक्त (११)

(ऋषि – विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द– त्रिष्टुप्)

इन्द्र पूर्भिदातिरद् दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी
उभे ॥ १ ॥
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत
पूर्वयावा ॥ २ ।
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीति प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्
राम्याणाम् । ३ ॥
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ।
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं
वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥
महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूंरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो
गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्य सहोदां ससवांस स्वरपश्चदेवी ।
ससान य पृथिवी द्यामुतेमामिन्द्र मदन्त्यनु धीरणास ॥ ८ ॥
ससानात्यां उत सूर्यं ससानेन्द्र ससान पुरुभोजस गाम् ।
हिरण्ययमुतभोग ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ।
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पती रसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वल नुनुदे विवाचोऽथाभवद्
दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥
शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम् वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सजितं
धनानाम् ॥ ११ ॥

इन्द्र अपने वल से शत्रु नाशक, शत्रुओ के नगरो के विनाशक और शत्रु धन को पाने वाले को इनका शरीर मन्त्रो से रक्षित और शत्रु संहारक अनेक अस्तो से ये सम्पन्न होते है। उन्होने वृतासुर को मारा और आकाश पृथ्वी पर व्याप्त हो गये ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं यज्ञ रूप इस वाणी को यज्ञ द्वारा प्रकट करता हूँ। हे इन्द्र ! सभी के अग्रगणी तुम्हारी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

अपनी माया से वृत्रासुर और अनेक राक्षसों का संहार किया। वृत्रासुर के कन्धो को इन्द्र ने ही पृथक किए और गोओ को पुन प्राप्त किया ॥ ३ ॥

इन्द्र शत्रु नाशक और स्वर्ण दायक है इन्द्र ने सग्राम के अभिलाषी राक्षसो को सेनाओ सहित वश मे कर विजय प्राप्त की। यजमानो के लौकिक कर्म के लिए उन्होने सूर्य को प्रकाशित किया ॥ ४ ॥

युद्धाभिलाषी पुरुष के समान इन्द्र शत्रु सैन्य मे प्रवेश करते हैं। वे मनुष्य को कल्याण कारी है। वे उपाओ को श्वेत रग प्रदान करते हैं । ५ ॥

इन्द्र द्वारा सम्पन्न कार्य की स्तोता प्रशसा करते है। शत्रु सहारक इन्द्र ने राक्षसो को समाप्त कर डाला । ६ ।

विल सहायता लिए युद्ध करने वालो के द्वारा स्तुत्य होने पर उन्हे धन सम्पन्न किया। ये यजमान रक्षक और अभीष्ट दाता है। यजमान उनके गुणो का गान किया करते हैं। ७ ॥

फलाभिलाषी जिनका मनन करते है, जो बलदायी है, जो शत्रु को नीचा दिखाते हैं, जो स्वर्गीय जल के अधिष्ठाता है, जिन्होने द्यावा पृथ्वी को मनुष्यो को प्रदान किया, उन इन्द्र को यजमान हवि द्वारा प्रसन्न करते है ॥ ८ ॥

अश्व, हाथी, ऊँट आदि इन्द्र द्वारा मनुष्य के प्रयोग को बनाये गये हैं। गौ, भैस और सुवर्ण भी इन्होने ही पिये। सूर्य को प्रकाशित किया। वे ही राक्षस सहारक और हर वर्ण रक्षक है ॥ ६ ॥

इन्द्र द्वारा ही यव आदि से मनुष्या के कल्याण का औषधि बनी। दिन तथा बनस्पति की रचना हुई। उन्होने ही वृत्रासुर को चोरा और विरोधियो को नष्ट किया ॥ १० ॥

धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न इन्द्र को हम युद्ध मे बुलाते हैं। अन्न प्राप्त होने वाले सग्राम मे हम उनका आह्वान करते है। शत्रु नाशक और विजेता इन्द्र को हम यहाँ बुलाते है ॥ ११ ॥

सूक्त (१२)

(ऋषि --वसिष्ठः, अत्रिः । देवता--इन्द्र । छन्द--त्रिष्टुप्)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्र समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततनोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥
युजे रथं गवेषण हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थु ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ ३ ॥
आपश्चित् पिप्यस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्र ॥ ७ ॥

हे ऋत्विजो ! अन्न कामना युक्त स्तुतियो को इन्द्र से कहो । हे यजमान ! तुम ऋत्विज सहित यज्ञ मे इन्द्र को पूजो । जीवो के वृद्धिकारक इन्द्र हमारी रक्षा करें । १ ॥

हे इन्द्र ! मैं देवो को बन्धु प्रिय स्तोत्रो को कहता हूँ ।

इससे स्वर्ग दायक सोम की वृद्धि होती है। यह यजमान अपनी आयु को नही जानता है, अत इसे आयुष्मान करो। आयु नाशक कर्मो को यजमान से दूर करो॥ २॥

इन्द्र रथ गौ दायक है। द्यावा पृथ्वी को अधीन करने वाले इन्द्र को हम स्तुति करते हैं। वे वृत्रासुर आदि के संहार करने वाले है॥ ३॥

हे इन्द्र! इस अभिषुत सोम का रस गौ के समान वृद्धि को प्राप्त हुआ है। ये यजमानो के यज्ञ मण्डप मे जाते है। अत आप स्तोत्रो के प्रति वहाँ आकर हमे अन्न से सम्पन्न करो।४।

हे इन्द्र! तुम बल सम्पन्न करो। यह संस्कारित सोम तुम्हे आनन्द दायक होवे। तुम मनुष्य पर कृपा करने वाले और अनन्त धनो के स्वामी हो। अत तुम उनको अभीष्ट फल प्रदान करो॥ ५॥

इन्द्रियो के निग्रह कर्ता वज्रधारी और अभीष्ट दाता इन्द्र की स्तुति करते हैं। इन्द्र हमे गौये और धनो से सम्पन्न करे। हे देवगणो! इन्द्र को दया से तुम भी हमारे पालक बनो।६।'

सोमात्मक, अभीष्टदाता, वज्रधारी, शत्रु विजयी, बल युक्त, वृत्रासुर संहारक, देव स्वामी, इन्द्र अभिषव स्थान पर सोम का पान करे। इन्द्र अपने घोडो सहित आकर माध्यंदिन मे सोम पान कर आनन्दित होवें॥ ७॥

सूक्त (१३)

(ऋषि—वामदेव, गोतम, कुत्स, विश्वामित्र। देवता—इन्द्रावृहस्पती, मरुत, अग्नि। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इन्द्रश्च सोम पिबत बृहस्पतेऽस्मिन् यज्ञे मन्दमाना वृषण्वसू।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि
यच्छतम् ॥ १ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र
जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो
अन्धस ॥ २ ॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं
तव ॥ ३ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४ ॥

हे बृहस्पते ! तुम इन्द्र सहित सोम का पान करो । तुम यजमान को धन दायक और आनन्द युक्त हो । तुम सोम पान कर हुये पुत्रादि प्रदान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र द्रुतगामी अश्व तुम्हे हमारे यज्ञ स्थान पर लावे और तुम भी शीघ्रता करो । विशाल वेदी पर बिछाये हुए कुशासन पर विद्यमान होकर सोम का पान करो ॥ २ ॥

रथाकार के द्वारा अवयवो के सस्कारित करने के समान हम सोम को सस्कारित करते है । हमारी मगल मयी बुद्धि अग्नि को प्रदीप्त करने मे लगी है । हे अग्ने ! तुम्हे वन्धु बनाकर हम हिंसामयी न बने ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तेतीस देवताओ युक्त रथारूढ हो आओ । बलवान अश्वो द्वारा देवो को यहा लाओ । जब २ देवो को आहुति दी जाये तब २ उन्हे यहा लाओ और सोम का पान कराओ । जिससे यजमान को वे अत्यधिक धन-धान्य सम्पन्न करें ॥ ४ ॥

सूक्त (१४)

(ऋषि --सोभरि । देवता--इन्द्र । छन्द--प्रगाथ)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूर न कच्चिद् भरन्तोऽवस्यवः।
वाजे चित्र हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितार ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिद पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतय ॥ ३ ॥
हर्यश्व सत्पति चर्षणीसह स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु न स वयति गव्यमश्व्य स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥

हे नवीनता से युक्त इन्द्र ! तुम पूज्य और पोषण कर्त्ता हो। हम रक्षाभिलाषी तुम्हारा आह्वान करते है। हमारे शत्रुओ के पास न जाओ। अत्यन्त निपुण राजा को जैसे विजय को बुलाते हो वैसे ही हम तुम्हे बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! युद्धावसर पर हम तुमको बुलाते हैं। शत्रु विजयी, नित्य युवा, इन्द्र हमारी सहायता के लिए आवें। हे इन्द्र हम सखा मानकर तुम्हें अपनी रक्षा को बुलाते है ॥ २ ॥

हे यजमानो ! तुम्हारी रक्षार्थ मैं इन्द्र का आह्वान करता हूँ। वे हमको पहिले भी धन दे चुके हैं अत उन्ही को बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

मनुष्य रक्षक इन्द्र के अश्व हरित वर्ण वाले ह। वे मनुष्यो पर नियन्त्रणधारी और स्तुत्य हो। मैं उनकी स्तुति करता हूँ वे सौ गायें और सौ अश्वो को प्रदान करें ॥ ४ ॥

सूक्त (१५)

(ऋषि - गोतम । देवता इन्द्र । छन्द त्रिष्टुप्)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे
अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता
हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि
हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव
प्रति नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥
भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम
ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं
सहः ॥ ६ ॥

जो सर्व पालक है, दाता हैं, सामर्थ्यवान, और अनेक शक्तियों के धारक हैं मैं उन इन्द्र का स्मरण करता हूँ। नीचे जाने वाले जल के वेग को समान सग्राम में उनका बल असहनीय होता है। मैं उन इन्द्र को स्तोत्र द्वारा स्तुति करता हूँ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जल जैसे नीचे स्थान को प्राप्त होता है। वैसे ही समस्त प्राणी तुम्हारी तरफ हो जावे। वे इन्द्र शत्रु नाशक है, इनका वज्र पर्वत पर भी न रुका है अत समस्त ससार उनको इच्छानुकूल होवे तोनो यज्ञीय सवन भी उनके अनुकूल बन ॥ २ ॥

हे उषे ! शत्रु भयभीत इन्द्र के निमित्त हम यज्ञ करते है। इन्द्र के अन्न सहित यहाँ लाओ। दिशाओ को प्रकाशित करने वाले इन्द्र को यहा लाओ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम महिमा युक्त, स्तुत्य, और आश्रय दाता हो। हे इन्द्र ! तुम हमारी छोटी सी स्तुति को श्रवण करो। राजा के समान प्रजा की बात सुनने वाले आप भी बनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे वृत्रासुर हनन से हम तुम्हारे उपासक है। तुम यजमान की अभिलाषा पूर्ण करो। तुम अत्यधिक विशाल हो, आकाश तुम्हारी विशालता और पृथ्वी तुम्हारी शक्ति पर गर्व करती है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! आपने अत्यधिक वीर मेघ को नदी रूप मे प्रवाहित किया और पर्वत का भी खण्ड २ कर डाला। तुम अत्यधिक बलशाली हो और तुम्हारी महिमा यथार्थ ही है। ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—अयास्य । देवता—बृहस्पति । छन्द-त्रिष्टुप्)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥
सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।

जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँ-
रिवाजौ ॥ २ ॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव
स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

आप्रुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क
उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव नि त्वचं
बिभेद ॥ ४ ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ
चक्र आ गाः ॥ ५ ॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद् बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणो-
दुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य
त्मनाजत् ॥ ७ ॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥

सोषामविन्दत् स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे
तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो
जभार ॥ ९ ॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ
उच्चरातः ॥ १० ॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभि· पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्या तमो अदधुर्ज्योतिरहन् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्
गा ॥ ११ ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पति स हि गोभिः सो अश्वै· स वीरेभिः
स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

मेघवत शब्दायमान, जल मे विचरणशील, पक्षियो के समान बोलने वाली, रक्षक और मेघो की धारा रूप गिरती हुई उर्मियाँ जैसे शब्द करती हैं वैसे ही वृहस्पति की स्तुति के निमित्त मन झुकते हैं ॥ १ ॥

महर्षि अंगिरस जसे भग के समान उमे घृत आदि सहित विवाह काल मे पति-पत्नि को अर्यमादेव द्वारा रक्षा कराते है उसी प्रकार इस दम्पत्ति को अर्यमादेव की शरण दिलावे। सूर्य अपने प्रकाश के लिये जैसे किरणो को एकत्रित करता है वैसे ही पति-पत्नि को एक करें। हे वृहस्पति ! युद्ध के लिये तैयार वीर के समान ही इन वीर-वधु को तुम सयुक्त करो ॥ २ ॥

कोठियो मे से अन्न निकालने के समान वृहस्पति यजमानो को सुन्दर वर्ण और बल युक्त गाये पर्वत से लाकर प्रदान करें ॥ ३ ॥

उलका को आदित्यो द्वारा अधोमुखी डालने के समान ही वृहस्पति मेघो को अधोमुख करके डालें मणि द्वारा अपहृत गौओ को निकालकर जैसे जल भूमि का फुलाते हैं

वैसे ही गौओ के खुरो से पृथ्वी को पृथक् कर देते है ।४॥

बृहस्पति देव अन्धेरे को दूर करते हैं, वायु के द्वारा मेघो के छिन्न-भिन्न के समान ही आप गौओ को इधर-उधर फैला देते हो ॥ ५ ॥

जब अग्नि के समान ताप वाले मन्त्रो से हिंसात्मक आयुध को नष्ट किया, तब चबाये हुये अलवत वल नामक असुर का सहार किया। उन्होने पयस्विनी गायो को प्रकट किया ॥ ६ ॥

मोर आदि द्वारा अण्डे चीर कर गर्भ को निकालने के समान गुफाओ मे छिपी हुई गौओ को बृहस्पति ने पर्वत चीर कर निकाल लिया ॥ ७ ॥

जल के कम हो जाने से जैसे मछली दिखाई देती है उसी प्रकार बृहस्पति ने गुफा पर ढके पत्थर को उठाते हो गौओ को देखा। और उनको निकाला । ८ ॥

अन्धेरे मे छिपी गौओ को देखने के निमित्त बृहस्पति ने उषा को प्राप्त किया, इन्ही ने आकाश निमित्त सूर्य तथा अग्नि को प्राप्त किया ॥ ९ ॥

पत्तो को निस्पर करके ग्रहण के समान बृहस्पति ने गौओ को प्राप्त किया । बृहस्पति के द्वारा ही, सूर्य, चन्द्रमा, दिन और रात्रि करते हुये गमन करते है। बृहस्पति कर्म को अन्य कोई नही जानता है ॥ १० ॥

जब बृहस्पति ने पर्वत को चीरा और गौओ को निकाला तो देवो ने अश्वो को सजाने के समान द्यूलोक को सजाया । उन्होने दिन मे सूर्य और रात्रि में अन्धकार को विद्यमान किया ॥ ११ ॥

मेघ चीरक और जल वर्षक बृहस्पति को हवि देते है। वे हमारी स्तुतियो की प्रशसा पर हमे गौये, धन, अन्न और पुत्रादि से सम्पन्न करे ॥ १२ ॥

सूक्त (१७)

(ऋषि—कृष्णः। देवता—इन्द्रः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अच्छा म इन्द्र मतय स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवान
मूतये ॥ १ ॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु
सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य
शुष्मिणः ॥ ३ ॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद् विदत् स्वर्मनवे
ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन् नोत
नूतनः ॥ ५ ॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद् वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते
पृतन्यतः ॥ ६ ॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं
कुल्याइव ह्रदम् ।

वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥
वृषा न क्रुद्ध पतयद् रजःस्वा यो अपत्नीरकृणोदिया अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

मुझे सुन्दर हाथ और वाणी वाले से इन्द्र की स्तुति की जावे। ये स्वर्ग दायक है। सन्तानाभिलाषी स्त्रियां जैसे पति से लिपटती है जैसे ही पिता को देखकर पुत्र लिपटता है वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इन्द्र से लिपटती है ॥ १ ॥

हे इन्द्र! मेरा मन हमेशा तुम मे अनुरक्त रहता है। तुम शत्रु संहारक हो। राजा के समान तुम इस कुशासन पर विराजमान होओ। सस्कार-युक्त सोम का भी पान करो ॥ २ ॥

इन्द्र क्षुधा को दूर कर हमारी दरिद्रता का नाश करें। इन्द्र धननायक है और इन्द्र की सातो नदियाँ अन्न को बढाने वाली है ॥ ३ ॥

पक्षियो के वृक्ष के आश्रय के समान सोम इन्द्र का आश्रय ग्रहण करते है। इन सोमो ने सूर्य को प्रकाशित किया और मनुष्यो को प्रदान कराया ॥ ४ ॥

जुआरी के पास ग्रहण करने के समान हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करे। इन्द्र ने ही सूर्य को आकाश मे विद्यमान किया है। हे इन्द्र तुम्हारे समान और कोई बलशाली नही बन सकता चाहे वह प्राचीन हो अथवा नवीन होवे ॥ ५ ॥

वे इन्द्र सभी उपासको के पास एक समय मे ही पहुँच कर उनकी स्तुतियो को ग्रहण कर लेते है। वे इन्द्र यजमानो द्वारा दिये गये सोम को बल से युद्धाभिलाषी शत्रुओ को वश मे करते हैं ॥ ६ ॥

जैसे जल सागर को, छोटी नदिया सरवर को प्राप्त होती है वैसे ही सोम इन्द्र को प्राप्त होते हैं। जैसे जल वर्षक मेघ अन्न की वृद्धि करते हैं वसे ही हमारे स्तोत्र इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

सूर्य से रक्षित जलो को जो इन्द्र वर्षा रूप मे पृथ्वी पर लाते हैं वे सस्कारित सोम को यहाँ आ ग्रहण करे ॥ ८ ॥

मेघ विदीर्णी वज्र प्रकट होवे। जल दोहक वाणी प्रगट होवे। जैसे सूर्य अपने तेज से प्रकाशित होते है वैसे ही इन्द्र साधुजनो की रक्षा करते हुये तेजस्वी बने ॥ ९ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारी कृपा से प्राप्त गौओ से हमे दरिद्रता को दूर करें। तुम्हारे द्वारा दिया अन्न मनुष्यो की क्षुधा को शान्त करें। हम श्रेष्ठ बने, राजा मे धन प्राप्त करे और शत्रुओ का सहार करे ॥ १० ॥

वृहस्पति, उत्तर और अर्द्ध दिशाओ मे आने वाले

वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यत न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥
वृषा न क्रुद्ध पतयद् रजः स्वा यो अपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥
उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२ ॥

मुझे सुन्दर हाथ और वाणी वाले से इन्द्र की स्तुति की जावे। ये स्वर्ग दायक है। सन्तानाभिलाषी स्त्रियां जैसे पति से लिपटती है जैसे ही पिता को देखकर पुत्र लिपटता है वैसे ही मेरी स्तुतियाँ इन्द्र से लिपटती है ॥ १ ॥

हे इन्द्र! मेरा मन हमेशा तुम मे अनुरक्त रहता है। तुम शत्रु संहारक हो। राजा के समान तुम इस कुशासन पर विराजमान होओ। सस्कार-युक्त सोम का भी पान करो ॥ २ ॥

इन्द्र क्षुधा को दूर कर हमारी दरिद्रता का नाश करें। इन्द्र धननायक है और इन्द्र की सातो नदियाँ अन्न को बढाने वाली है ॥ ३ ॥

पक्षियों के वृक्ष के आश्रय के समान सोम इन्द्र का आश्रय ग्रहण करते हैं। इन सोमों ने सूर्य को प्रकाशित किया और मनुष्यों को प्रदान कराया ॥ ४ ॥

जुआरी के पास ग्रहण करने के समान हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को ग्रहण करें। इन्द्र ने ही सूर्य को आकाश में विद्यमान किया है। हे इन्द्र तुम्हारे समान और कोई बलशाली नहीं बन सकता चाहे वह प्राचीन हो अथवा नवीन होवे ॥ ५ ॥

वे इन्द्र सभी उपासकों के पास एक समय में ही पहुँच कर उनकी स्तुतियों को ग्रहण कर लेते हैं। वे इन्द्र यजमानों द्वारा दिये गये सोम को बल से युद्धाभिलाषी शत्रुओं को वश में करते हैं ॥ ६ ॥

जैसे जल सागर को, छोटी नदियाँ सरोवर को प्राप्त होती है वैसे ही सोम इन्द्र को प्राप्त होते हैं। जैसे जल वर्षक मेघ अन्न की वृद्धि करते हैं वैसे ही हमारे स्तोत्र इन्द्र की वृद्धि करते हैं ॥ ७ ॥

सूर्य से रक्षित जलों को जो इन्द्र वर्षा रूप में पृथ्वी पर लाते हैं वे संस्कारित सोम को यहाँ आ ग्रहण करें ॥ ८ ॥

मेघ विदीर्णी वज्र प्रकट होवे। जल दोहक वाणी प्रगट होवे। जैसे सूर्य अपने तेज से प्रकाशित होते हैं वैसे ही इन्द्र साधुजनों की रक्षा करते हुये तेजस्वी बनें ॥ ९ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारी कृपा से प्राप्त गौओं से हमें दरिद्रता को दूर करें। तुम्हारे द्वारा दिया अन्न मनुष्यों की क्षुधा को शान्त करें। हम श्रेष्ठ बनें, राजा में धन प्राप्त करें और शत्रुओं का संहार करें ॥ १० ॥

बृहस्पति, उत्तर और अर्द्ध दिशाओं में आने वाले

हिंसक प्राणियो से हमारी रक्षा करे । सम्मुख मध्य और चारो ओर से आते हुये पापियो से इन्द्र हमारी रक्षा करे और हमे धन प्रदान करे ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! हे वृहस्पते ! तुम दोनो आकाश और पृथ्वी के धनो के स्वामी हो। अत मुझे धन और रक्षा प्रदान करो ॥ १२ ॥

सूक्त १८ (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि मेधातिथि प्रियमेधश्च, वसिष्ठ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्त सखाय ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोम चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवा· सुन्वन्त न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्रा ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् विद्धी त्वस्य
नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे ।
त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्व वर्मासि सप्रथ पुरोयोधश्च वृत्रहन् ।
त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम कण्वगोत्रिय ऋषि तुम्हारी अभिलाषा से युक्त कल्याणो को स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

हे वज्रिन इन्द्र ! मैं नवीन यज्ञोवसर पर तुम्हारी ही केवल स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

इन्द्रादि देव गण सोम संस्कारित यजमान को चाहते हैं और सोम को देखते ही प्रसाद रहित बन जाते हैं ॥ ३ ॥

हे अभीष्ट दाता इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना युक्त स्तोत्र पढ़ते हैं अत तुम उनकी सुनने की कामना से सुनो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हमको क्रूर वाणी युक्त, निदेक अदानशील शत्रुओं के जाल से छुड़ाओ। मेरी स्तुतियों को स्वीकार करो ॥ ५ ॥

हे वृत्रासुर संहारक इन्द्र ! तुम युद्ध में अग्रगणी रहने वाले धन्य हो। तुम ही मेरी कवच के समान रक्षा करते हो। मैं तुम्हारी सहायता ग्रहण कर शत्रुओं को ललकारता और विजय पाता हूँ ॥ ६ ॥

सूक्त (१६)

(ऋषि—विश्व मित्र। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीन सु ते मन उत चक्षु शतक्रतो।
इन्द्र कृण्वन्तु वाघत ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभि शतेन महयामसि।
इन्द्रस्य चर्षणीधृत ॥ ४ ॥
इन्द्र वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे।
भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो।
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवसु च।
इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! वृत्रासुर हनन के समान शत्रु सहारक तुमको शत्रुओ की सेनाओ के निस्कार के हेतु आह्वान करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम शतकर्मी हो। यज्ञ निर्वाही ऋत्विज तुम्हें हमारे सामने करे और अपनी दृष्टि को भी हमारे सामने करे ॥ २ ॥

हे शतकर्मी इन्द्र ! सग्राम भूमि मे हम तुम्हारे सहस्त्राक्ष और पुरन्दर नामो का गान करते हैं ॥ ३ ॥

अनेको स्तोत्राओ द्वारा पूज्य इन्द मनुष्यो की रक्षा का कार्य करते है। वे सैकडो तेजो से युक्त है अत हम उनकी पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

सग्राम भूमि मे अनेक वीरो द्वारा बुलाये जाते हैं, यज्ञ मे उनको यजमान बुलाते है ऐसे उन इन्द्रो को मे बल प्राप्तनार्थ और पाप निवारणार्थ पूजता हूँ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम सग्राम भूमि मे शत्रुओ का नाश करो। मैं शत्रु नाशक आपका पापनाशन के लिये स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! धन को प्राप्त करने के अवसर पर, युद्ध के अवसर पर, अन्न की सम्पन्नता के अवसर पर, पाप और शत्रुओ कि नाश होने के अवसर पर हमारे सहयोगी बनो और हमे सुख प्रदान करते हुये स्वर्ग की प्राप्ति कराओ ॥ ७ ॥

सूक्त (२०)

(ऋषि—विश्वामित्र । गृत्समद । देवता—इन्द्रः । छन्द गायत्री, अनुष्टुप्)

शुष्मिन्तमम न ऊतये द्य म्निन पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोम शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेष पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्म तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणि ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणि ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक बलशाली, दुस्वान के नाश कर्ता, तेजवान सोम को हमारी रक्षा के निमित्त पान करो ॥ १ ।

हे इन्द्र ! तुम्हारे देखने सुनने योग्य जो बलदेव, पितर, असुर और प्राणी है मैं उनको प्राप्त करू ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमसे अपरिचित अन्न हमको प्राप्त होवे । तुम शत्रु नाशक धन हमे दो । हम सोम और स्तोत्रो द्वारा बल बृद्धि करते हैं ॥ ३ ॥

हे शक्तिशालो इन्द्र ! तुम दूर देश अथवा समीप से हमारे पास आओ ! तुम सोम पान करो ॥ ४ ॥

इन्द्र हमारे भयो को भगाने मे समथ है, वे हमेशा रहने वाले सर्व द्रष्टा है ॥ ५ ॥

इन्द्र हमारी रक्षा कर हमें सुखी करें । दुखो का नाश और कल्याण की प्राप्ति करे ॥ ६ ॥

शत्रुओ का नाश करो और अन्न आदि से हमे परिपूर्ण करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हम धन सम्पन्न होव। हमे प्रजा को प्रसन्न करने की शक्ति प्रदान करो। तुम्हारो कृपामयो बुद्धि को पाकर हम गौओ से सम्पन्न होवे और दु खो को नष्ट करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम सज्जनो की रक्षा करते हो। तुम अभीष्ट फल दाता और शत्रु नाशक हो। यह सोम यजमान के लिये कार्य करते समय तुमको प्रसन्नता प्रदान करें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम मरुद्गण आदि के साथ वज्र के प्रहार से शत्रुओ का नगर सहित विध्वश करते हो। तुम ही मायामयी नमुचि के मारक हो अत हम तुम्हारा स्मरण करते हैं ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम वर्तनी शक्ति से अतिथिगु नामक राजा के करजासुर के सहारक हो और पर्णासुर के भी हननकर्त्ता हो। ऋजिश्वम् राजा के शत्रुओ का भी तुमने विध्वस किया था ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! निसहाय सुश्रुवा राजा को घेरने वाले साठ हजार निन्यानवे सेनाध्यक्षो को इस चक्र से मारा, जिसे शत्रुगण नही पा सकते हैं ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! सुश्रुवा के साथ तुमने तुर्यवाण राजा की भी रक्षा की। तुमने सुश्रुवा को कुत्स, अतिथिगु और आयु का आश्रय प्रदान किया ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! यज्ञ की सम्पन्नता हेतु हम आपसे रक्षा मांगने हैं। हम तुम्हारे सखा रूप बन कर मगल को धारण करें। यज्ञ की पूर्ति पा हम सुन्दर पुत्रो को प्राप्त करते हुये दीर्घायु धारण करे ॥ ११ ॥

सूक्त (२२)

(ऋषि—त्रिशोक,, प्रियमेधः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वृषभा सुते सुत सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ।। १ ।।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दमन् ।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ।। २ ।।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ।। ३ ।।

अभि प्र गोपति गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनु सत्यस्य सत्पतिम् ।। ४ ।।

आ हरय सस्रृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि सनवामहे ।। ५ ।।

इन्द्राय गाव आशिर दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ।। ६ ।।

हे इन्द्र ! संस्कारित सोम पीने को हम तुमको बुलाते हैं। तुम हर्षमयी सोम को उदरस्थ करो ।। १ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारी सहायता न पाते हुये मूर्ख हिंसित न हो जाय। तुम ब्राह्मण द्वेषी की सेवा मत करो। तुम्हारे व्यगी तुम्हे दबाने मे समर्थ न होवें ।। २ ।।

हे इन्द्र ! गोरस मिश्रित द्वारा तुम्हे ऋत्विज प्रसन्न करें। प्यासे मृग के सरोवर पहुँचने के समान तुम सोम पान करो ।। ३ ।।

हे स्तुति करने वाले प्राणियो। जैसे इन्द्र हमे आराना

स्वीकार करें वैसे ही उसका पूजन करो। ये इन्द्र साधुजन रक्षक है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने सुन्दर अश्वो को स्तुति स्थान पर बिछी हुई कुशाओ के समीप लावे ॥ ५ ॥

पास मे रखे हुये मधुर का जब इन्द्र पान करते हैं तो गाये उनको मधुर दुग्ध का दोहन करती है ॥ ६ ॥

सूक्त (२३)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवान सोमपीतये ।
हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रय ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोडाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
उक्थेष्विन्द्र गिर्वण. ॥ ४ ॥
मतय. सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्र वत्स न मातर ॥ ५ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।
न स्तोतार निदे कर॰ ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि ।
इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ मे आहूत किये जाते हुये तुम अपने हरित अश्वो से सोम पीने के निमित्त यहाँ आओ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! यज्ञावसर पर होता, कुशा और सोम के सस्कार करने वाले पाषाण प्रस्तुत हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! इन कुशाओ पर विद्यमान होकर हमारे द्वारा दी हवि को ग्रहण करो। हम तुम्हारी स्तुति करते है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रासुर हनन से स्तुति योग्य हो। अत तुम तीनो सवनो के स्तोत्रो से व्याप्त होओ ॥ ४ ॥

गौ के वत्स के चाटने के समान हमारी स्तुतिया इन्द्र के हृदय मे वास करती है। ५ ॥

हे इन्द्र ! बल पाने को सोम पान करो। मै तुम्हारी स्तुति करता हुआ किसी की निन्दा न करूँ। हर्षित हो हमे धन-धान्य से सम्पन्न करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हम सोममयी हवियो से सम्पन्न हुये तुमको आह्वान करते हैं। तुम हमको अभीष्ट वर्षक बनो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम अश्व प्रिय हो। अपने अश्वो के साथ रथ पर आरुढ हो यहाँ आओ और यज्ञ के सोम का पान करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारी श्रमयुक्त बूँदो से भीगे अश्व तुम्हे रथारूढ कर कुशासन पर लाकर विद्यमान करें ॥ ९ ॥

सूक्त (२४)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता —इन्द्र छन्द—गायत्री)

उप न सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्या यस्ते अस्मयु ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठा ग्रावभि सुतम् ।

कुविन्त्वस्य तृप्णवः ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः ।
आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे ।
उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
विद्मा हि त्वा धनंजय वाजेषु दधृषं कवे ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च नः पिब ।
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये ।
एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यव ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे सोम का पान करो तुम्हारा अश्वो का रथ यहाँ आने की अभिलाषा करता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कुशाओ पर रखे हुये सोम की तरफ आकर इसका पान करो ॥ २ ॥

हमारी स्तुति इन्द्र को यज्ञ मण्डप मे लाने को उनके पास जाती है ॥ ३ ॥

सोम पान के निमित्त हम इन्द्र को स्तुति से आहुत करते हैं वे हमारे यज्ञ मे अनेक बार आयें । ४ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम चमस तुम्हारे निमित्त है अतः इनका पान करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र तुम संग्राम में विजेता हो अतः हम हर्षदायक धन की कामना करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! पाषाणों से संस्कारित गौ रस युक्त सोम का पान करो ॥ ७ ।

हे इन्द्र ! मैं तुम्हें सोम को उदरस्थ करने को उद्धृत करता हूँ यह सोम तुम्हारे हृदय में वास करें ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हम कौशिक तुमसे रक्षा चाहते हुए निष्पन्न सोम के पान को तुम्हें बुलाते हैं ॥ ९ ॥

सूक्त (२५)

(ऋषि—गोतम । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभि ।
तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो
विचेतसः ॥ १ ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रज ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव ॥ २ ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यत ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा
शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त
गोमन्तमा पशुं नर. ॥ ४ ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य
जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य स्तस्येदिन्द्रो
अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभि
शच्या गृणान ॥ ७ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुरुष संग्राम मे अश्वारोहियो के सम्मुख प्रस्तुत हो उन्हे जीतता है। समुद्र मे जल के भरे रहने के समान तुम उसे धन सम्पन्न करते हो। १॥

हे इन्द्र जल के नीचे की ओर बहने के समान हमारी स्तुतियाँ तुम्हारे पास चली जाती है। सूर्य के प्रकाशवत ही तुम्हारे तेज से मनुष्य चकाचोंध हो जाते हैं। स्तोताओ के समान ही ऋत्विज तुम्हारी सेवा कार्य करते हैं॥ २॥

कलशो पर स्तुति योग्य उक्थ स्थापित होते हैं। हे इन्द्र! यह यज्ञ कर्त्ता तुम्हारी कृपा से धन-धान्य, पशु और सन्तान आदि को पाता हुआ सुख प्राप्त करें॥ ३॥

हे इन्द्र! पाणियो द्वारा गौओ के चुराने पर अंगिराओ ने तुम्हे ही पहिले हविरन्न प्रदान किया। ये अंगिरावशी ऋषी सुन्दर कार्यों से युक्त अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। इनके पूर्वजो ने पणि से छीना हुआ, गौ, अश्व, बकरी आदि बहुत सा धन प्राप्त किया था॥ ४॥

महर्षि अथर्वा ने इन्द्र के लिए यज्ञ करते चुराई हुई गायो के मार्ग को सूर्य से पहिले ही जान लिया था। सूर्योदय होने पर उशना ने इन्द्र की सहायता से गौओ को प्राप्त किया था॥५॥

सन्तानोत्पत्ति के फल के निमित्त कुशायें विस्तृत की

जाती है। जिसमे स्तोत्र से स्तुति की जाती है उस यज्ञ मे इन्द्र विराजमान रहते है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! तुम अभीष्ट दाता हो। तुमको मैं सोम रस पीने के लिए प्रेरित करता हूँ। हमारी स्तुतियो से तुम प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

सूक्त (२६)

(ऋषि—शुन शेष, मधुच्छन्दाः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

योगेयोगे तवस्तर वाजवाज हवामहे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥
आ घा गमद् यदि श्रवत् सहस्रिणीभिरूतिभि।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम्।
य ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुष चरन्त परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥
केतु कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ६ ॥

हम सग्रामावसर पर इन्द्र को बुलाते हैं। तथा अन्न प्राप्ति के अवसर पर भी उनको बुलाते है ॥ १ ॥

मेरे स्तोत्रो को श्रवण कर यहाँ पर पधारो॥ २ ॥

तुम प्राचीन यज्ञो के स्वामी और वीरो के नायक हो। मेरे पिता के समान ही मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

इन्द्र के महान, देदीप्यमान, विचरणशील रथ मे हर्यश्व संयुक्त होवें। वे अश्व आकाश मे प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र के सारथी अश्वो को रथ के दोनो ओर जोड़ते है। ये अश्व इन्द्र को रथारुढ कराते हैं। ५ ॥

हे प्राणियो! पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, अन्धकार को भगाने वाले और ज्ञान प्रदान करने वाले सूर्य उदित हो गये है। अत इनका दर्शन करो॥ ६ ॥

सूक्त (२७)

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेय शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे
न ते वर्तास्ति राधः
यद् दित्ससि स्तुतो
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्
चक्राण ओपशं
वावृधानस्य ते वयं
... वृणीमहे
इन्द्र ! तु
धन
गो

हे शचिपते ! तुम्हारी कृपा से मैं धन धान्य से सम्पन्न हो स्तुति करने वालो को धन प्रदान करू ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारी सत्य वाणी गौ के समान तृप्तिकर हो और यजमान की वृद्धि करे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन को देव और मनुष्य नष्ट नही कर सकते है। हमारी स्तुतियो से प्रसन्न होकर दिए गये धन को कोई नष्ट नही कर सकता है ॥ ४ ॥

जो इन्द्र मेघो को विस्तृत करते और पृथ्वी को वर्षा जल से फुलाते हैं, वे ही धान्यो को पुष्ट करते हैं। हम इन्द्र को तब हवियाँ प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियो द्वारा प्रवृद्ध होते हो। हम तुम्हारी शत्रु धन जयो और रक्षात्मक शक्ति को धारण करते हैं ॥६॥

सूक्त (२८)

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सती ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

सोम पान के प्राप्त बल से इन्द्र के द्वारा मेघो को चीरने पर अन्तरिक्ष वर्षा जल से व्याप्त हो गया ॥ १ ॥

इन्द्र के महान, देदीप्यमान, विचरणशील रथ मे हर्यश्व सयुक्त होवें। वे अश्व आकाश मे प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र के सारथी अश्वो को रथ के दोनो ओर जोडते है। ये अश्व इन्द्र को रथारूढ कराते हैं। ५ ॥

हे प्राणियो ! पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, अन्धकार को भगाने वाले और ज्ञान प्रदान करने वाले सूर्य उदित हो गये हैं। अत इनका दर्शन करो ॥ ६ ॥

सूक्त (२७)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।
यद् दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य से युक्त हो। मैं तुम्हारे समान मनुष्यो मे धन का स्वामी बनूँ। तुम्हारे समान ही मेरी स्तुति करने वाला गो आदि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

हे शचिपते ! तुम्हारी कृपा से मैं धन धान्य से सम्पन्न हो स्तुति करने वालो को धन प्रदान करू ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारी सत्य वाणी गौ के समान तृप्तिकर हो और यजमान की वृद्धि करे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन को देव और मनुष्य नष्ट नहो कर सकते है। हमारी स्तुतियो से प्रसन्न होकर दिए गये धन को कोई नष्ट नही कर सकता है ॥ ४ ॥

जो इन्द्र मेघो को विस्तृत करते और पृथ्वी को वर्षा जल से फुलाते हैं, वे ही धान्यो को पुष्ट करते हैं। हम इन्द्र को तब हवियाँ प्रदान करते है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियो द्वारा प्रबृद्ध होते हो। हम तुम्हारी शत्रु घन जयो और रक्षात्मक शक्ति को धारण करते हैं ॥६।

सूक्त (२८)

(ऋषि--गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।
इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ १ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सती ।
अर्वाञ्च नुनुदे वलम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥

सोम पान के प्राप्त बल से इन्द्र के द्वारा मेघो को चीरने पर अन्तरिक्ष वर्षा जल से व्याप्त हो गया ॥ १ ॥

जिन गिराओं को इन्द्र ने कन्दरा में छिपी गायों को प्रदान किया और राक्षसों को अधोमुख कर पतित किया ॥ २ ॥

आकाश में निराधार नक्षत्र और ग्रहों को स्थिरता और दृढ़ता प्रदान की। अतः अब उन्हें कोई गिराने में समर्थ नहीं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा स्तोत्र नदी जल के समान हर्ष दायक होता है। यह मुख से प्रकट होता है। सोम पान कर लेने पर तुम अत्यधिक शक्तिशाली बन जाते हो ॥ ४ ॥

सूक्त (२९)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ।
स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः ।
अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रों और उक्थों से वृद्धि को प्राप्त हो यजमानों को मंगलमयी बना ॥ १ ॥

इन्द्र को दर्शनीय केश युक्त हमारे यज्ञ में इन्द्र को सोम पान के निमित्त आह्वान करें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! नमुचि राक्षस का सिर तुमने जल फेन से बने वज्र से काटा और शत्रुओ पर विजय को पाया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अपनी माया से आकाशगामी असुरो को अधोमुख कर नीचे गिराओ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर बल युक्त बनते हो और जहाँ सोम का अभिषव नही होता वहाँ के समाज को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हो ॥ ५ ॥

सूक्त (३०)

(ऋषि—वरु सर्वहरिर्वा । देवता इन्द्र । छन्द—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु
हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी
दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं
हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो
हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता
मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४ ॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥

अ गिरा भो को इन्द्र से कन्दरा मे छिपी गाओ को प्रदान किया और राक्षसो को अधोमुख कर पतित किया ॥ २ ॥

आक श मे विद्यमान नक्षत्र और ग्रहो को स्थिरता और दृढता प्रदान की। अत अव उन्हे कोई गिराने मे समथ नही। ३।

हे इन्द्र ! तुम्हारा स्तोत्र वर्षा जल के समान हर्ष दायक होता हुआ मुख से प्रकट होता है। सोम पान कर लेने पर तुम अत्यधिक शक्तिशाली वन जाते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त (२६)

(ऋषि—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता - इन्द्र. । छन्द--गायत्री)

त्व हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धन. ।
स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥
इन्द्रमित् केशिना हरी सोमपेयाय वक्षत ।
उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥
अपां फेनेन नमुचे शिर इन्द्रोदवर्तय ।
विश्वा यदजय स्पृध ॥ ३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षत ।
अव दस्यूंरधूनुथा ॥ ४ ॥
असुन्वामिन्द्र संसद विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्रो और उक्थो से वृद्धि को प्राप्त हो यजमानों को मगलमयी बना ॥ १ ॥

इन्द्र को हर्यश्व फल युक्त हमारे यज्ञ मे इन्द्र को सोम पान के निमित्त आह्वान करें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! नमुचि राक्षस का सिर तुमने जल फेन से बने वज्र से काटा और शत्रुओं पर विजय को पाया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! अपनी माया से आकाशगामी असुरों को अधोमुख कर नीचे गिराओ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम पीकर बल युक्त बनते हो और जहाँ सोम का अभिषव नही होता वहाँ के समाज को नष्ट भ्रष्ट कर डालते हो ॥ ५ ॥

सूक्त (३०)

(ऋषि—वरु सर्वहरिर्वा । देवता इन्द्र । छन्द—जगती)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु
हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी
दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं
हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो
हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता
मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद् वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥ ४ ॥
त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व शीघ्रगामी है। तुम शत्रु नाशक हो। सोम पान से उत्पन्न शक्ति द्वारा मेरी अभिलाषा पूर्ण करो। इन्द्र धन के वर्षक हैं। मैं उनका स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥

प्राचीन ऋषियो ने इन्द्र को शीघ्रता से बुलाने के लिए अश्वो को प्रेरित किया वह स्तोत्र मूल रूप से इन्द्र के ही निमित्त था। नव प्रसूता गौ के दुग्ध से प्रसन्न हुए मालिक के समान मेरे स्तोत्र इन्द्र को प्रसन्नता और तृप्ति प्रदान करें ॥ २ ॥

इन्द्र का लोह वज्र भी हरा है और कमनीय देह भी हरे रग का है। इनका बाण तथा सम्पूर्ण साज-सज्जा हरे रग की ही है ॥ ३ ॥

इन्द्र का वज्र सूर्यवती आकाश में स्थित है। सूर्य के अश्वो के समान ही इन्द्र का वज्र गन्तव्य स्थान को प्राप्त होता है। इन्द्र ने वृत्रासुर और उसके अनेक साथियो को शोक से सतप्त किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे केश हरे रग के है। जहा सोम रूप हवि है वहाँ पर तुम हो। तुम स्तुत्य हवि की कामना से युक्त हो। तुम हर्यश्व सहित यज्ञ मे पधारो। ऐसे हे इन्द्र ! यह सोम, अन्न और उक्थ तुम्हारे ही हैं ॥ ५ ॥

सूक्त (३१)

(ऋषि—बरू सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती)

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥ १ ॥
अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो हरी तुरा ।

अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं
हरिवन्तमानशे ॥ २ ॥
हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता
पारिषद्धरी ॥ ३ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय
हरिणी दविध्वत ।
प्र यत् कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वामदस्य
हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं
हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद् वयो दधिषे
हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥

सोमोत्पन्न शक्ति से निमित्त इन्द्र के अश्व उन्हें हमारे यज्ञ मे लाने को उद्धत करते हैं। तीनो सवनो वाले सोम इन्द्र को धारण करते हैं ॥ १ ॥

हरे रग के सोम इन्द्र को युद्ध में धारण करते हैं। सोम ही उनके अश्वो को यज्ञ की ओर प्रेरित करता है। इन्द्र शीघ्र ही यज्ञ मे पधारते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र के केश दाढी, मूँछ सब हरे रग के हैं। वे सस्कारित सोम को पीकर वृद्धि को प्राप्त होते है। वे अपने शीघ्रगामी अश्वो सहित यज्ञ मे पधारते हैं। इन्द्र रथ में घोडो को जोडकर हमारे पापो का नाश करें ॥ ३ ॥

जैसे यज्ञ मे स्त्रुवें चलते है वैसे ही इन्द्र की हरे रग की चिबुक सोम पोने के निमित्त चलती है चमस जब सोम से सम्पन्न

होता है तो इन्द्र की चिबुक फडकती है। उस समय वे अपने अश्वो को परिमार्जन करते हैं ॥ ४ ॥

इनका निवास द्यावा पृथ्वी मे है। अश्वो के युद्ध मे अगसर होने के समान इन्द्र यज्ञस्थान की ओर अग्रसर होते हैं। हे इन्द्र ! हमारा स्तोत्र तुम्हारी कामना करता है और तुम यजमान की कल्याण की कामना करो। यजमान को धन-धान्य से सम्पन्न करो ॥ ५ ॥

सूक्त (३२)

(ऋषि -बरु' सर्वहरिर्वा । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्य नव्य हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्य मसुर हर्यत गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥
आ त्वा हर्यन्त प्रयुजो जनाना रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन् यज्ञ सधमादे
दशोणिम् ॥ २ ॥
अपा पूर्वेषां हरिव' सुतानामथो इद सवन केवल ते ।
ममद्धि सोम मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! आकाश और पृथ्वी तुम्हारे तेज से व्याप्त है। तुम नवीन हो और प्रिय स्तोत्रो को अभिलाषा से युक्त हो। तुम प्राणियो द्वारा अपहृत, गोओ के स्थान को सूर्य को देते हो। सूर्य स्तोत्रा को उन गोष्ठ को प्रदान करें, ऐसी कृपा करो ॥१॥

हे इन्द्र ! तुम सोम पीते हुए हरे रग की ठोडी से युक्त हो। तुमको रथारुढ कर अश्व यहाँ पर लावें। ये अश्व सोम पीने के निमित्त तुम्हे इस मण्डप मे लावें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने प्रात सवन मे सोम ग्रहण किया है अत

अब मध्यान्ह मे भी सोम ग्रहण करो और बल युक्त बनो। यह सोम तुम्हारे निमित्त ही है। सोम को एक साथ हो तुम उदरस्थ करते हुए ग्रहण करो ॥ ३ ॥

सूक्त (३३)

(ऋषि—अष्टक । देवता--इन्द्र । छन्द--त्रिष्टुप्)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभि.
शच्या गृणानः ॥ २ ॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्त सधमाद्यासः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! अध्वर्युओ द्वारा सस्कारित सोम से उदर को भरो। पाषाण द्वारा सस्कारित सोम को पीकर प्रसन्नता से युक्त बनो ॥ १ ॥

हे इन्द्र! तुम अभीष्ट वर्षक हो। मैं तुम्हे सोम की तीव्र बल रूपी शक्ति की ओर प्रेरित करती हूँ। तुम यज्ञ मे हवि और स्तोत्रो को प्राप्त कर प्रसन्न चित्त बनो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारे द्वारा रक्षित पुत्रादि सतान और अन्न से संपन्न हो। ऋत्विज और यजमान तुम्हारी भूरि २ प्रशसा करते है ॥ ३ ॥

सूक्त (३४)

(ऋषि – गृत्समद । देवता—इन्द्र । छन्द— त्रिष्टुप)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स
जनास इन्द्रः ॥ १ ॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान प्रकुपिता अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्ष विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स
जनास इन्द्र ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु
स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाल्लँ क्षमाददर्यः पुष्टानि स
जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
य स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स
जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स
जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥
यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा
यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्यं य उषस जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्र ॥ ७ ॥
य क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्रा ।
समान चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्र ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो य युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत स
जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

व शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स
जनास इन्द्र ।। १८ ।

आकाश और पृथ्वी इन्द्र के बल से भयभीत हैं। इन्द्र ने उत्पन्न होते हो दूसरे देवो को रक्षा रूप मे ग्रहण किया ।१।।

हे राक्षसो ! जिन्होने अस्थिर पृथ्वो को स्थिर किया, जिन्होने पर्वतो के पख काट उन्हे अचल कर दिया, जिन्होने अन्तरिक्ष और आकाश को भी स्थिर किया, वह इन्द्र हैं ।। २ ।।

जिस इन्द्र ने अन्तरिक्ष मेघो को चीर कर नदियो में प्रेरित किया और अपहृत गौओ को प्रकट किया। जिन्होने मेघो मे विद्यमान पाषाणो से बिजली पैदा की, जो युद्ध मे शत्रु नाशक हैं, वह इन्द्र हैं ।। ३ ।।

हे राक्षसो ! दृश्यमान लोको को स्थिरता देने वाले, असुरो को गुफा और कन्दराओ में डालने वाले, प्रत्यक्ष शत्रु विजयी और शत्रु धन को छीनने वाले वह इन्द्र ही हैं।। ४ ।।

इन्द्र के बारे मे लोग विभिन्न प्रकार की शकायें करते हैं। वे शत्रु सैन्य के नाशक हैं। हे मनुष्यो उन पर विश्वास और श्रद्धा करो। बृत्रादि असुरो को उनके अलावा और कोई नही जीत सकता है ।। ५ ।।

जो इन्द्र निर्धन को धनवान और असहाय को सहायता युक्त करते हैं। जो अपने भक्तो को धन धान्य से सम्पन्न करते हैं। सोम को सस्कारित करने वाले के रक्षक, इन्द्र ही हैं ।६।।

जो याचक गणो को देने के लिये बहुत से ऊँट, अश्व, गौ, ग्राम, रथ, हाथी आदि रखते हैं जिन्होने प्रकाश को सूर्य उदय किया है। वर्षा जल के प्रेरक इन्द्र ही हैं ।। ७ ।।

द्युलोक हवि के लिए और पृथ्वी वृष्टि के लिए जिनका एक साथ आह्वान करते है। समान रथ मे बैठे हुए सेनापति जिनका आह्वान करते है वे इन्द्र ही है ॥ ८ ॥

जिनकी बिना अभिलाषा के शत्रु पर विजय नही पा सकते अत. समर भूमि पर वे हमारी रक्षा निमित्त आवे। अचल पर्वतो को हटाने वाले और समस्त जीवो के पुण्य पाप के ज्ञाता इन्द्र ही है। ९ ॥

महापापियो और इन्द्र शक्ति द्वेषी को वे मार देते है। जो अपने कर्म मे इन्द्र को भुला नही सकते उनके अनुकूल रहते है। वृत्रादि राक्षसो के संहारक इन्द्र ही है ॥ १० ॥

यः शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहि जघान दानु शयान स
जनास इन्द्र: ॥ ११ ॥

य' शम्बर पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमान बहुं जन यस्मिन्नामूर्छत् स
जनास इन्द्र ॥ १२ ॥

य सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत सर्तवे सप्त सिन्धून ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्त स
जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्त स
जनास इन्द्र ॥ १४ ॥

य सुन्वन्तमवति य' पचन्त य. शसन्त य शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध
स जनास इन्द्र ॥ १५ ॥

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितु: परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स
जनास इन्द्र: ॥ १६ ॥

य: सोमकामो हर्यश्व: सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीर:
स जनास इन्द्र: ॥ १७ ॥

य: सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्य: ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियास: सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८ ॥

शयन कर्ता वृत्रासुर के संहारक और चालीस वर्ष तक छिपकर पर्वतो मे घूमने वाले शम्बर के संहारक इन्द्र ही हैं ॥ ११ ॥

जिस इन्द्र की हिंसा निमित्त राक्षसो ने सोमयागकर्ता अध्वर्युओ को घेर लिया, बज्रवत शम्बर के हनन कर्ता और निष्पन्न सोम के ग्रहण करने वाले इन्द्र देव ही हैं ॥ १२ ॥

जो जल और अभीष्ट वर्षक हैं, जो सात रश्मियो वाले सूर्य मे विद्यमान हैं, जिन्होने आकाश की ओर चढते हुए रौहणा सुर को वज्र मे मारा और सात नदियो को उत्पन्न करने वाले इन्द्र ही है ॥ १३ ॥

जिसके सम्मुख आकाश, पृथ्वी नतमस्तक रहती है, पर्वत कम्पायमान रहते हैं, जो सोमपायी बल युक्त हैं वे इन्द्र ही है ॥ १४ ॥

हवि देने वाले और सोम को संस्कारित करने वालो के रक्षक हैं उन्हे सोमगान और हमारे स्तोत्र वृद्धि को प्रदान करते हैं। हमारा हवि रत्न उनको पुष्ट प्रदान करता है हे मनुष्यो ! ये वह इन्द्र है ॥ १५ ॥

द्युलोक हवि के लिए और पृथ्वी वृष्टि के लिए जिनका एक साथ आह्वान करते हैं। समान रथ मे बैठे हुए सेनापति जिनका आह्वान करते हैं वे इन्द्र ही है ॥ ८ ॥

जिनकी बिना अभिलाषा के शत्रु पर विजय नहीं पा सकते अत संग्राम भूमि पर वे हमारी रक्षा निमित्त आवे। अचल पर्वतो को हटाने वाले और समस्त जीवो के पुण्य प प के ज्ञाता इन्द्र ही हैं। ९ ॥

महापापियो और इन्द्र शक्ति द्वेषी को वे मार देते हैं। जो अपने कर्म मे इन्द्र को भुला नहीं सकने उनके अनुकूल रहते है। वृत्रादि राक्षसो के सहारक इन्द्र ही हैं ॥ १० ॥

यः शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओज यमान यो अहिं जघान दानु शयान स
जनाम इन्द्र· ॥ ११ ॥

य शम्बर पर्यतरत् कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत् सुनस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमान बहुं जन यस्मिन्नामूर्छत् स
जनास इन्द्र ॥ १२ ॥

य सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत सर्तवे सप्त सिन्धून ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्त स
जनास इन्द्र. ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्म पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
य सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्त· स
जनास इन्द्र ॥ १४ ॥

य सुन्वन्तमवति य पचन्त य· शसन्त य शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध
स जनास इन्द्र ॥ १५ ॥

जातो व्यख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितु' परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स
जनास इन्द्र' ॥ १६ ॥

य. सोमकामो हर्यश्व सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बर यश्च शुष्ण य एकवीर
स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

य सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्य. ।
वय त इन्द्र निश्वह प्रियास सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८ ॥

शयन कर्ता वृत्रासुर के सहारक और चालीस वर्ष तक छिपकर पर्वतो में घूमने वाले शम्बर के सहारक इन्द्र ही हैं ॥ ११ ॥

जिन इन्द्र की हिंसा निमित्त राक्षसो ने सोमयागकर्ता अध्वर्युओ को घेर लिया, बज्रवत शम्बर के हनन कर्ता और निष्पन्न सोम के ग्रहण करने वाले इन्द्र देव ही हैं ॥ १२ ॥

जो जल और अभीष्ट वर्षक हैं, जो सात रश्मियो वाले सूर्य में विद्यमान हैं, जिन्होने आकाश की ओर चढते हुए रो हणासुर को वज्र मे मारा और सात नदियो को उत्पन्न करने वाले इन्द्र ही है ॥ १३ ॥

जिसके सम्मुख आकाश, पृथ्वी नतमस्तक रहती है, पर्वत कम्पायमान रहते हैं, जो सोमपायी बल युक्त हैं वे इन्द्र ही है ॥ १४ ॥

हवि देने वाले और सोम को सस्कारित करने वालो के रक्षक हैं उन्हे सोमगान और हमारे स्तोत्र वृद्धि को प्रदान करते हैं। हमारा हवि रन्न उनको पुष्ट प्रदान करता है हे मनुष्यो ! ये वह इन्द्र है ॥ १५ ॥

जो उत्पन्न होते ही आकाश पृथ्वी मे व्याप्त है। जो पृथ्वी रूपी माता और आकाश रूप पिता को भी नही जानते और जो हमारे स्तोत्रो द्वारा ही देवो को सपन्न करते है वे इन्द्र ही हैं । १६ ॥

सोमाभिलाषी, शम्बर और शुष्ण के हननकर्ता समस्त प्राणी को हराने वाले अत्यधिक बल युक्त वे इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! तुम दुर्धर्ष होने पर भी सोम सस्कार कर्ता को धन धान्य से सम्पन्न करने वाले हो। तुम हमेशा सत्य रूप हो। तुम स्नेह युक्त हो। अत हम पुत्रादि और गवादि धन की कामना करते हुए धन-धान्य युक्त होवें ॥ १८ ॥

सूक्त (३५)

(ऋषि -- नोधाः । देवता--इन्द्र । छन्द-- त्रिष्टुप् ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराव प्रयो न हर्मि स्तोम माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रयइव प्र यसि भराम्याङ्गूष बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये
धियो मजयन्त ॥ २ ॥
अस्मा इदु त्यमुपम स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
म हिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीना सुवृक्तिभि सूरि वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोम स हिनोमि रथ न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्व मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्क जुह्वा समञ्जे ।
वीर दानौकस वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवस दर्माणम् ॥ ५ ॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्र स्वपस्तम स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता
कियेधा. ॥ ६ ॥

अस्येदु मातु सवनेष सद्यो मह्व पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मषायद् विष्णु पचतं सहीयान् विध्यद् वराह
तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते
महिमान परिष्ट ॥ ८ ॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो
ववक्षे रणाय । ९ ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्त वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दानवे सचेता ॥ १० ॥

मैं इन्द्र के निमित्त इस सर्वोत्तम स्तोत्र को बोलता हूँ। सोमपायी इन्द्र ऋचाओ के अनुरूप हैं, महान हैं, बलवान हैं, और अबाध गति युक्त है। मैं प्राचीन ऋषियो के समान ही उन्हे हवि प्रदान करता हूँ॥ १ ॥

मैं अन्नवत इन्द्र के लिए अपने स्तोत्रो को भेजता हूँ। ऋत्विज भी अपने हृदय से इन्द्र की स्तुति करें॥ २ ॥

धनदायक इन्द्र को मैं सुसस्कृत स्तोत्र द्वारा प्रसन्न करता हूँ। मैं इन्द्र को उपमायोग उच्चारणो से प्रसन्न करता हूँ। ३ ॥

रथ शिल्पी द्वारा रथ का निर्माण करने के समान मे इन्द्र को स्तोत्रो का निर्माण करता हूँ। यह इन्द्र स्तुति योग्य और यज्ञ योग्य हैं मैं इन्द्र को स्तुति और हवि देता हूँ॥ ४ ॥

अन्नाभिलाषी मैं हविरत्न को यज्ञ मे देता हूँ। मैं रथ मे अश्व जोडने के समान हवियो को यज्ञ में जोडता हूँ। असुर

घर नाशक, शत्रुजयी, यशवान इन्द्र को स्तुति के निमित्त बुलाता हूँ ॥ ५ ॥

ब्रह्मा ने वज्रायुध को इन्द्र के लिए बनाया। इस आयुध से शत्रु मरण को पाते हैं। वृत्रासुर के मर्मस्थल को इसी द्वारा शत्रु ने भेदा था ॥ ६ ॥

यह इन्द्र सोमयोगात्मक तीनो सवनो मे सोम पान कर जाते है यह उनका असाधारण बल है। इन्द्र सोम के बल से ही शत्रुओ का नाश करते हैं और धनो को छीनते हैं। इन्द्र ने जल निकालने के निमित्त मेघो को चीर डाला था ॥ ७ ॥

वृत्रासुर को मारते समय देव पत्नियो ने इन्द्र के लिए अर्चन साधन स्तोत्र को बढाया और इन्द्र ने विस्तृत आकाश पृथ्वी को अपने तेज से आच्छादित किया द्यावा और पृथ्वी भी इन्द्र की महिमा को कम करने मे समर्थ नही है ॥ ८ ॥

आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष मे इन्द्र की महिमा विस्तुत रुप से फैली हुई है। ये शत्रु नाशक और मेघो द्वारा वर्षा करने वाले हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र के तेज ने सूखते हुये वृक्ष के समान वृत्रासुर को काट डाला और पणियो द्वारा अपहृत गौओ को मुक्त किया। वृत्रासुर द्वारा रोके गये मेघो और जलो को चीर कर निकाला और यजमान को उन्होने अन्न धन से सम्पन्न बनाया ॥ १० ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत्।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो
निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृढा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्या
य नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद् वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू
धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥

इन्द्र के बल रूप तेज से चारो ओर नदियाँ बहती हैं। ये यजमान को धन देने वाले और प्रतिष्ठा युक्त करने वाले हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुम शत्रु का सहार करो, मांसाभिलाषी व्यक्ति के पशु के टुकडे २ करने के समान तुम जलों को पृथ्वी पर प्रवाहित करने के निमित्त मेघो को छिन्न भिन्न कर डालो ॥ १२ ॥

हे स्तोता ! स्तुत्य इन्द्र का प्राचीन कर्मों द्वारा गान करो शत्रु बध के समय जब वे उस पर बारम्बार वज्र प्रहार करें तो उनके गुणो का बखान करो ॥ १३ ॥

इन्द्र के आविर्भाव से पख कटने के भय से पर्वत स्थिर हो गए। आकाश, पृथ्वी भी इनसे कम्पायमान हैं। नोधा ऋषि इनकी स्तुति करते हुए बल युक्त हुए ॥ १४ ॥

हवियो के स्वामी इन्द्र द्वारा स्तुतियो की अभिलाषा की गई अत इन्हे सोम रस का पान कराया गया। इन्होंने ही एतश की रक्षा की ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! गौतम गोत्रिय ऋषि ने तुम्हारी प्रशंसा इन मन्त्रों से की। तुम इन स्तुतियों वालों को धन-धान्य पूर्ण करो। जैसे आज इन्द्र हमारी रक्षा निमित्त पधारें वैसे ही कल हमारे यज्ञ मे पधारें ॥ १६ ॥

सूक्त (३६)

(ऋषि—भरद्वाज । देवता—इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप्,)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्र त गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
य पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्य सत्वा पुरुमायः
सहस्वान् ॥ १ ॥

तमु न पूर्वे पितरो नवग्वा सप्त विप्रासो अभि वाजयन्त ।
नक्षद्दाभ ततुरि पर्वतेष्ठामद्रोघवाच मतिभिः शविष्ठम ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य राय पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षो ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशु सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भाग किं वयो दुध्र खिद्वः पुरहूत
पुरूवसोऽसुरघ्न ॥ ४ ॥

त पृच्छन्ती वज्रहस्त रथेष्ठामिन्द्र वेपी वक्वरी यस्य नू गी ।
तुविग्राभं तुविकूर्मि रभोदा गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥

अया ह त्य मायया वावृधान मनोजुवा स्वतव पर्वतेन ।
अच्युता चिद् वीडिता स्वोजो रुजो वि दृढा
धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥

त वो धिया नव्यस्या शविष्ठ प्रत्न प्रत्नवत् परितसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमान सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।

ल्पा वृषन् विश्वत शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्ष मपश्च ॥ ८ ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसदृक् । धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि माया ॥ ९ ॥

आ सयतमिन्द्र ण स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् । यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो । न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥

मैं इन्द्र को बुलाता हूँ। यह इन्द्र काम्य दाता, सत्य फल रूप वहु कर्मा, बनदाता और समस्त प्राणियो के ईश्वर रूप है। मैं इन इन्द्र का अपनी स्तुतियो से पूजन कर्म करता हूँ ॥ १ ॥

हमारे जिन सात पूर्व पुरुषो ने हवि रूप अन्य से इन्द्र की अभिलापा की और नव महीनो मे सिद्धि प्राप्त की, वे इन्द्र की स्तुति करते हुए पितृ लोक को प्राप्त हुए। ये शत्रु नाशक और दुर्गम जयी है। ये अत्यधिक बली होने से किसी द्वारा भी उल्लघनीय नही ॥ २ ॥

वोर पुत्रो और सेवको से सम्पन्न धन हम इन्द्र से मागते हैं। हे इन्द्र हमें अविनाशी सुख प्रदान करो ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! पूव काल ऋपियो के समान हमे सुख प्रदान करो। यज्ञ भाग का कौन सा सुख है ? तुम शत्रु दु खदायी और वहुत से धनो के स्वामी हो। ४

जिस स्तोता की वाणी को इन्द्र सुनता है उसके लिये वह बहुत सुख प्रदान करता है। ऐसा यजमान शत्रु जयी होता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम मन के समान वेग वाले अपने वज्र और माया से वृत्रासुर और नगरों को नष्ट किया है। जिन्हे अन्य कोई नही कर सकता है ॥ ६ ॥

हे यजमानो ! प्राचीन ऋषियो के समान ही मै भी इन्द्र के नवीन स्तोत्रों द्वारा सजाता हूँ। सुन्दर वाहनो वाले वे इन्द्र हमारी मार्ग बाधाओ को दूर करे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! पृथ्वी, द्युलोक, और अन्तरिक्ष मे राक्षस आदि के स्थानो को ताप सम्पन्न करो और उन्हे भस्म कर दो। ब्राह्मण द्वेषी राक्षसो का नाश करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्वय राजा हो अत वज्र को हाथ मे धारण कर राक्षसी माया का अन्त करो ॥ ९ ॥

हे वज्रिन ! जिस मगल मयी महिमा से शत्रुओ को भी श्रेष्ठ बना देते हो उसे हमको प्रदान करो ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम पूजा योग्य, सभी के निर्माण कर्त्ता और यजमानो द्वारा आह्वानीय हो। तुम्हारे घोडो को देव और मनुष्य कोई भी रोकने मे समर्थ नही। अत तुम शीघ्र ही यहाँ पधारो ॥ ११ ॥

सूक्त (३७)

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।

य शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि
सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय
आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो
दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो
नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि
पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥
प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय
शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व
युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।

तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भू' सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्य् प स्तोन् यूय पात स्वस्तिभिः सदा न ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! टेडे सीग के बैल के समान शत्रुओ को भय उत्पन्न करने वाले हो । तुम हवि न देने वाले के अन्न को हवि दाता को प्रदान करने वाले हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र तुमने कुत्स के निमित्त शुष्ण को दण्ड दिया और कुयव के धन पर अपना अधिकार किया तब तुमने कुत्स का उपचार करके उसके शरीर की रक्षा की ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने वीतहव्य और सुदास की रक्षा की । और तुमने पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु और पुरु की भी युद्ध मे रक्षा की । ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम युद्ध सग्राम मे मरुद्गण साथ अनेक दस्युओ का हनन करते हो । तुमने राजर्षि दभीति के निमित्त वज्र से चुमुरि और धुनि नाम के दस्युओ का सहार किया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने तेज से प्रसिद्ध हो । तुमने बल द्वारा निन्यानवे राक्षस पुरो का नाश कर सोवें पुर मे घुस गये । तुम वृत्र और नमुचि के भी हनन कर्त्ता हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुमने हविदाता सुदास के अनन्त धन प्रदान किया । तुम बहुकर्मी और अभीष्ट दाता हो । तुम्हे लाने के नमित्त हर्यश्वो को तुम्हारे रथ मे जोडता हूँ । हमारी स्तुतियो को तुम ग्रहण करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमारी तुम रक्षा साधनो द्वारा रक्षा करो। हम स्तुति कर्त्ता और विद्वानो मे तुम्हे प्रिय लगे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप यजमान अपने घर मे प्रसन्न रहे। तुम अतिथि सुख को हमे दो। तुम तुर्वश तथा यादव राजाओ को नष्ट करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे अभिगमन के वक्त ऋत्विज तुम्हारे लिए उक्थो को गाते हैं। अत तुम हमको फल प्रदान करो ॥ ९ ॥

हे नरोत्तम इन्द्र ! ये स्तोत्र तुम्हारे सामने आकर हमे धन दें। तुम हमारे पापो का नाश करो और हमे सुख प्रदान करो ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम स्तुतियो और हवियो से प्रसन्न होओ और वृद्धि को प्राप्त करो। हमको धन और पुत्र आदि धन प्रदान करो। हे अग्नि आदि देवगणो ! तुम भी हमारे कल्याणकारी बनो और हमें रक्षा प्रदान कर सुखी बनाओ ॥ ११ ॥

सूक्त (३८)

(ऋषि- इरिम्बिठि, मधुच्छन्दा । देवता— इन्द्र । छन्द गायत्री)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोम पिबा इमम् ।
एद बर्हि सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि न शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वय युजा सोमपामिन्द्र सोमिन ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण ।

इन्द्र वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्यो सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्यय ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमने सोम को पवित्र कर लिया है तुम यहाँ विस्तृत कुशाओ पर बैठकर सोम पान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे घोडो मन्त्र द्वारा रथ मे जुडकर तुम्हे अभीष्ट स्थान को ले जाते हैं। वे अश्व तुम्हे यहाँ लावे ताकि तुम हमारे आह्वान को श्रवण करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हमारे पास सस्कारित सोम को तुम पूज्य ग्रहण करो। हम तुम सोमपायी को वुलाते हैं ॥ ३ ॥

पूजामन्त्र से इन्द्र का पूजन किया जाता है। सोम गान भी इन्द्र की स्तुति रूप गान ही है। ४ ॥

इन्द्र वज्रधारी और उपासको की रक्षा करते हैं। इनके अश्व साथ रहते हैं और मन्त्रो द्वारा रथ मे जुडते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र ने सूर्य को दीर्घ दर्शन निमित्त सूर्य मे आरूढ किया। सूर्य रूपी इन्द्र ने ही अपनी किरणो से मेघो को चीर डाला ॥ ६ ॥

सूक्त (३९)

(ऋषि—मधुच्छन्दा, गोपूक्त्यश्वसूक्तिनी। देवता—इन्द्र। छन्द—गायत्री)

इन्द्र वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य ।
अस्माकस्तु केवलः ॥ १ ॥
व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिनद् वलम् ॥ २ ॥
उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सती ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषु ॥ ५ ॥

हम समस्त ससार के प्राणियों की ओर से इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र ने सोम को ग्रहण कर हर्षित होने पर अन्तरिक्ष को वृष्टि जल से प्रवृद्ध किया। तुमने मेघो को चीरा ॥ २ ॥

अंगिराओ के निमित्त इन्द्र ने गुफा स्थित गौओ को प्रकट किया और निकाला। तुमने अपहरण करने वाले को नीचे गिराया ॥ ३ ॥

आकाश मे प्रदीप्त नक्षत्रो को इन्द्र ने स्थिर किया अतः अब उन्हे कोई हरा नही सकता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! वर्षा के जल से समुद्र आदि को मत्त बनाने के समान यह स्तोत्र तुम्हे मस्त बनाता है। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम सोम ग्रहण कर प्रसन्नचित्त होओ ॥ ५ ॥

सूक्त (४०)

(ऋषि मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्रः, मरुतः । छन्द— गायत्री)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति ।

गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम अभयदाता मरुद्गणों के साथ रहते हो। तुम परस्पर मिलकर एक साथ रहते हो और तुम्हारा तेज एक सा ही है ॥ १ ॥

इन्द्राभिलाषी द्वारा यज्ञ सुशोभित होता है। इन्द्र अत्यन्त तेजस्वी और निष्पापी हैं ॥ २ ॥

हवि देने से वे गर्भत्व को प्राप्त होते हैं, और यज्ञिय नाम प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४१)

(ऋषि—गोतमः। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद् विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥

इन्द्र ने पीछे न हटने वाले वृत्रासुर के निन्यानवे नगरों को नष्ट किया ॥ १ ॥

सूक्त (४२)

(ऋषि—कुरुस्तुति । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १ ॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् ।
इन्द्र यद् दस्युहाभव ॥ २ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपय ।
सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

मैंने इन्द्र से ही सत्यास्पर्शी और अष्ट पदावली और मन शक्ति वाणी को अपने शरीर मे धारण किया है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जब-जब हमने असुरो को नष्ट किया तो द्यावा पृथ्वी ने तुम पर कृपा की थी ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! पवित्र सोम को पान करो और अपने हनु को चलाते हुए बैठे होवो ॥ ३ ॥

सूक्त (४३)

(ऋषि—त्रिशोकः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

भिन्धि विश्वा अप द्विष परि बाधो जही मृधः ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद् वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओ का नाश करो, सग्राम की बाधा को दूर कर हमे ग्रहणीय धन की प्राप्ति कराओ ॥ १ ॥

जो धन स्थिर व्यक्ति और पार्श्वों मे भरा जाता है उसे हे इन्द्र ! हमको प्रदान करो ॥ २ ॥

उपासक जिस धन को प्राप्त करते है और जिसे तुम उनको देते हो उसे हमे भी दो ॥ ३ ॥

सूक्त (४४)

(ऋषि— इरिम्बिठि. देवता—इन्द्र । छन्द - गायत्री)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्र स्तोता नव्य गीर्भिः ।
नर नृषाह मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
त सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराज भरे कृत्नुम् ।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

प्राणियो मे सहनशील, अग्रगण्य, नित्य नवीन और पूजन योग्य मनुष्यो के ईश की मैं स्तोत्रो द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

बहने वाले जल जैसे समुद्र को प्राप्त होते हैं वैसे ही मेरे अन्न और उक्थ इन्द्र को प्राप्त होवे ॥ २ ॥

मैं इन्द्र को शत्रु नाशक के लिए स्तुति से प्रकट करता हूँ । वे यजमानो को धन-धान्य से सम्पन्न करते हैं । मैं उनको हवि द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

सूक्त (४५)

(ऋषि—शुन शेषो देवरात. परनामा । देवता—इन्द्र. । छन्द—गायत्री)

अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जैसे गर्भ धारण करने वाली कबूतरी के पास ही कबूतर जाता है वैसे ही हमारे तर्वना वाले वचन ही तुमको प्राप्त होवें ॥ १ ॥

हे धनेश्वर इन्द्र ! तुम्हारी हम प्रशसा करते हैं । तुम्हारा ऐश्वय सच्चा बना रहे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम शत कर्मी हो । तुम ऊँचे स्थान पर हमारी रक्षा निमित्त खडे होओ । अन्य पुरुषो से द्वेष पाते हुए हम तुम्हारा चिन्तवन करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (४६)

(ऋषि—इरिम्बिठि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योति समत्सु ।
सासह्वांस युधामित्रान् ॥ १ ॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विष ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च न सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! नेता, रणस्थल, मे शत्रु जयी हो और यज्ञो मे ज्योति रूप कर्त्ता हो ॥ १ ॥

हमारे कल्याण को ध्यान मे रखकर वे हमे सब शत्रुओं से आगे बढावें ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपनी दर्शनीय गतियों से अन्नादि से युक्त सुख को हमें प्रदान करते हो ॥ ३ ॥

सूक्त (४७)

(ऋषि—सुकक्ष प्रभृति । देवता—इन्द्र, सूर्य. ; छन्द—गायत्री)

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट दाता हो। वृत्र का नाश को हम उनको हृष्ट-पुष्ट करते है ।। १ ।।

इन्द्र प्रशसनीय, सौम्य और बलयुक्त है। वे यज्ञ मे आते है। उन्हे निग्रहार्थ रज्जू रूप मे किया है ।। २ ।।

वे वज्र समान बल सम्पन्न और अविनाशी होते हुए उतम पुरुषो को धन प्रदान करते है ।। ३ ।।

वाणी तथा गायक इन्द्र की स्तुति करते हैं। पूजा मन्त्रो से भी इन्द्र का पूजन होता है ।। ४ ।।

इन्द्र के अश्व साथ रहते हैं वे मन्त्रो से रथ मे जुडते हैं और वज्रधारी इन्द्र हिरण्य युक्त है ।। ५ ।।

दीर्घ दर्शन के निमित्त इन्द्र ने सूर्य को आकाश मे स्थित किया और वे ही सूर्य रूप होकर मेघो को चीरते है ।। ६ ।।

हे इन्द्र हमारे द्वारा सस्कारित सोम को विस्तृत कुशाओ पर विराजमान हो उदरस्थ करो ।। ७ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व मन्त्रो द्वारा जुडते हैं, वे अभीष्ट स्थान पर तुम्हे ले जाते हैं अत तुम यहाँ आकर स्तुतियो को श्रवण करो ।। ८ ।।

हे इन्द्र ! हमने सोम याग किया है और सोम को तुम आकर ग्रहण करो ।। ९ ।।

तुम्हारा यह रथ समस्त प्राणियो को लाँघ जाता है। उसमे जुते हुए हर्यश्व आकाश मे प्रकाशित होते हैं ।। १० ।।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ।। ११ ।।
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथा ।। १२ ।।

उदुत्य जातवेदस देव वहन्ति केतव ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १३ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभि ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥
अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनां अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥
प्रत्यङ् देवाना विशः प्रत्यङ्ङुदेषी मानुषी ।
प्रत्यङ् विश्व स्वर्दृशे ॥ १७ ॥
येना पावक चक्षसा भुरण्य त जनां अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभि ।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केश विचक्षणम् ॥ २० ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युव सूरो रथस्य नप्त्य ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभि ॥ २१ ॥

इन्द्र के सारथि अश्वो को रथ मे जोडे । यह सवारी देने योग्य और रथ के दोनो ओर रहते है ॥ ११ ॥

हे मनुष्यो ! तुम सूर्य के दर्शन करो । ये ज्ञान को देने वाले और पदार्थों को प्रकाशित करने वाले हैं । इनकी रश्मियां पूर्णत निकल चुकी है ॥ १२ ॥

सूर्य रश्मियां उत्पन्न प्राणियो को जगाती है । ससार को सूर्य रूपी इन्द्र के दर्शन निमित्त उन्हे ऊपर चढाती है ॥ १३ ॥

जैसे रात के जाते ही चोर भाग जाते हैं वैसे ही सूर्य के आते ही नक्षत्र भाग जाते हैं ।। १४ ।।

इनकी ज्ञान प्रदायिनी किरणें मनुष्य को अग्नि के समान दीप्त बाद मे दिखलाई देती हैं ।। १५ ।।

हे इन्द्र ! तुम भव नौका रूप मे विद्यमान हो । तुम सर्व द्रष्टा, ज्ञाता और प्रकाशक रूप मे विद्यमान हो ।। १६ ।।

हे इन्द्र ! तुम देवगणो और प्राणियो के लिए प्रकाशमान होते हो तुम सबके सन्मुख प्रकाशित होते हो ।। १७ ।।

हे पाप नष्ट करने वाले इन्द्र ! पुराने ऋषि-मुनियो द्वारा स्वीकार किये गये रास्ते पर जो मनुष्य चलते है । उन्हे तुम हमेशा दया की दृष्टि से देखते हो ।। १८ ।।

हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियो पर दया करते हो और उन्हे देखते हुए रात और दिन को बनाते हुए तीनो लोको मे भ्रमण करते हो ।। १९ ।।

हे इन्द्र देवता ! तुम्हारी चमकती हुई सात रश्मियाँ अश्व रूप से रथ मे जुडती और तुम्हे खीचती है ।। २० ।।

इन इन्द्र ने सात घोडो को अपने रथ मे जोडा है । वह अपने रथ मे उनके द्वारा चलते हैं ।। २१ ।।

सूक्त (४८)

(ऋषि—उपरिबभ्रव सार्पराज्ञी वा । देवता—गौ । छन्द—गायत्री)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः ।
अभि वत्स न धेनवः ।। १ ।।
ता अर्षन्ति शुभ्रिय पृञ्चन्तीर्वसा प्रिय ।
जात जात्रीर्यथा हृदा ।। २ ।।

वज्रापवसाध्य कीर्तिम्रियमाण्मावहन् ।
मह्यमायुर्घृत पय ॥ ३ ॥
आय गो पृश्निरक्रमादसदन्मातर पुर ।
पितर च प्रयन्त्स्व. ॥ ४ ॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानत ।
व्यख्यन्महिष स्वः ॥ ५ ॥
त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् ।
प्रति वस्तोरहद्यु भिः ॥ ६ ॥

इधर उधर भ्रमण करने वाली गायें जैसे अपने बछडो के सामने जाती है वैसे ही वाणी तुम्हे मधुर शब्दो द्वारा सीचती है ॥ १ ॥

जैसे पैदा हुये बच्चे की माँ अपने बच्चे की रक्षा के लिये उसे हृदय से लगा लेती है वैसे ही सुन्दर-सुन्दर प्रार्थनायें इन्द्र देवता को सजाती हैं ॥ २ ॥

यह वज्र को धारण करने वाले मुझे यश, उम्र, घी दूध दिलावे ॥ ३ ॥

यह सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल को चले गये । उन्होने प्राची मे दर्शन दिखलाकर सब प्राणी मात्र को अपनी रश्मियो से ढक दिया । फिर इन्होने वृष्टि पानी को सीचकर स्वर्ग और आकाश को बनाया वर्षा मे पानी की तरह अमृत को काढने के कारण ये गायें कहलाती है ॥ ४ ॥

प्राणन के बाद व्यापार करने वाले मनुष्यो के शरीर मे सूर्य की प्रभा प्राण के समान है । सूर्य देवता ही तीनो लोको को प्रकाशमान करते हैं ॥ ५ ॥

सूर्य की किरणो से दिन- रात्रि के अंग रूप तीस

मुहुर्त प्राप्त होते हैं। और वेद की वाणी सूर्य के पक्षी के समान आश्रय पाती है ॥ ६ ॥

सूक्त (४९)

(ऋषि—नोधा, मेध्यातिथि । देवता - इन्द्र । छन्द—गायत्री प्रभृति)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथ ।
सं देवा अमदन् वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अघृष्णुहि ।
मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् वि राजति ।
विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत् त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! जब प्रार्थना करने वाले मनुष्य बड़े सुन्दर ढग से प्रार्थना करते है तब सब देवता आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

वे सज्जन पुरुष पर कड़े वचनों की वर्षा न करें हे मंहिष्ठ ! तुम आकाश को आनन्द युक्त करो ॥ २ ॥

हे शक्र ! कड़ी वाणी न बोलो। आप घासों पर आकर प्रसन्न हुये बैठते हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानो ! यह इन्द्र मुसीबतों को नष्ट करने वाले, दर्शन देने वाले एवं चन्द्रमा से प्रसन्न रहने वाले है। तुम्हारे यज्ञ के सम्पन्न होने के लिये हम इन्द्र की प्रार्थना करते हैं जैसे सूर्य द्वारा प्रकाशित हुये दिन के निकलने और छिपने के समय गायें रँभाती हुई अपने बछड़ों की तरफ आती है, वैसे हम भी अपनी प्रार्थनाओं के बल पर इन्द्र के समीप जाते हैं ॥ ४ ॥

जैसे अकाल पड़ने पर सब प्राणी मात्र फल, फूल से युक्त पर्वत की कामना करते है वैसे ही हम दान देने वाले, स्तुत्य, पालन-पोषण करने वाले और गायों से पूर्ण तेजवान धन की प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुमसे बल से पूर्ण अन्न माँगता हूँ। जिस अनाज रूपी धन से भृगु की भूख मिटी और कण्व के बेटे प्रस्कण्व की भी रक्षा हुई। वही धन हम भी माँगते है। ६ ॥

हे इन्द्र! जिस बल पर तुमने समुद्र को भरने के लिये जलों की रचना की वह बल सबको नीचा फल देता है। उनकी महिमा को दुश्मन कभी भी नहीं पा सकते ॥ ७ ॥

सूक्त (५०)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यं ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशु. ॥ १ ॥
कदु स्तुवन्तु ऋतयन्त देवत ऋषि को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वत. कदु स्तुवत आ गम ॥ २ ॥

जो धर्म पर मरने वाले मनुष्यों का अवतार धारण करने वाले, प्रत्येक दिन नये और बलवान् हैं, उनकी कामना करो।

यदि तुम उनकी महिमा का पूरा व्याख्यान न कर सको तो थोड़ा गुणगान करने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है। १ ॥

हे इन्द्र ! कौन सा मुनि तुम्हारे बारे मे वाद विवाद करता है, किस लिए तुम सोम वाले स्तोता के पुकारने पर आते हो और सत्य की प्रार्थना वाले देवता लोग किस लिए तुम्हारी प्रार्थना करते है ॥ २ ॥

सूक्त (५१)

(ऋषि—प्रस्कण्व, पुष्टिगु । देवता—इन्द्र । छन्द – प्रगाथ)

अभि प्र व सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसु सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुत सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
य सुन्वते स्तुवते काम्य वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥

हे स्तुति करने वालो ! उन इन्द्र को प्राप्त करने मे मेरी मदद करो जो इन्द्र बहुत सा धन और अनाज को देन वाले है ॥ १ ॥

जो हवन की सामिग्री देने वाले पुरुष अपने दुश्मनो पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उन्हे मारते है, उन यजमानो के पहाड से जल निकलने के समान धन बरसता है ॥ २ ॥

अभिषव स्तुति करने वाले को जो इन्द्र बहुत सा धन देते हैं, हे स्तुति करने वाले ! तू उन्ही इन्द्र का अच्छी प्रकार से पूजन कर ॥ ३ ॥

इन्द्र के आयुधों से पापी पुरुष भव सागर से पार नहीं हो सकते क्योंकि वे आयुध और सेनाओं के बराबर शान्ति रखते हैं। जैसे खाद्य पदार्थ देने वाला पहाड़ अपने पदार्थों के बल पर ही अपनो को धनवान समझता है। वैसे ही संस्कार किए सोम के पान करने से इन्द्र मे अधिक बल आ जाता है। तो यजमान को इन्द्र धनी बना देते है।। ४ ।

सूक्त (५२)

(ऋषि—मेध्यातिथि देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती)

वय घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।। १ ।।
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।। २ ।।
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे । ३ ।।

हे इन्द्र! जल के समान संस्कारित सोम हमारे पास है। हम तुम्हारी प्रार्थना कर रहे है ।। १ ।

हे इन्द्र! सोम निष्पन्न करने के बाद तुमको बुलावा देते हैं। तुम इस सोम का पान करने के लिए एक प्यासे बैल के समान यहाँ कब आवोगे । २ ।।

हे इन्द्र! तुम बलवान् पुरुष को भी मार देते हो और धन पर काबू कर लेते हो। हम तुमसे गवादि से पूर्ण धन माँगते है ।। ३ ।।

सूक्त (५३)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द- बृहती)

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अय य पुरो विभिनत्योजसा मन्दान शिप्रयन्धस ॥ १ ॥
दाना मृगो न वारण पुरुत्रा चरथ दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाश्चरस्योजसा ॥ २ ॥
य उग्र सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय सस्कृत ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धव नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥

यह सुन्दर चिबुक वाले इन्द्र यज्ञ से आनन्दित होकर दुश्मनो के निवास स्थानो को उजाडते हैं। इसे कोई भी नही जानता कि सोम के सस्कारित होने पर यह कौन सा अन्न लेते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम रथ मे सवार होकर एक प्रसन्न मय हिरण के समान अनेक जगहो पर जाते हो। तुम्हारे भ्रमण को कोई भी नही रोक सकता। तुम अपने बल के कारण ही बडे हो। सोम का सस्कार होने पर तुम यहा आना । २ ॥

जो दुश्मनो द्वारा नही मारे जाते, वे लडाई के मैदान मे डटे रहते है। जिस प्रकार कि पति अपनी पत्नी रत्नो के पास जाता है उसी प्रकार यदि इन्द्र हमारी पुकार को सुने तो अवश्य आवेगे । ३ ॥

सूक्त (५४)

(ऋषि – रेभ । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, बृहती)

विश्वा पृतना अभिभूतर नर सजूस्ततक्षुरिन्द्र
जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठ वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठ
तवस तरस्विनम् । १ ॥
समी रेभासो अस्वरन्निन्द्र सोमस्य पीतये ।
स्वर्पति यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभि ॥ २ ॥

नेमि नमन्ति चक्षसा मेष विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विन समृक्वभि ॥ ३ ॥

युद्ध मे लडने वाली समस्त सेनाओ ने वेहोश करने वाले इन्द्र देवता का वरण किया। वे देवता बहुत ही शक्ति शाली एव उग्र है ॥ ५ ।

यह प्रार्थना करने वाले सोम का पान करने के लिए इन्द्र की विनती कर रहे है। यह सोम उनकी ओर अपनी ओर अपनी रक्षा के लिए जाता है ॥ २ ॥

इन्द्र के वज्र पर एक नजर पडते ही स्तोता उसे नमस्कार करते है। हे स्तोताओ ! ऋक्व नामक पूर्वजो सहित यह व्रज की आवाज तुम्हारे कानो को दु खी न करे ॥ ३ ॥

सूक्त (५५)

(ऋषि—रेभ । देवता—इन्द्र । छन्द-जगती, बृहती)

तमिन्द्र जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुत शवांसि ।
महिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥
या इन्द्र भुज आभर स्वर्वां असुरेभ्य ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ।
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्व गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् त धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥

पैसे वाले, वज्र को धारण करने वाले, लडाईयो मे आगे रहने वाला, शक्तिवान् स्तुत्य इन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ। वे इन्द्र हमारे धन के मार्गों को अच्छे बनावें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग लोक के स्वामी हो। पिशाचो का तुम जिन बांहो से सहार करते है उन्ही भुजाओ द्वारा यजमान

के स्तोता की बढोत्तरी करो और तुमसे परायण ऋत्विज को भी बढ़ाओ ॥ २ ॥

तुम जिस गाय, घोडे आदि को पूर्ण करते हो, उसे सोमाभिषव वाले दक्षिणादाता यजमान को दो, पणि जैसे राक्षसो को न दो ॥ ३ ॥

सूक्त (५६)

(ऋषि--गोतम । देवता--इन्द्र । छन्द—पंक्ति)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु
प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादविः ।
असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते
भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्मां
इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
स गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि
राय आ भर ॥ ४ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा
नोऽविता भव ॥ ५ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद
आ भर ॥ ६ ॥

वृत्रहव इन्द्र को शक्ति और खुशी के लिए आमन्त्रित किया जाता है। उन्हे हम बडी और छोटी सभी प्रकार की लडाईयो में बुलाते है। वे उस समय हममे समा जाय ॥ १ ॥

हे बहादुर ! तुम दुश्मनो के नाश कर्त्ता, पापियो को दण्ड देने वाले और हवन करने वालो को यश देने वाले हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! लडाई के मैदान मे धनवान पुरुष को अपने धन का घमन्ड हो जाने पर तुम अपने हथियारो से किसे मारोगे। किसको धन को दोगे। उस समय तुम अपने धन को हमे देना ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा यज्ञ सरलता से सम्पन्न होने वाला है। तुम खुशी होकर हमे गायें देते हो। तुम धन को तेज करके हमें दो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम बहादुर हो, चन्द्रमा के सस्कारित होने पर प्रसन्नता से भरी शक्ति को धारण करो। हम तुम्हे बहुत बलवान् जानते हैं। तुम हम प्रार्थना करने वाले पुरुषो की रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! यह सभी जीव तुम्हारे वीर्य को पीते हैं। तुम यज्ञ न करने वाले और निन्दा करने वालो के धन को हमें दो ॥ ६ ॥

सूक्त (५७)

(ऋषि--मधुच्छन्दा: प्रभृति । देवता- इन्द्र: । छन्द- वृहती)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

उप न. सवना गहि सोमस्य सोमपा पिब ।
गोदा इद् रेवतो मद ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमाना विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि । ३ ॥
शुष्मिन्तम न ऊतये द्युम्निन पाहि जागृविम् ।
इन्द्र सोम शतक्रतो । ४ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।
इन्द्र तानि त आ वृणे । ५ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावत ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ यहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणि ॥ ८ ।
इन्द्रश्च मृडयाति नो न न पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति न पुरः ॥ ९ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणि ॥ १० ।

जैसे दूध दुहने के लए हम दूधिया या दूध दुहने वाले पुरुष को वुलाते हैं वैसे ही हम प्रत्येक समय अपनी रक्षा हेतु इन्द्र को वुलाते है । १ ।

इन्द्र हमेशा प्रसन्न रहते हैं, वे धनी हैं, गायें देने वाले हैं। हे इन्द्र ! हमारे सोम सवन मे आ करके सोम का पान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम आपकी अच्छी मतियो को जानने वाले

है। तुम हमारी निन्दा मत करवाओ। हमारे यहा आओ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! तुम सैकडो काय करने वाले हो। तुम हमारी मदद के लिए इस शान्ति देने वाले सोम का पान करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! तुम बहुत से कार्यों को करने वाले हो। मैं तुम्हारी उन इन्द्रियो का वर्णन करता हूँ जो देवता पितर आदि मे है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तुम्हारा अपरिमित भोजन हमे प्राप्त हो। तुम हमारे अन्दर चमकते हुए धन को, जो कि दुश्मनो से पार कर सके, हममे विराजमान करो। हम इस प्रकार इस सोम को बढाते हुए तुम्हे शान्ति से सम्पन्न करते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! तुम पास या दूर जहाँ कही हो वही से हमारे पास आओ हे वज्रधारी! अपने सुसज्जित लोक से भी सोम का पान करने के लिए इस पूजनीय घर मे आओ ॥ ७ ॥

हे ऋत्विज! वह इन्द्र बडे से बडे डर को भो दूर करने वाले हैं। उन इन्द्र को कोई मिटा नही सकता, वे सर्व शक्तिमान हैं ॥ ८ ॥

यदि इन्द्र हमारी मदद करें तो हमारे दु खो को मिटाकर सुख को द। वे हमेशा आनन्द करने वाले हैं ॥ ९ ॥

वे इन्द्र! चारो दिशाओ मे बैठे हुये हमारे बैरियो को दखते हैं। वे सब दिशाओ और उपदिशाओ से प्राप्त होने वाले हमारे डर को दूर करें ॥ १० ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्त कद् वयो दधे
अय यः पुरा विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धस ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारण पुरुत्रा चरथ दधे .

नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥

इसे कोई भी नही जानता कि सोमाभिषव के अवसर पर यह कौन से अन्न से बलवीर इन्द्र दुश्मनो के निवास स्थानो को अपने बल पर उजडते है ॥ ११ ॥

तुम रथ मे चढकर एक प्रसनन हिरण के समान अनेको जगहो पर जाते हो। सोमाभिषव काल मे तुम्हें रोकने की किसी मे ताकत नही है। तुम अपनी शक्ति के ऊपर ही घूमते हो। इसलिए सोम के संस्कारित होने के बाद यहाँ आओ ॥ १२ ॥

जो दुश्मनो से शक्तिवान होने पर भी रण से पीठ मोडते हैं जैसे अपनी पत्नी के पास उसका पति जाता है वैसे ही ये इन्द्र प्रार्थना करने वालो के आह्वान करने पर आते हैं ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! पवित्र होने के कारण पानी के समान पतले हुए सोम से पूर्ण हम ऋत्विज तुम्हारा स्तोत्र करते हुए बठे हैं ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! सोम के निष्पन्न हो जाने पर गाने वाले तुम्हे बुलाते हैं। तुम एक बैल की तरह प्यासे होकर कब हमारे सोम का पान करने के लिये आओगे ॥ १५ ॥

है । तुम हमारी निन्दा मत करवाओ । हमारे यहाँ आओ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों काम करने वाले हो । तुम हमारी मदद के लिए इस शान्ति देने वाले सोम का पान करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम बहुत से कार्यों को करने वाले हो । मैं तुम्हारी उन इन्द्रियों का वर्णन करता हूँ जो देवता पितर आदि में है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा अपरिमित भोजन हमें प्राप्त हो । तुम हमारे अन्दर चमकते हुए धन को, जो कि दुश्मनों से पार कर सके, हममें विराजमान करो । हम इस प्रकार इस सोम को बढ़ाते हुए तुम्हें शान्ति से सम्पन्न करते है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम पास या दूर जहाँ कहीं हो वहीं से हमारे पास आओ हे वज्रधारी ! अपने सुसज्जित लोक से भी सोम का पान करने के लिए इस पूजनीय घर में आओ ॥ ७ ॥

हे ऋत्विज ! वह इन्द्र बड़े से बड़े डर को भी दूर करने वाले हैं । उन इन्द्र को कोई मिटा नहीं सकता, वे सर्व शक्तिमान हैं ॥ ८ ॥

यदि इन्द्र हमारी मदद करें तो हमारे दुःखों को मिटाकर सुख को दें । वे हमेशा आनन्द करने वाले हैं ॥ ९ ॥

वे इन्द्र ! चारों दिशाओं में बैठे हुये हमारे बैरियों को दलते हैं । वे सब दिशाओं और उपदिशाओं से प्राप्त होने वाले हमारे डर को दूर करें ॥ १० ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्त कद् वयो दधे
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

जैसे तीनो लोको के स्वामी इन्द्र के लिये कणवो की प्रार्थनाय होती है जैसे धाता अर्चमा आदि सूर्य अपने प्रेमी इन्द्र मे प्राप्त होते हैं, जसे भृगुवशी मुन्दि इन्द्र को शरण लेते हैं, वंसे ही सुमति वाले पुरुष इन्द्र का ही ध्यान धरते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र का यज्ञ का भाग विजयी हुये धन के बराबर होता है। जो इन्द्र हर्यस्य वाले हैं, उन पर पाप का कोई भी कलक नही लग सकता। सोम देने वाले यजमान मे यह इन्द्र शक्ति देते हैं ॥ ३ ॥

हे स्तुति करने वालो ! सुन्दर, तीक्ष्ण और रूप प्रदान करने वाले यज्ञ के मन्त्रो को वोलो। जो पुरुष इन्द्र की सेवा करता है वह पहिले बन्धनो से मुक्ति होकर कल्याण को प्राप्त होता है ॥ ४ ।

सूक्त (६०)

(ऋषि- सुतकक्षः सुकक्षो वा, मधुच्छन्दाः। देवता-इन्द्र। छन्द—गायत्री)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिर ।
एवा ते राध्यं मन ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभि ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमत ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्या काम्या स्तोम उक्थ च शस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम बहादुर हो ! अडिग हो एव बुरे कार्य करने वाले वीरो को रोकने वाले हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे पास बहुत धन है। तुम मेरे मददगार बनो। अपनी पालन करने वाली शक्ति से हम यजमानो मे दान देने वाली शक्ति को प्रदान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्नो के स्वामी हो। तुम ब्रह्मा के समान नीद मे मत सोओ। तुम सुमति प्रदान करने वाले सस्कारित सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्द मे भरो ॥ ३ ॥

इन्द्र की पृथ्वी गायो को देने वाली है। वह हवन सामिग्री देने वाले को पकी हुई डाली के समान हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हवि प्रदान करने वाले यजमान की रक्षा के लिए तुम्हारी मदद शीघ्र ही मिल जाती है ॥ ५ ।

इन्द्र को सोम का पान कराते समय स्तोत्र, उक्थ और शस्वा नाम की प्रार्थनायें सुनायी देती हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (६१)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

त ते मदं गृणीमसि वृषण पृत्सु सासहिम ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तम्वभि प्र गायत पुरुहूत पुरुष्टुतम् ।
इन्द्र गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टत एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

हे वोज्रन ! वैरियो को हराने वाले, घोडो को श्री से युक्त और अभीष्टो के वर्षक आपकी खुशी की हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुमने आयु और मनु को जिस सोम के प्रभाव से ओजवान बनाया था, उसी सोम से ताकतवान हुए तुम इस यजमान को कुशा के शासन पर बैठाओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये उक्थ गायक आपके यश को बखान रहे है। तुम हर अवसर पर धर्म के कर्म करते हुए विजयी हो ॥ ३ ॥

वे इन्द्र अनेको के द्वारा स्तुत है। अनेको ने उनको बुलाया। आप उन्ही इन्द्र की महिमा के गुण गाओ। तथा स्तुति रूप वाणी से उन्हे उपस्थित करो ॥ ४ ॥

द्यावा पृथ्वी जिन इन्द्र के धर्म आश्रय के कारण उनके महान, ताकत, नीर, पहाड तथा वज्र को धारण करते है उसी इन्द्र का अर्च करो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम ओजस्वी तथा यशशाली हो। अकेले ही अपने दुश्मनो का सहार करते हो ॥ ६ ॥

सूक्त (६२)

(ऋषि—सोभरिः प्रभृति। देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती, उष्णिक्)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूर न कच्चिद् भरन्तोऽवपस्वः ।

वाजे चित्र हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नतये स नो यवोग्रश्चकाम यो धृषत् ।
त्वामिद्धयविनार ववृमहे सखाय दन्द्र सानसिम ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुष ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पति चर्षणीसह स हि ष्मा यो अमन्दत् ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्य स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वभिन्द्राभिभूरसि त्व सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राज ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचन दिवः ।
देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूत पुरुष्टुतम् ।
इन्द्र गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।
गिरींरज्रां अप स्ववृंषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुम सदैव नये रहते हो। अन्न पाने के मौके पर हम रक्षा की कामना वाले ही तुमको आहूत करते हैं। विजय हमारी ही कराओ शत्रुओ की तरफ मत जाओ। जैसे गुण वाले राजा को जीत की इच्छा से बुलाते हैं उसी तरह हम आपको बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कार्य के मौके पर आप ही हमारे सहारे हो, तुम दुश्मनो को वश मे करने वाले, रोजाना युवा और पराक्रमी

हो, तुम हमारे मददगार के रूप में मिले, आप हमारी रक्षा करो और हमारे मित्र हो ।। २ ।।

हे यजमानो ! आपकी रक्षा को मैं इन्द्र के लिए बुलाता हूँ । हमारे लिए इन्द्र पहले ही गौ आदि का धन समपण कर चुके है मैं उस इन्द्र की वन्दना करता हूँ जो हमको अभीष्ट फल दिलाने मे समथ रखते हैं ॥ ३ ॥

जो मनुष्यो की रक्षा करने वाले इन्द्र हैं, जिनके हरे रग के घोडे है जो सबके नियमक हैं जो प्राथनाओ से खुश हो जाते हैं । मैं उन्ही इन्द्र की वन्दना करता हूँ वह इन्द्र घोडे और गौये हम भक्तो को दें ।। ४ ।।

हे स्तुति करने वालो ! तुम धर्मात्मा तथा पडित हो । उम बडे इन्द्र की साम गान से वन्दना करो ।। ५ ।।

हे इन्द्र ! तुमने ही दिवाकर को आकाश मे चमकाया तुम वैरियो के तिरस्कारक विश्वे देवा और बडे विश्वकर्मा हो ।। ६ ।।

हे इन्द्र ! तुम्हारे मित्र भाव को देवगण प्राप्त हैं । स्वर्ग मे चमकते हुए सूर्य तुम्हारे ही द्वारा प्रकाशवान है । ७ ।।

हे प्रार्थीयो ! वह इन्द्र बहुतो के द्वारा आहूत किये जा चुके है । बहुतो ने उनकी प्रार्थनायें की हैं। तुम भी उन्ही पराक्रमी इन्द्र को प्रार्थनाओ से अलकृत करो ।। ८ ।।

जिस इन्द्र के यश से आकाश, भूमि, जल, पर्वत, वज्र ताकत और स्वर्ग को पहनते हैं, उसी इन्द्र की सेवा करो ।। ९ ।।

हे इन्द्र ! तुम विजयात्मक महिमा के लिये ओजस्वी हुए हो । आप अकेले ही दुश्मनो को मार डालते हैं ॥ १० ॥

सूक्त (६३)

(ऋषि—भुवन साधनो वा, भरद्वाज, गोतमः, (रवेत) । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः
सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्ववितां तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा
देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥
य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्यत्त्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् ।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँइव प्रचोदयः ।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

यह इन्द्र ! सारे विश्व के देवताओं को और भुवन सुख

सूक्त (६४)

(ऋषि—नृमेध, विश्वमना । देवता—इन्द्र । छन्द – उष्णिक्)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतस्पृथु पतिर्दिव ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
त्व हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योमनोर्वृध पतिर्दिव. ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तर सिञ्च वाध्वर्यो अन्धस ।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणा नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
त वो वाजाना पतिमहूमहि श्रवस्यव ॥
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! सत्य के द्वारा ही तुम अजेयी हो, तुम हमारे प्यारे हो, तुम्हे कोई आच्छादित नही कर सकता । तुम स्वर्ग के स्वामी और स्वर्ग के समान विस्तार युक्त हो । हम तेरे प्रिय बने ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रत्यक्ष से सोम पीने वाले हो और तुम आकाश-भूमि मे व्याप्त हो । तुम स्वर्ग के अधीश्वर और सोमाभिषव वाले की उन्नति करते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम राक्षसो को मारने वाले तथा उनके दृढ पुरो का सहार करने वाले हो ॥ ३ ॥

हे अध्वर्युओ ! शहद से भी अधिक मीठा इन्द्र को अन्न

मे शांति करो। :मान ी यह इन्द्र सदैव वृद्धि करने हैं और मागो को पूरा कराते है। ४।

हे इन्द्र ! तुम अपने हयश्वो पर चढ़ते हो तुम्हारे पुराने कार्य वाले बलो और कल्याणों की समानता कोई नही कर सकता आपकी प्रार्थनाओ को कोई नही पा सकता ॥ ५ ॥

हम अन्न की इच्छा करते है। अन्न के स्वामी इन्द्र को हम त्यागते है। नियमानुसार किये जाने वाले यज्ञानुष्ठानो से यह इन्द्र लगातार उन्नति प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (६५)

(ऋषि विश्वमना । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)

एतो न्विन्द्र स्तवाम सखाय स्त म्य नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्य वचः ।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राध पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यह इन्द्र वन्दनीय हैं हम सब मित्र रूप उनके इधर सिधारने के लिए प्रार्थना करते हैं ये इन्द्र सारे फलो के कर्मों के फल के देने वाले हैं ॥ १ ॥

हे प्रार्थीयो ! इन तेजस्वी दर्शनीय वाणो रूप अन्न वाले, गायो के रोकने मे असमर्थ ऐसे इन्द्र को शहद घी से भी मधुर वाणा बोलो ॥ २ ॥

कार्य साधन के लिये यह इन्द्र वेए

दीप्तमती दक्षिणा के रूप हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (६६)

(ऋषि—विश्वमना । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

स्तुहीन्द्र व्यश्ववदनूर्मि वाजिन यमम् ।
अर्यो गय महमान वि दाशुषे ॥ १ ॥
एषा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशम नवम् ।
सुविद्वास चर्कृत्य चरणीनाम ॥ २ ॥
वेत्था हि निऋतीना वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरह शुन्ध्यु परिपदामिव ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! अपने घोडो को खोल कर जो इन्द्र निस्वार्थ भावना से यज्ञ मे बठे हैं उन्ही प्रशसा क साथ इन्द्र का यजमान के कुशलता के लिए प्रार्थना करो । १ ।

वे इन्द्र सदव नवीन, मेधावी है, तुम उसी इन्द्र की पूजा करो । २ ॥

हे वज्रिन ! जैसे आदित्य अपने परिषदो के ज्ञाता है वसे ही तुम सतप्त करने वाले सशक्त राक्षसो के जानने वाले हो ॥ ३ ॥

सूक्त ६७ (छटवां अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेप, गृत्समद देवता—इन्द्र मरुत, अग्नि । छन्द—अष्टि जगती)

वनोति हि सुन्वन् क्षय परीणस सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विष ।
सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृत ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् । १ ॥
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन् द्युम्नानि
मोत जारिषुरस्मत् पुरोत जारिषु ।

यद् वश्चित्र युगेयुगे नव्य घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टर दिघृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥
अग्नि होतार मन्ये दास्वन्त वसु सूनु सहसो
जातवेदस विप्र न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिष ॥ ३ ॥
यज्ञै समिश्ला पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभासो
अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसाद्या बर्हिर्भरतस्य सूनव पोत्रादा सोम
पिबता दिवो नर ॥ ४ ॥
आ वक्षि देवां इह विप्र यक्षि चोशन् होतर्नि
षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थित सोम्य मधु पिबाग्नीध्रात् तव
भागस्य तृष्णुहि ॥ ५ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धन सह ओज प्रदिवि बाह्वोर्हित ।
तुभ्य सुतो मघवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा
तृपत् पिब ॥ ६ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिद हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभि प्रस्थित सोम्य मधु पोत्रात् सोम द्रविणोद
पिब ऋतुभि ॥ ७ ॥

सोमाभिषवकर्ता अपने बैरियो का और देवगणो के दुश्मनो का पराभव करता है, वह अनेको घरो को पाता हुआ, अनेक प्रकार के पदार्थों की कामना रखता है। वह अपने दुश्मनो से घिरा हुआ न रहकर अन्नवान होता है उसको इन्द्र सारे पदार्थों को दे देते हैं ॥ १ ॥

हे मरुतो ! हमारे प्रत्यक्ष आकर तुम्हारा संताप देने

वाला तेज हमे वृद्ध न करें। तुम्हारा जा नवीन, चयनयोग्य अविनाशी वल है, उस दुश्मनो को बुरे पाप बल को हममे दो ॥ २ ॥

अग्नि देव, धन के देने वाले, देव होता पैदाइसो के ज्ञाता और ताकत के अनुज हो। यज्ञ को यह अपनी ज्वालाओ से सजाते हैं और आहूत घो के बूदो से तथा उसकी दोप्ति की कामना करते हैं ॥ ३ ॥

हे मरुतो ! स्वर्ग के तुम नेता हो। परिणाम देते समय आप अपनी पृष्ती नाम की घोडीयो द्वारा यज्ञ मे भेजते हो। तुम इन कुशाओ पर बैठकर सोम को पीओ ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! इस यज्ञ मे लाकर के देवगणो की पूजा करो। तुम तीनो स्थानो मे विद्यमान होकर होता के समान तुम हवि को पाओ और मीठे सोम को पीकर सतुष्ट होओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे शरीर को पुष्ट करने वाला है औरो को पराभूत करने के लिए आपकी भुजाओ मे ताकत तथा तेज आपके अन्दर विद्यमान हैं। हे इन्द्र ! यह सोम अभिषुत होकर तुम्हारे लिए वर्तन मे रखा है तुम ब्राह्मन के तृप्त होने पर इसको पियो ॥ ६ ॥

मैं पूर्ववत् इन्द्र को बुलाता हूँ। यह हवि वभव देने वाली है। हे इन्द्र ! अध्वर्युओ द्वारा प्रदत्त इस सोमरूपी शहद को पिओ ॥ ७ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता – इन्द्र । छन्द—गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ।

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मद ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

दूध दुहने के लिए आसानी से जिस प्रकार उस ग्वारिया को बुलाते हैं उसी तरह रक्षा के समय पर हम बार-बार इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

को समर्पित करते है। हे इन्द्र! इन सोम सवनो मे आकर सोम का सेवन करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! आपके पास जो मेधावी हैं, उसे हम जानते हैं, तुम हमारी निंदा न होने दो एव हमारे यहाँ पर पधारो ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ! इन्द्र की कोई भी निन्दा नही कर सकता, वे इन्द्र सखाओ का कुशल ही करते हैं, उन्ही के यहाँ पर ठहरो ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ! तुम इन्द्र के ही शरणार्थी बनो जिससे हमारी कोई भी निन्दा न करे ॥ ५ ॥

हम इतने यश वाले हो जिसको हमारे दुश्मन भी बखान करें। इन्द्र हमको सुखशाली करें तथा हम अच्छी खेती से युक्त होवें ॥ ६ ॥

हे स्तोता! मनुष्यो को यह इन्द्र मुदित करले, मित्रो को खुश करते तथा यज्ञ की शोभा रूप हो, इन इन्द्र का घोडे के ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

हे इन्द्र तुम सोम का सेवन करके वृत्र के लिये धन के तुल्य हो तथा लडाई के मैदान मे हमारे घोडो की रक्षा करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! तुम सैकडो कार्यों के करने वाले हो। हम हवियो के द्वारा तुम्हे बुलाते हैं। हे इन्द्र! धन प्राप्ति के लिए हम तुमको यज्ञ मे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र धन के पालन करने वाले एव रक्षा करते है। सोम का चूडाकडनादि करने वाले के लिए वे मित्र तुल्य है। हे स्तोताओ! तुम यहाँ पर आओ तथा इन्द्र के गुणो को गाईए ॥ १०-११ ॥

उप न. सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब ।
गोदा इद् रेवतो मद ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् ।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत ।
दधाना इन्द्र इद् दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् ।
पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः ।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥

दूध दुहने के लिए आसानी से जिस प्रकार उस ग्वारिया को बुलाते हैं उसी तरह रक्षा के समय पर हम बार-बार इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥ १ ॥

को समर्पित करते है। हे इन्द्र ! इन सोम सवनो मे आकर सोम का सेवन करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आपके पास जो मेधावी हैं, उसे हम जानते है, तुम हमारी निंदा न होने दो एव हमारे यहाँ पर पधारो ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ ! इन्द्र की कोई भी निन्दा नही कर सकता, वे इन्द्र सखाओ का कुशल ही करते हैं, उन्ही के यहाँ पर ठहरो ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के ही शरणार्थी बनो जिससे हमारी कोई भी निन्दा न करे ॥ ५ ॥

हम इतने यश वाले हो जिसको हमारे दुश्मन भी बखान करें। इन्द्र हमको सुखशाली करें तथा हम अच्छी खेती से युक्त होवें ॥ ६ ॥

हे स्तोता ! मनुष्यो को यह इन्द्र मुदित करते, मित्रो को खुश करते तथा यज्ञ की शोभा रूप हो, इन इन्द्र का घोडे के ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

हे इन्द्र तुम सोम का सेवन करके वृत्र के लिये धन के तुल्य हो तथा लडाई के मैदान मे हमारे घोडो की रक्षा करो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! तुम सैकडो कार्यों के करने वाले हो। हम हवियो के द्वारा तुम्हे बुलाते हैं। हे इन्द्र ! धन प्राप्ति के लिए हम तुमको यज्ञ मे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

इन्द्र धन के पालन करने वाले एव रक्षा करते है। सोम का चूडाकडनादि करने वाले के लिए वे मित्र तुल्य है। हे स्तोताओ ! तुम यहाँ पर आओ तथा इन्द्र के गुणो को गाईए ॥ १०-११ ॥

हे स्तोताओ ! वरण करने वालों के वे भगवान अत्यन्त बड़े हैं उन्हें सोमाभिषव होने पर बुलाओ ॥ १२ ॥

सूक्त (६८)

(ऋषि—मधुच्छन्दः । देवता—इन्द्र, मरुत । छन्द—गायत्री)

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये ।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः ।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः ।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो ।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् ।
यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥

केतु कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे ।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इन्द्र सोच के समय पर हमारे प्रत्यक्ष आविर्भूत होते हैं, अन्नो सहित वे हमारे समोप आवे ॥ १ ॥

जिन इन्द्र के युद्ध रत होने पर इनके आँसुओ को दुश्मन नही घेरते, हे स्तोताओ ! उस इन्द्र को प्रार्थना करो ॥ २ ॥

सोम दही मिश्रित पवित्र है । यह सोम पायो इन्द्र के भक्षण के लिए आगे हो रहे हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम का सेवन करने के लिये ही जल्दी से अपने शरीर की वृद्धि करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! स्फूर्ति देने वाला सोम तुम्हारे शरोर मे प्रवेश करें और वे तुम्हे सन्तुष्ट करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हे स्तोम, उकथ्य और हमारो वाणी तुल्य प्रार्थनाओ को तेज करें ॥ ६ ॥

जिस इन्द्र के अन्द्र हजारो पराक्रम विद्यमान हैं, वे इन्द्र यज्ञ कार्य की रक्षा करते है हम उन्ही की पूजा करें ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! दुश्मन हमारी देह के प्रति द्वेष भावना न रखें । तुम हमारे हत्या रूप कारण को दूर करो, तुम हमारे अधिपति हो ॥ ८ ॥

इन्द्र के रथ मे हर्यश्व जोडे जाते हैं वे आकाश मे चमकते हुए स्थावर जगम जोवो को लाँघते हैं ॥ ९ ॥

साथो इन्द्र के रथ मे हर्यश्वो को जोडते है । वह रथ के दोनो तरफ रहने वाले घोडे की इच्छा करने योग्य, चढने के योग्य है और सत्रो को वशी भूत करते हैं ॥ १० ॥

हे मृत-धर्मा मनुष्यो ! अज्ञानी को ज्ञान देने और अँधेरे मे छिपे रूप रहित पदार्थ को रूप देने वाले सूर्य रूप इन्द्र अपनी रश्मियो रहित निकल आये है उनके दर्शन करो ॥ ११ ॥

हवि देने वाले यह मरुद्गण गर्भत्व को प्राप्त हुए और यज्ञिय नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ १२ ॥

सूक्त (७०)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र मरुत । छन्द—गायत्री)

वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभि ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसु गिर ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण स हि दृक्षसे सजग्मानो अबिभ्युषा ।
मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मख सहस्वदर्चति ।
गणैरिन्द्रस्य काम्यै ॥ ४ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिर ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्र महो वा रजस ॥ ६ ॥
इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण. ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्यो सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्यय ॥ ८ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।

वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभि: ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तुमने उषा के बाद ही अपनी ज्योतिममता शक्तियों से गुफा में छिपे हुए धन को पाया ॥ १ ॥

हे स्तुतियो ! हम देवगणों की कामना वाले प्रार्थी, अपनी बुद्धि को इन्द्र के समक्ष प्रस्तुत करें। इस प्रकार उस यशशाली इन्द्र की प्रार्थना करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदव ही निर्भीक मरुतों के साथ देखे जाते हो। तुम रोजाना ही मरुतों के साथ खुश रहते हो। तुम्हारा और उनका एक सा ही ओज है ॥ ३ ॥

इन्द्र की इच्छा करने वालों से यज्ञ सजता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रकाशवान स्वर्ग से आओ। हमारी वाणी रूप प्राथनायें इन्द्र में ही जुडती हैं ॥ ५ ॥

भूमि पर इन्द्र हो, महर्लोक में हो या स्वर्ग में हो, वे जहाँ कहीं पर भी हों वहाँ से उन्हें बुलाना चाहते हैं ॥ ६ ॥

पुजारी यजमान इन्द्र की पूजा करते है, प्रार्थी इन्द्र के ही महिमा का बखान करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र के सग रहने वाले घोड़े मन्त्रों द्वारा रथ में जोड़ें जाते हैं। वे पुरुषों के शुभचिंतक इन्द्र वज्र को धारण करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्र ने ही सूर्य को बहुत दर्शन के लिए स्वर्ग में चढ़ा दिया तथा इन्द्र ने ही सूय रूप से अपने रश्मियों द्वारा बादल का भेदन किया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! उत्तम धन प्राप्त कराने वाले लड़ाइयों में अपने असीमित रक्षा साधनों से रक्षा करो ॥ १० ॥

इन्द्र वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युज वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमु चरु सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यनप्रतिष्कुत ।। १२ ।।
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिण ।
न विन्धे अस्य सुष्टतिम् ।। १३ ।।
वृषा यूथेव वसग कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुत ॥ १४ ।।
य एकश्चर्षणीना वसूनामिरज्यति ।
इन्द्र पञ्च क्षितीनाम् । १५ ।।
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य ।
अस्माकमस्तु केवल ।। १६ ।।
एन्द्र सानसि रयिं सजित्वान सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ।। १७ ।।
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासोऽन्यर्वता ।। १८ ।
इन्द्र त्वोतास आ वय वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृध ।। १९ ।।
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ।। २० ।।

वृत्र पर यह इन्द्र वज्र फेकते है। कम या बहुत धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही बुलाते है ।। ११ ।।

हे इन्द्र! तुम सत्य धन के प्रदाता हो तथा फलो के वर्षक तुम हटाने से तुम किसी से भी हटते नही। इस चरु का सेवन करो और हमारी उन्नति करो ।। १२ ।।

मैं धन पाने के हर समय पर तथा समान मिलने पर धन से तृप्त करता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रो पर ध्यान मे लाता हूँ, उसमे इन्द्र का छोर नही पाता ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तुम खेतीयो को युक्त करने वाली ताकत मे फलो को भेजते हो। तुम मनुष्य हा तुम्हारा कोई भी तिरस्कार नही कर सकता ॥ १४ ॥

इन्द्र पच क्षितियो के ईश्वर तथा पुरुषो और वैभवो के भी ईश्वर हैं ॥ १५ ॥

इन्द्र का ध्यान यदि अन्य जीवो की ओर हो तो भी हमें उनको बुलाते हैं, वे इन्द्र हमारे ही हैं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदासह, प्रीतिकर धन रूप और फल वर्षक शील को हमारो रक्षा करने के लिये धारण करो ॥ १७ ॥

आपके द्वारा रक्षित हम घोडो से युक्त हो तथा वृत्राकार दुश्मनो को नष्ट कर डाले ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे योद्धाहिंसित न हो, उनके सहित हम सेना को लेकर प्रहार करने वालो को वशीभूत करे ॥ २० ॥

सूक्त (७१)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्र परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ ।
विप्रासो वा धियायव ॥ २ ॥

इन्द्र वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुत ॥ १२ ॥
तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिण ।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥
वृषा यूथेव वंसग कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुत ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्र पञ्च क्षितीनाम् । १५ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्य ।
अस्माकमस्तु केवल ॥ १६ ॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै ।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ।
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि ।
जयेम सं युधि स्पृध ॥ १९ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् ।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥

वृत्र पर यह इन्द्र वज्र फेंकते हैं। कम या बहुत धन पाने पर भी हम इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र! तुम सत्य धन के प्रदाता हो तथा फलो के वर्षक तुम हटाने से तुम किसी से भी हटते नही। इस चरु का सेवन करो और हमारी उन्नति करो ॥ १२ ॥

मैं धन पाने के हर समय पर तथा समान मिलने पर धन से तृप्त करता हुआ इन्द्र के जिन स्तोत्रो पर ध्यान मे लाता हूँ, उसमे इन्द्र का छोर नही पाता ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तुम खेतीयो को युक्त करने वाली ताकत मे फलो को भेजते हो। तुम मनुष्य हो तुम्हारा कोई भी तिरस्कार नही कर सकता ॥ १४ ॥

इन्द्र पच क्षितियो के ईश्वर तथा पुरुषो और वैभवो के भी ईश्वर है ॥ १५ ॥

इन्द्र का ध्यान यदि अन्य जीवो की ओर हो तो भी हमे उनको बुलाते हैं, वे इन्द्र हमारे ही हैं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! तुम सदासह, प्रीतिकर धन रूप और फल वर्षक शील को हमारी रक्षा करने के लिये धारण करो ॥ १७ ॥

आपके द्वारा रक्षित हम घोडो से युक्त हो तथा वृत्राकार दुश्मनो को नष्ट कर डाले ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित हम तुम्हारे वज्र को विकराल रूप से ग्रहण करते हुए शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! हमारे योद्धा हिंसित न हो, उनके सहित हम सेना को लेकर प्रहार करने वालो को वशीभूत करे ॥ २० ॥

सूक्त (७१)

(ऋषि—मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्र परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥

य कुक्षिः सोम"ातम स ुद्रइव पिन्वते ।
उर्वीरापो न काकुद ॥ ३ ॥

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही ।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द मावते ।
सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थ च शस्या ।
इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभि' सोमपर्वभि ।
महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

एमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत ।
सजोषा वृषभ पतिम् ॥ १० ॥

इन्द्र सर्वोत्तम तथा बडे है, वे यशशाली है उनका पराक्रम आकाश के समान बडा हो ॥ १ ॥

वृद्धि की इच्छा वाले विद्वान पुरुष पुत्र के साथ भी युद्ध मे लग जाते है ॥ २ ॥

सोमपायी इन्द्र की कुक्षि ककुदयुक्त वृषभ तथा अथाह जल वाले समुद्र की तरह उन्नति को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

इन्द्र को धेनु'देने वाली भूमि हवि देने वाले को पेड की पकी हुई शाखा की तरह है ॥ ४ ।

हे इन्द्र ! हविदाता यजमान के लिए तुम्हारे रक्षा साधन सदैव प्राप्त हैं ॥ ५ ॥

सोम का सेवन करते समय स्तोम, उक्थ और शस्त्र इन्द्र के निमित्त धारने के योग्य है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ पर पधारो। सब सोम सवनो से सोम से हर्षित तेज से तुम्हारा उद्देश्य महान है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र अध्वर्युओ ! तुम उक्थो और चमसो से सोम को सनाइये। अभिषव होने पर इन्द्र को प्रसन्न करता है। हे इन्द्र ! चिबुक वाले तथा तुम सुन्दर हो। खुश करने वाले सोत्रो के द्वारा तुम सोम सवनो से प्रसन्न होओ ॥ ६ ॥

जिस प्रकार दुश्चरित वाली औरत सेचन युक्त अपने पति को छोड देती है उसी प्रकार ही क्या ये प्रार्थनाये तुमको त्यागती है ॥ १० ॥

स चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम् ।
असदित् ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः ।
तुविद्युम्न यशस्वत ॥ १२ ॥
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् ।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् ।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥
वसोरिन्द्र वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् ।
होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥

हे इन्द्र! वरणीय, सुन्दर, सन्तावान धनों को हमारी तरफ भेजो ॥ ११ ॥

हे इन्द्र! तुम हमको बड़ा तथा यशशाली होने का वैभव दो॥ १२।

हे इन्द्र! गायों से सम्पन्न तथा हवियों युक्त हमें यशशाली करो और आयुष्मान करो॥ १३॥

हे इन्द्र! हजारों के द्वारा सेवनीय श्रव तथा रथिनी इषाओं को हमें दो ॥ १४ ॥

हम धनेश्वर, वसूपति, ऋग्मिय और यज्ञ में आने वाले रक्षा साधनों की हम पूजा करते है॥ १५ ॥

बड़े इन्द्र के लिए 'न्योकस' मे प्रत्येक वार सोम अभिषुत होने पर वैरी भी इन्द्र के बल की महिमा का बखान करते है॥ १६ ॥

सूक्त ७२ (सातवाँ अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेप। देवता—इन्द्र। छन्द—अष्टि)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यव -
पृथक् स्व सनिष्यव पृथक्।
तं त्वां नाव न पर्षणि शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्र न यज्ञैश्चितयन्त आयव स्तोमेभिरिन्द्रमायवः॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य-
नि सृज सक्षन्त इन्द्र नि सृजः।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद् वृषण सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम्॥ २॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो-
हवीमभि स्वर्षाता हवीमभिः

यदिन्द्र हन्तवे मधो वृषा वज्रिञ्चकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयस ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! फल वृष्टि को प्रार्थना करने अनेको स्वर्ग की चाह करने वाले मारे सवनो मे तुमसे प्रार्थना करते हैं। पनडुब्बी की तरह अन्न के पूले मे सम्पन्न तुमको हम शक्तिशाली नियुक्त करते हैं। हम इन्द्र की इच्छा से स्तोत्र को प्रवोन्निती करते हैं॥ १ ॥

हे इन्द्र ! अन्न कामना वाले दम्पति गोदान के समय पर तुम्हारा ध्यान एकात्रत करते हैं और फल देने की प्राथना करते हैं। तुम स्वर्ग जाने वाले उन दो प्राणियो को जानते हो। तुम्हारा वर्षणशील एव सहायक वज्र प्रकट होता है॥ २ ॥

स्वर्ग की प्राप्ति के लिए सूर्य का ज्ञापन करने वाली उषा की हवि को देते हैं। हे वर्षणशील इन्द्र ! तुम लडाईयो की कामना वाले वैरियो को नष्ट करने के लिए वज्र को धारण करते हो। तुम मेरे द्वारा नये रचे हुए स्तोत्र को सुनो॥ ३ ।

सूक्त (७३)

(ऋषि – वसिष्ठ , वसुक्र। देवता—इन्द्र । छन्द – जगती, त्रिष्टुप्)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्य ब्रह्माणि वधना कृणोमि ।
त्व नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

न चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्य मिन्द्र ते न राध ॥ २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्व प्रचेतसे प्र सुमति कृणुध्वम् ।
विश पूर्वी प्र चरा चर्षणिप्रा ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभि ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥
सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्र श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥
यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥

हे वीर इन्द्र ! यज्ञ के सारे सवन तेरे निमित्त है । आपके निमित्त इन मन्त्रो की वृद्धि करता हूँ । तुम सबो के पालक एव आहूति के योग्य हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम उग्र हो । तुम्हारे सुन्दर दर्शन, वीर्य, धन एव यश को और कोई भी नही पा सकता है ॥ २ ॥

हे यजन करने वालो ! तुम हवियो द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करो । तुम पुरुष की अच्छे फलो से सम्पन्न करो । मेरे हवि तुल्य अन्न का भक्षण करो । ३ ॥

रथ मे लगी हुई लगामो से इन्द्र के सोने के वज्र को खोचते है, तब अत्यन्त ओजस्वी इन्द्र रथ पर चढते है ॥४॥

सोम के अभिषुत इन्द्र हमारे यज्ञ कक्ष मे आते हैं । हवा जैसे जगल को कपित करता है उसी प्रकार शहद को कम्पायमान करते है । उसी सोमरस अपनी मूँछो को ऊँचे रखने वाले इन्द्र की ही यह वृष्टि हैं ॥ ५ ॥

कुकर्म करनेवालो का इन्द्र सघार करें और बिगडी हुई

आवाज को मीठी आवाज कर देते हैं। परम शक्तिशाली ऐसे परमब्रह्म परमात्मा की तुम वन्दना करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (७४)

(ऋषि—शुन शेष । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन् वाजान पते शचीवस्तव दसना ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातय ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभ मृण नुवन्त पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पतानि कुण्डृणाच्या दूर वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वपरिक्रोश जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शसय गोष्ववेषु शुभ्रिषु
सहस्रेष तुवीमघ ॥ ७ ॥

हे सोमपायी इन्द्र ! हमारे पास हजारो गाय अश्व एव

शुभ्रियो को अमृतत्व को कहो क्यो कि तुमने अमृतत्व की प्राप्ति करली है ॥ १ ॥

हे धनपति इन्द्र ! तुम दुश्मनो को दर्शित करने मे समर्थ हो, तुम उसी सामर्थ्य से हमारी हजारो गायो को अश्व एव शुभ्रियां प्रदान करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मुझे दोनो आखो से सुला दो और हमारी सैकडो गायो के लिये निन्दा दीजिये ॥ ३ ॥

हे वहुदनेन्द्र ! तुम हमारो हजारो गायो अश्वादि मे धन को दो। हम जगते रहे तथा शत्रु सोते रहे । ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम पापो राक्षस का वध कर डालो और हमारी गायो मे नाशक शक्ति प्रदान करो ॥ ५ ॥

हवा कुण्डृणाची के द्वारा जगल से दूर जाता है । हे इन्द्र गाय आदि जीवो मे कुण्डृणाची के लिये कहिये । ६ ।

हे इन्द्र ! कृकदाश्व का सघार करो परिक्रोशका दुर करो। हमारी गायो, घोडे, आदि जीवो मे से परिक्रोश को दूर करो ॥ ७ ॥

सूक्त (७५)

(ऋषि--परुच्छेद । देवता—इन्द्र । छन्द—अत्वष्टि ।

वि त्वा ततस्रे सिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य नि सृज सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।
यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वयन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद् वृषण सचाभुव वज्र मिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥
विदुष्टे अस्य वोर्यस्य पूरव पुरो यदिन्द्र शारदोरवातिर. ।
सासहानो अवातिर ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्यु शवसस्पते ।

महोममुष्णा पृथिवीमिमा अतो मन्दसान इमा अप ॥ २ ॥
आवित् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्य सनिष्णत श्रवस्यन्त सनिष्णत ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! गोदान के समय पर अन्न की इच्छा वाले दम्पति आपको ध्यान मे रखते हुए फल देने को आपको आकर्षण करते है स्वग को जाने वाले उन दोनो को आप जानते है। उस अवसर पर आप अपने वर्षणशील सहायक वज्र को जानते हो ॥ १ ॥

यह इन्द्र जाडे के मोसम की वस्तुओ मे परिवर्तित होकर बार-बार दुश्मनो को व्यथित करते है पुरुष इनके बल के ज्ञाता हैं। हे इन्द्र ! जो स्वर्ग निवासी आपकी पूजा नही करता है उस पर आप शासन करो। इस भूमि एवं पानी का निवारण करो ॥ २ ॥

हे सेचन समर्थ जले ! आपके वीर्य का हम बखान करते हैं। इन्द्र के खुश होने पर तुम उनकी रक्षा करो। सखाओ के पोषक हो। पृतनाओ मे सेवनीय कार्यों के कर्ता हो। तुम नदियो का सहारा लो और हमे अन्न दो तथा स्नान कराने वाले बनो ॥ ३ ॥

सूक्त (७६)

(ऋषि—वसुक्र । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

वने न वायो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीग ।
यस्येदिन्द्र पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतम क्षपावान् ॥ १ ॥
प्र ते अस्या उषस प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।

अनु त्रिशोक शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो
असत् ससवान् ॥ २ ॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद् वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं
राधो अन्नैः ॥ ३ ॥
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन् कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य
यदसन्मनीषा ॥ ४ ॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन् भवन्तु
पीतये मधूनि ॥ ६ ॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं
स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा
नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥
व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया
सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम देवगणो के भरण करने वाले हो। यह त्रै कसूर एव इन्द्र की इच्छा करने वाला स्तोम हमारे पास है, इन्द्र इसकी सर्वप्रथम इच्छा करते थे। वे इन्द्र पुरुषोत्तम एव सोम के प्रापक हैं। यह स्तोम उन्ही को ओर आगे बढता है ॥ १ ॥

हम वीरो मे सर्वोत्तम और सत्य के अन्तर्गत रहे और

उषा के पार दूसरी हो। लोनो लोक के ऋषि ने हजारो उषाओ को प्राप्त कराया। कुत्स ऋषि ने संसार रूपी रथ को अन्नवान किया ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुमको खुश करने वाला कौन सा स्तोम होगा और कौन सा घोडा आपको मेरे पास लादेगा। मेरे स्तोम के प्रति तुम आओ। तुम उपमेय हो, मैं आपको हवियो द्वारा खुश करूँगा ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! तुम अपने स्वामियो को किस तरह से यशशाली बनाते हो? तुम कीर्ति वाले हो इसलिए यथार्थ मित्र के लिए इसे अन्नवती बुद्धि से युक्त करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! इसकी कामनाओ को पूर्ण करने के लिए गौ माता की तरह मिलती है उन रश्मियो से अथवत हमको पार करो। वायु उसे अन्न प्रदान करें। हे इन्द्र! तुम अपनी पुरानी प्रार्थनाओ को इसके ध्यान मे लाओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! यह घृत सहित सोम तुमको स्वादिष्ट लगे। अपने श्रेष्ठ काव्य सृजन निमित्त द्यावा पृथ्वी श्रेष्ठ मति वाले हो ॥ ६ ॥

इन्द्र के पानार्थ यह पात्र मधुर रस से परिपूर्ण किया गया है। वे इन्द्र अपने पराक्रम के कारण ही पृथ्वी पर पूजनीय हैं तथा वे सत्य के द्वारा पूजे जाते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र का पराक्रम महान है तथा वे सेनाओ से व्याप्त हैं। इनसे मित्र भाव की इच्छा रखने वाले अमज्ञो वीर है। हे इन्द्र तुम जिस श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा लोगो को प्रेरणा प्रदान करते हो, उसी रथ महान् श्रेष्ठ बुद्धि से हमारे वीरो को अनुप्राणित करो ॥ ८ ॥

सूक्त (७७)

(ऋषि—वामदेव । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं
करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं
विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना
गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो
अभिष्टौ ॥ ४ ॥
ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा
भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं
गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा
रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥

इन्द्र के घोडे हमारी तरफ आवें। धनी, सत्यवादी, सोम का पान करने वाले इन्द्र हमारे यहाँ आवें। प्रार्थना करने वाला गुणी पुरुष इसलिए पवित्र हो रहा है और हम सोम को संस्कारित कर रहे हैं ॥ १ ॥

हे बहादुर! हमारे इस यज्ञ मे आप आगमन करें। अपने रास्ते को हमारे निकट करो। यह विद्वान उशना के समान इन्द्र के लिए मन्त्रो का उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र फलो की वर्षा करने वाले हैं। वे वर्षा के जल से पृथ्वी को सम्पन्न करते हुए आवे। ऋत्विज यज्ञ अपना कार्य कर रहा है। सात कामना करने वाले सोमनीय मन्त्रो से प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

जिन मन्त्रो के उच्चारण से स्वर्ग के दर्शन करने का ज्ञान प्राप्त होता है, जो मन्त्र सूर्य का उदित करते हैं, जिन मन्त्रो से सूर्य रूपी इन्द्र अन्धेरे को नष्ट कर देते हैं, वे शक्तिशाली इन्द्र कामनाओ को स्थापित करते है ॥ ४ ॥

सोम का पान करने वाले इन्द्र अधिक धन का प्रेरण करते हैं। वे सब लोको मे विस्तृत हैं। उन्ही इन्द्र भगवान की महिमा पृथ्वी और आकाश को पूर्ण करती है ॥ ५ ॥

अपनी इच्छा से संचित बादलो द्वारा इन्द्र ने भलाई के लिए जलो से बढोत्तरी की। वे जल अपने शब्दो से पत्थरो को भी चूर-चूर कर देते हैं। और इच्छा होने पर गायो के चरने वाली जमीन पर आ जाते है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! यह पृथ्वी तुम्हारे वज्र की बडी सावधानी से देखभाल करती है। यह पृथ्वी ही समुद्र की भी रक्षा करती है। आवरक वृत्र को सभी जलो ने नष्ट कर दिया है। हे इन्द्र तुम अपने बल पर ही पृथ्वी के मालिक हो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र! तुम अनेक भक्तो द्वारा पुकारे जा चुके हो। तुम

जिस जल को देते हो वह जल पहले ही अवतरित होकर बहने लगता है। तुम आंगिरसो द्वारा प्रार्थनीय बादलों को बरसाते हुए हमको असीमित अन्न देते हो। ८॥

सूक्त (७८)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ॥ १ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमत: ।
यत् सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥

हे स्तुति करने वालो ! सोम के पान होने पर इन्द्र की प्रार्थना करो। जिससे कि वे हम सबके लिए गाय के समान कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

यह इन्द्र अगर हमारी प्रार्थनाओ को सुन लेते हैं तो गायो से सम्पन्न अन्न को देने मे हिचकिचाते नही ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृत्रहन हो। असीमित अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम गायो से घिरे हुए स्थान पर आकर हमको शक्ति दो ॥ ३ ॥

सूक्त (७९)

(ऋषि—शक्ति, वसिष्ठ । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत प्रगाथ)

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा
ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमु ।
त्वया वयं प्रवत शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार कि एक पिता अपने पुत्र को उसकी पसन्द की वस्तु देता है उसी प्रकार तुम हमको अभीष्ट वस्तु दीजिए हे देवता ! इस ससार रूपी यात्रा में हमारी इच्छा की वस्तु दो जिससे कि अधिक जीवित रह कर ससार के सभी सुखो को भोगें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हम पर रोगो की विजय न हो । बुरी वाणियो और पापो से हम दूर रहे हम तुम्हारी कृपा से मनुष्यो से पूर्ण रहे और सभी कार्यो को सावधानी से करे ॥ २ ॥

सूक्त (८०)

(ऋषि—शयु । देवता इन्द्र । छन्द—प्रगाथ:)

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रव: ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्रा ॥ १ ॥
त्वामुग्रमवसे चर्षणीसह राजन देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्
सुषहान् कृधि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने अपरिमित धन को हमे दो । हे वज्रधारी तुमने अपने जिस धन से आकाश और पृथ्वी को युक्त किया है उसी धन को हमे दो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे डरो के सभी कारणो को दूर करो और हमे ऐसा बल दो जिससे कि हम शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर सकें । हम तुम्हे अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (८१)

(ऋषि—पुरुहन्मा । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

यद् द्याव इन्द्र ते शत शत भूमीरुत स्यु: ।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अन न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभि ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवता ! अगर सैंकडो पृथ्वी और आकाश भी तुम्हारी बराबरी करना चाहे तब भी बराबरी नही कर सकते ॥ १ ॥

हे वज्रधारी ! हमारी गाओ के चरने वाले स्थान पर अपने रक्षा के साधनो से हमारी मदद करो और अपनी बुद्धि के बल पर ही हमारी बढोतरी करो ॥ २ ॥

सूक्त (८२)

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ ।

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्य वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे बराबर बडप्पन मैं भी पाऊँ । मैं प्रार्थना करने वाले पुरुषो को धन दूँ । और पाप का मुझमे निशान भी न हो जिसके कि मैं पुरुषो द्वारा दुखी किया जाऊँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं जिधर से भी धन की कामना करू उधर से ही धन प्राप्त करूं । जो मुझसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग मे भेज दू । हे इन्द्र ! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला आपके सिवाय और कौन हो सकता है ॥ २ ॥

सूक्त (८३)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

इन्द्र त्रिधातु शरण त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छदियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मेरे लिए कल्याणकारी गृह दो और हिंसा करने वाली शक्तियों को वहाँ से बिल्कुल मिटा दो ॥ १ ॥

तुम्हारे जो बल दुश्मनों को नष्ट करते और मारते हैं, अपने उन्हीं वृषभों से हे देवता ! हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

सूक्त (८४)

(ऋषि मधुच्छन्दा देवता—इन्द्र । छन्द गायत्री)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायव ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूत सुतावत ।
उप ब्रह्माणि वाघत ॥ २ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिव ।
सुते दधिष्व नश्चन ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ आगमन करो यह निष्पन्न सोम तुम्हारे लिए ही रखा गया है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये महान ब्राह्मण तुम्हें अपने से भी विद्वान मानते हैं। अत इन मन्त्रों का उच्चारण करने वाले और सज्जन ब्राह्मणों के निकट आओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम घोड़े रखते हो। जल्दी ही हमारे स्तोत्रों की तरफ आओ और हमारे संस्कार किये गये सोम के पास अपने घोड़ों को रोको ॥ ३ ॥

न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ १ ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवता ! अगर सैकड़ो पृथ्वी और आकाश भी तुम्हारी बराबरी करना चाहे तब भी बराबरी नही कर सकते ॥ १ ॥

हे वज्रधारी ! हमारी गाओ के चरने वाले स्थान पर अपने रक्षा के साधनो से हमारी मदद करो और अपनी बुद्धि के बल पर ही हमारी बढोत्तरी करो ॥ २ ॥

सूक्त (८२)

(ऋषि—वसिष्ठ. । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे बराबर बड़प्पन मैं भी पाऊँ । मैं प्रार्थना करने वाले पुरुषो को धन दूँ । और पाप का मुझमे निशान भी न हो जिसके कि मैं पुरुषो द्वारा दुःखी किया जाऊँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! मैं जिधर से भी धन की कामना करू उधर से ही धन प्राप्त करूं । जो मुझसे उत्कृष्ट होना चाहे उसे स्वर्ग मे भेज दू । हे इन्द्र ! मुझे इस प्रकार की शक्ति देने वाला आपके सिवाय और कौन हो सकता है ॥ २ ॥

सूक्त (८३)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

इन्द्र त्रिधातु शरण त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छर्दियच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मेरे लिए कल्याणकारी गृह दो और हिंसा करने वाली शक्तियों को वहाँ से बिल्कुल मिटा दो ॥ १ ॥

तुम्हारे जो बल दुश्मनों को नष्ट करते और मारते हैं, अपने उन्हीं वृषभों से हे देवता ! हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥

सूक्त (८४)

(ऋषि - मधुच्छन्दा । देवता—इन्द्र । छन्द गायत्री)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यहाँ आगमन करो यह निष्पन्न सोम तुम्हारे लिए ही रखा गया है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये महान ब्राह्मण तुम्हे अपने से भी विद्वान मानते हैं। अतः इन मन्त्रो का उच्चारण करने वाले और सज्जन ब्राह्मणो के निकट आओ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम घोडे रखते हो। जल्दी ही हमारे स्तोत्रो की तरफ आओ और हमारे सत्कार किये गये सोम के पास अपने घोडो को रोको ॥ ३ ॥

सूक्त (८६)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप
याहि सोमम् ॥ १ ॥

तुम्हारे रथ मे कमशील मंत्र द्वारा अश्वों को योजित करता हूँ । हे मेधावी इन्द्र ! अपने शोभायमान रथ पर आरूढ होकर हमारे द्वारा प्रस्तुत इस सोम के समीप पधारो । १ ॥

सूक्त (८७)

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्र इन्द्राबृहस्पती । छन्द—त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति
सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्
पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान्
बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं
सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

सूक्त (८५)

(ऋषि--प्रगाथ मेध्यातिथि । देवता--इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोऽभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

हे स्तुति करने वालो ! तुम लोग और किसी देवता की शरण मे मत जाओ। और न ही अन्य देवता की प्रार्थना करो। हे संस्कारित सोम वाले होताओ। तुम इन्द्र की प्रार्थना करते हुए बारम्बार मंत्रो का उच्चारण करो ॥ १ ॥

वे इन्द्र बल के समान चरने वाले दुश्मनो के नष्ट करने वाले अवक्रक्षी अजुर, मंहिष्ठ, संवननीय एवं दोनो लोको की रक्षा करने वाले हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अपनी रक्षाके लिये अनेको पुरुष तुम्हे बुलाते हैं हमारा यह स्तोत्र भी तुम्हारी बढ़ोत्तरी करने वाला है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम जल्दी आकर विशाल अवतार दो। इन गुणीयो, भक्तो की उंगलियाँ जल्दी कर रही हैं। तुम हमारे पोषण के लिये अन्न को हमारे निकट लाकर हमे दो ॥ ४ ॥

सूक्त (८६)

(ऋषि—विश्वामित्र । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप
याहि सोमम् ॥ १ ॥

तुम्हारे रथ मे कमशील मंत्र द्वारा अश्वो को योजित करता हूँ। हे मेधावी इन्द्र ! अपने शोभायमान रथ पर आरूढ होकर हमारे द्वारा प्रस्तुत इस सोम के समीप पधारो। १ ॥

सूक्त (८७)

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्र इन्द्राबृहस्पती ।
छन्द—त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति
सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥
यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्
पाहि सोमान् ॥ २ ॥
जज्ञान सोम सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥
यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान्
बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं
सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

यदेदर्देशीरसहिष्ट मायाः अथाभवत् केवल सोमो अस्य ॥ ५ ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात
स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र देव पृथ्वी पर वृष्टि करने वाले है। उनके निमित्त सोम के दूध रूप अंश को आहुति अर्पित करो। वह इन्द्र सोम पान की कामना लिये पधारते है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम आकाश मे श्रेष्ठ अन्न के धारण कर्त्ता हो और यज्ञादि शुभ कर्मों के समय सोम का पान करते हो। अतः इस सोम की इच्छा करते हुए इसकी रक्षा करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम उपस्थित होते ही सोम पर जाते हो। तुमने संग्रामो को विजय कर देवताओं को धन प्रदान किया। तुम विस्तृत अन्तरिक्ष मे जाते हो। वह विस्तृत अन्तरिक्ष तुम्हारी महिमा का गुणगान करते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम मनुष्यो को साथ लेकर युद्ध करो। हम तुम्हारे बल से इस युद्ध को विजय करते हुए कीर्तिवान हो। तुम अपने जिन बाहुओं से बडे-बडे संग्रामो को लडते हो, उन बाहुओं की शक्ति से हम युक्त हो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे नूतन प्राचीन कर्मों का बखान करता हूँ। तुमने जिन राक्षसी मायाओं का सामना किया है, इसी से सोम तुम्हारा ही बन गया है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! यह सब पशु धन तुम्हारा है, तुम गौओं के पोषक हो। तुम सूर्य रूपी नेत्र से देखने वाले हो। तुम अपने

उपासक के फल मे प्रयत्न शील रहते हो, ऐसे तुम्हारे धन हम पावे ।। ६ ।।

हे वृहस्पते ! हे इन्द्र ! तुम दोनो ही स्वर्गिक और पार्थिव धनो के स्वामी हो । तुम अपनी रक्षा साधन रूप बलो द्वारा हमारा रक्षण करते हुए स्तवन करने वाले हमको धन प्रदान करो । ७ ।।

सूक्त (८८)

(ऋषि—वामदेव । देवता—वृहस्पति । छन्द त्रिष्टुप्)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् वृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्याना पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ।। १ ।।
धुनेतय सुप्रकेत मदन्तो वृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्त सृप्रमदब्धमूर्व वृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ।। २ ।।
वृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदु ।
तुभ्य खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ।। ३ ।।
वृहस्पति प्रथम जायमानो महो ज्योतिष परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ।। ४ ।।
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वल रुरोज फलिग रवेण
वृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूद कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ।। ५ ।।
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भि ।
वृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वय स्याम पतयो रयीणाम् ।। ६ ।।

पुरातन ऋषिगण उन वृहस्पति देव का पुन: पुन स्मरण करते हैं जिन्होने पृथ्वी की अन्तिम सीमा को अपने घोष से स्तभित किया था । वे वृहस्पति प्रसन्न करने वाला जिह्वा वाले है विद्वान ब्राह्मण उन्हे अग्रणी रखते है ।। १ ।

हे बृहस्पते ! जो ऋत्विज तुम्हे हमारी ओर आकृष्ट करते हैं, उन गमनशील, अहिंसित घृत विन्दु युक्त ऋत्विजो की तुम रक्षा करो ।। २ ॥

हे बृहस्पते ! ऋतु स्पर्श ऋत्विज तुम्हारी रक्षा साधनो वाली महान रक्षा के निमित्त बैठे हुए पर्वतो से चमन किये हुए सुन्दर मधु की तुम पर वृष्टि करते हैं ॥ ३ ॥

वे बृहस्पति महान ज्योतिष चक्र से परमाकाश मे प्रकट होते हुए सप्त रश्मियाँ बनकर तम का विनाश करते हैं ।' ४ ॥

वे बृहस्पति मेघ को ऋचा युक्त गुण द्वारा विदीण करते हैं । तथा हव्य मे प्रेरित होकर कामना करने वाली गोओ को पुन पुन. घोष करते हुए प्राप्त होते है ॥ ५ ॥

हे बृहस्पते ! हम सुन्दर वीर पुत्र पौत्रादि एव सम्पत्ति से सपन्न हो । हम उन बृहस्पति देव को आहुतियो और नमस्कारो द्वारा आराधना करते हैं ॥ ६ ॥

सूक्त (८९)

(ऋषि—कृष्ण । देवता—इन्द्र. । छन्द—त्रिष्टुप)

अस्तेव सु प्रतर लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरित:
सोम इन्द्रम ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखाय प्र बोध
कोश न पूर्ण वसुना न्यृष्टमा च्यावय
किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहु
त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धी
भरा न ॥ २ ॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं
वष्टि शूरः ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ
आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति
हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय
मघवा काममस्मे ।
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे
वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति
भूरि वामम् ॥ ८ ॥

उत प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि
चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं राया सृजति
स्वधाभिः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो
वरीवः कृणोतु ॥ ११ ॥

– हे ब्राह्मणो ! तुम इन्द्र के निमित्त स्तोमों को पूर्ण करो ।

मन्त्र रूप वाणी द्वारा पार जाओ। हे स्तवन करने वालो ! तुम इन्द्र को सोम से भली भाँति संयुक्त करो ॥ १ ॥

हे स्तुति करने वालो ! अपनी सखा रूप वाणी को दुहते हुए शत्रु विनाशक इन्द्र का आह्वान करो। धन से भरे कोश के समान इन्द्र के निमित्त पवित्र सोम का सिंचन करो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम भोगने वाले हो एवं शत्रु को क्षीण करने वाले हो। मुझे क्षीण न करो। मुझे धन पाने वाला सौभाग्य प्रदान करो। मेरी बुद्धि कर्मों की ओर अग्रसर हो। ३ ॥

हे इन्द्र ! मेरे व्यक्ति तुम्हारा ही आह्वान करते हैं। जो पुरुष तुम्हारी मित्रता की इच्छा रखता है और हविर्युक्त अनुष्ठान करता है, वह सोम का संस्कार करता है ॥ ४ ॥

जो हविवान पुरुष इन्द्र के निमित्त सोमों का संस्कार नहीं करता, उसकी सम्पत्ति क्षीण होने लगती है और इन्द्र उसे शत्रुओं से संयुक्त करते हुए उस पर अपने वज्र द्वारा प्रहार करते हैं ॥ ५ ॥

हमारे अभीष्टों को पूर्ण करने वाले एवं प्रशंसनीय इन्द्र जिनके निकट आते ही शत्रु भयभीत हो उठते हैं, ऐसे महिमाशाली इन्द्र को संसार के समस्त प्राणी नमस्कार करें ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने उग्र वज्र से निकटस्थ अथवा दूरस्थ शत्रु को शोकाकुल करो। हमको अन्न रूप बुद्धि प्रदान करते हुए अन्न तथा पशु धन से संपन्न करो ॥ ७ ॥

जिन इन्द्र के पास तीव्र सोम गमन करते हैं वे इन्द्र धन की बाधक रस्सी को रोकते और सोम का संस्कार करने वाले स्तोता को अपार धन देते हैं ॥ ८ ॥

जैसे क्रीडा कुशल व्यक्ति अपने विरोधी को द्यूत में

पराजित करता है क्यों कि वह अक्ष नामक कृत को ही खोजता है। वह खेलने वाला इन्द्र की कामना करता हुआ उस जीते हुए धन को व्यर्थ ही न रोकता हुआ इन्द्र के कार्य मे लगाता और उन्हे स्वधावान करता है ।। ९ ।।

हे इन्द्र! निर्धनता के कारण प्राप्त हुई दुर्बुद्धि को हम पशुओं के द्वारा पार कर जाँय। अन्न द्वारा अपनी क्षुधा शमन करें। विरोधियो पर विजय प्राप्त करते हुए हम राजाओ मे स्थित श्रेष्ठ धन को शक्ति सम्पन्न अक्षो से प्राप्त करें। १० ।।

जो शत्रु हमारी हिंसा करने की कामना करता है, उससे बृहस्पति देवता चारो दिशाओ से हमारा रक्षण करें और अपने अन्य मित्रो से हम श्रेष्ठता प्रदान करायें ।। ११ ।।

सूक्त (९०)

(ऋषि—भरद्वाज । देवता—बृहस्पति । छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥
जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान् पृत्सु साहन् ।। २ ॥
बृहस्पतिः समजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥

प्रथम आविर्भूत होने वाले मेघो को विदीर्ण करने वाले सत्यशील आंगिरस बृहस्पति आहुत होने योग्य हैं। वे पोषक द्यावा पृथ्वी मे शब्द करने वाले द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् और वृष्टि करने वाले हैं ।। १ ।।

देवहुति मे लोक को करने वाले मनुष्यो के लिए गमनशील वृहस्पति मेघो को विदीर्ण कर पुरियो का तोडते हैं और शत्रुओ को पराजित करते हुए सेनाओ का सामना करते हैं ॥ २ ॥

वृहस्पति ने गौओ सपन्न बृहद गोष्ठो और धनो को जीत लिया है। वे जलदान के निमित्त स्वर्ग मे आरूढ होते और मत्रो से शत्रुओ को नष्ट करते है ॥ ३ ॥

सूक्त ६१ (आठवां अनुवाक)

(ऋषि--अयास्य । देवता--बृहस्पति । छन्द-त्रिष्टुप्)

इमा धीय सप्तशीर्ष्णी पिता न ऋतप्रजाता बृहतीमविन्दत् ।
तुरीय स्विज्जनयद् विश्वजन्योऽयास्य
उक्थमिन्द्राय शसन् ॥ १ ॥
ऋत शसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीरा' ।
विप्र पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथम मनन्त ॥ २ ॥
हसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च
विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्या पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि
तिस्र आव. ॥ ४ ॥
विभिद्या पुर शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषस सूर्यं गामर्क विवेद स्तनयन्निव द्यौ ॥ ५ ॥
इन्द्रो बल रक्षितार दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत् पणिमा
गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥

स ईं सत्येभि. सखिभि शुचद्भिर्गोधायस वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविण व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपति गा इयानास इषणयन्त धीभि ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भि ॥ ८ ॥
तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदत सधस्थे ।
बृहस्पति वृषण शूरसातो भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पति वृषण वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो
ज्योतिरासा ॥ १० ॥
सत्यामाशिष कृणुना वयोधै कीरिं चिद्धयथ स्वेभिरेवै ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विस्वास्तद् रोदसी शृणुत
विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी
प्रावत नः ॥ १२ ॥

बृहस्पति देव ने सत्य द्वारा प्रकट सत्यशीर्षा मेधा को प्राप्त किया है और विश्व से उत्पन्न उन आस्यास्य ने इन्द्र से कहकर तुरीय को उत्पन्न कराया ॥ १ ॥

सत्य भाषण द्वारा प्राण रूपवीर्य से उत्पन्न हुए अंगिरा यज्ञ स्थान मे अग्रणी समझे जाते हैं ॥ २ ॥

वधक मेघो का उदघाटन करते हुए वृहस्पति स्तुति सी करते हुये विद्वान जैसे प्रतीत होते है ॥ ३ ॥

दो से फिर एक से हृदय गुहा मे अवास्थित वाणियो को उद्भुत करते हुए अन्धकार मे प्रकाश की कामना वाले प्रकाशो को प्रकट करते हैं ॥ ४ ॥

पुर को विदीर्ण कर पश्चिम में सोते हैं। समुद्र के भागो का त्याग नही करते। आकाश मे गरजते हुए वृहस्पति उषा सूर्य मन्त्र और गो को प्राप्त करते हैं॥ ५॥

काम धेनुओ के पोशक मेघ को इन्द्र छिन्न भिन्न करते हैं। इन्होने दधि की कामना से गौओ के चुराने वाले पणियो को पिडित किया॥ ६॥

वह इन्द्र धन प्रदाता तथा पृथ्वी को पुष्ट करने वाले मेघ को विदर्ण करते हैं और ब्रह्मण स्पति वषणशील मेघो द्वारा धन मे व्याप्त होते हैं॥ ७॥

वह मेघ वृषभ और गौओ पर जाने की इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियो द्वारा उन्हे प्राप्त करते हैं। उन अनवद्यप शब्द का पालन करने वाले वृहस्पति मेघो के योग से गोओ मे सयुक्त होते है॥ ८॥

उस युद्ध में सिह सदृष्य घोष करने वाले वृहस्पति को अपनी सद् बुद्धियो द्वारा प्रवृद्ध करते हैं और युद्ध काल मे उन्हे प्रसन्न रखते हैं॥ ९॥

जब यह विश्व रूप आकाश रूपी भवन पर आरूढ हो अन्न प्रदान करने की कामना प्रकट करते हैं तब ज्योति को अ गीकार करते हुए वुद्धि के द्वारा वृहस्पति को प्रबृद्ध किया जाता है। १०॥

अन्न के पोषक कारणो से आर्शीवाद को फलीभूत करते हुए स्तोता का रक्षण करो। हे पृथ्वी आकाश! तुम अग्नि सबधी ऋचाओ के प्रचड होने पर श्रवण करो। जितने युद्ध हैं सब भूत की बातें हो जांय॥ ११॥

मेघ के मस्तक को अपनी महिमा से ही इन्द्र काट देते

हैं। वे प्रहार करके सप्त नदियों को प्रकट करते हैं। हे द्यावा पृथ्वी। तुम हमारी पालन कर्त्री बनो ॥ १२ ॥

सूक्त (९२)

(ऋषि—प्रियमेध पुरुहन्मा। देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री; अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती प्रगाथ)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सुनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टप गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत् पतन्त्येन्य. सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीरफाणयत् सुयुक्तां उप दाशुषे ।

तक्वो नेता तदिद् वपरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

हे स्तोता ! गौओ के अधिपति इन्द्र को जिस प्रकार प्राप्त करूँ, उसी विधि से तुम उनकी अराधना करो। यह इन्द्र अपने सत्यशील उपासको का रक्षण करते हैं ॥ १ ॥

जिन कुशाओ पर हम इन्द्र को उपासना कर रहे है, उन कुशाओ पर इन्द्र के अश्व रथ को योजित करें ॥ २ ॥

जब गाऐ इन्द्र के लिये दुग्ध का दोहान कराती हैं तब वे इन्द्र चहूँ ओर से मधुर सोम रसो को प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

ब्रह्म के ग्रह रूप स्वग मे हम और इन्द्र गमन करें। हम इक्कीस बार मधु का पान कर इन्द्र के मित्र भाव की प्राप्ति करें ॥ ४ ॥

हे स्तोताओ ! इन्द्र की श्रेष्ठ ढग से उपासना करो। अपने शत्रुओ को अपने अधीन करने के लिए उनकी आराधना करो ॥ ५ ॥

जब इन्द्र के प्रति मन्त्र गमन करता है तब कलश शब्द युक्त होता है, उस समय पिशग पदार्थ गमन करता हुआ धनुष की डोरी के समान ध्वनि करता है ॥ ६ ॥

हे स्तोताओ ! इन शुभ्र धेनुओ मे स्थित अक्षय पदार्थों को स्वीकार करते हुए इन्द्र के पानार्थ सोम लाओ ॥ ७ ॥

इस पदार्थ को इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवाओ ने पान कर लिया है। हे जलो। सशिश्वरी के वत्स सदृश्य वरूण का स्तुति-गान करो ॥ ८ ॥

हे वरूण ! तुम्हारे पास पुरस्तात वर्षयन्ती अभ्रपत्नी अथवा मेघ पत्नी त्रितुवा असन्धा नाम की सात नदियाँ हैं जसे

नगर से जल बाहर निकलता है वैसे ही उन नदियो से जल प्रवाहित होता है ॥ ९ ।

जो हविदाता के लिए सुयुक्तो को फणित करते है जो नेता हैं तरुण हैं, उनकी उपमा उनका शरीर ही है ॥ १० ॥

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विष ।
भिनत् कनीन ओदन पच्यमान परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नव रथम ।
स पक्षन्माहिष मृग पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥
आ त सुशिप्र दपते रथ तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्ष सचेवहि सहस्रपाद मरुष स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥
त घेमित्था नमस्विन उपराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधित यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥
अनु प्रत्नस्यौकस प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयति वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत ॥ १५ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगु ।
विश्वासां तरुता पृतनाना ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १६ ॥
इन्द्र त शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्र प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्य ॥ १७ ॥
नकिष्ट कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्र न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्ट धृष्णवोजसम् ॥ १८ ॥
अषाढमुग्र पृतनासु सासहि यस्मिन् महीरुरुज्रयः ।
स धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्याव क्षामो अनोनवुः ॥ १९ ॥
यद् द्याव इन्द्र ते शत शतं भूमीरुत स्यु ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्र सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥ २० ॥
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे
वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ २१ ॥

इन्द्र समस्त शत्रुओं को अपने अधीन करते हैं, वे भार को वहन करने वाले हैं। इन्होंने मन्त्र से पकते हुए ओदन का कनीन होते हुए भी भेदन किया। ॥ ११ ॥

वे अपने रथ पर श्रेष्ठ कुमार के समान चढते हैं और द्यावा पृथ्वी रूप माता पिता के निमित्त त्रिभुक्तु पाक करते हैं ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! तुम इस स्वर्णिम रथ पर चढो और हम भी तुम्हारे अनुग्रह से सुन्दर वाणियों से सपक्ष सहस्त्रों मार्ग से युक्त स्वर्ग पर आरोहण करें ॥ १३ ॥

उन इन्द्र को इस प्रकार की महिमा के ज्ञाता पुरुष अपने राज्य मे प्रतिष्ठित करते है। हवि अर्पित करने वाले यजमान के लिए ऋत्विज गण इनके निकटस्त धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥

प्रियमेधा वाले ऋत्विज उनके पूर्व भवन से हित पद अन्न से पूर्ण हो 'प्रयति' का उपयोग करते हैं ॥ १५ ॥

राजा इन्द्र ज्येष्ठ है। वे रथ द्वारा गमन करते हूए सभी सेनाओं के पार होते हैं। मै उनकी स्तुति करता हूँ ॥ १६ ॥

हे पुरुहन्मन् ! इन्द्र की सत्ता, मध्यलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्ग मे भी है। क्रीडा के निमित्त ऊँचा उठाया हुआ वज्र उनके हाथ मे सूर्य समान दर्शनीय है। इस धारक यज्ञ से अन्न प्राप्ति हेतु उन्ही इन्द्र को भली भाँति सज्जित करो ॥ १७ ॥

जो व्यक्ति उन महान पराक्रमी ऋम्वस, अधृष्ठ, वृधिकर और धर्षक तेज से सपन्न इन्द्र की उपासना मे लगता है। उसे उसके वर्ग से कोई रोक नही सकता ॥ १८ ॥

वे उग्र इन्द्र विशाल आश्रय मार्ग वाले वाणियो द्वारा स्तुत और सेनाओ मे दुर्दमनीय है, उनका द्यावा पृथ्वी स्तवन करते हैं ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! सौ सौ आकाश और पृथ्वी हो या हजारो सूर्य आकाश पृथ्वी बन जाय तो भी वे तुम्हारी समानता करने मे असमर्थ ही रहेगे ॥ २० ॥

हे इन्द्र ! हमारी गोचर भूमि अपने रक्षा साधनो से हमारी रक्षा करते हुए हमारी वृद्धि करो ॥ २१ ॥

सूक्त (९३)

(ऋषि—प्रगाथ, देवजामय । देवता – इन्द्र । छन्द – गायत्री)

उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन् वृषेदसि ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभव ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हमारी यह स्तुति तुम्हे प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो तुम ब्रह्म द्वेषियो को नष्ट करो और हमे धन दो ॥ १ ॥

हे वज्रिन ! पणियो के धन को हस्तगत कर उन्हे नष्ट कर डालो । तुम महान हो तथा तुम्हारी कोई भी समता नही कर सकता ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम निष्पन्न सोमो के तथा मनुष्यो के अधिपति हो ॥ ३ ॥

जल की इच्छा करती हुई और श्रेष्ठ वीर्य से युक्त हुई औषधियाँ पैदा होते ही इन्द्र की उपासना करती है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम काम्यवर्षक अपने धर्षक ओज सहित प्रकट हुए हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष को पार करने मे पूर्ण सामर्थ्य-वान हो वहाँ तुम वृत्रासुर का सहार करते हो । तुम्हारा तेज चकित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थिर है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मत्र के धारण करने के बाद उग्र वज्र को अपने तेज से धारण करते हो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थों को तुम अपनी शक्ति से वश मे करते हो । अत समस्त शक्तियो को अपने अधीन करो ॥ ८ ॥

सूक्त (९४)

(ऋषि—कृष्ण । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्र स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।

प्रत्यक्षाणो अति विश्वा सहास्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ वर्धाम ते
पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण
आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा
केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिष स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥

एवैवापागरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र
वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥

गिरींरज्रान् रेजमानां अधारयद् द्यौः
क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद
उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ
मघवन् बोध्याभगः ॥ ९ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभव ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! हमारी यह स्तुति तुम्हे प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो। तुम ब्रह्म द्वेषियो को नष्ट करो और हमे धन दो ॥ १ ॥

हे वज्रिन ! पणियो के धन को हस्तगत कर उन्हे नष्ट कर डालो । तुम महान हो तथा तुम्हारी कोई भो समता नही कर सकता ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम निष्पन्न लोको के तथा मनुष्यो के अधिपति हो ॥ ३ ॥

जल की इच्छा करती हुई और श्रेष्ठ वीर्य से युक्त हुई औषधियाँ पैदा होते ही इन्द्र की उपासना करती है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम काम्यवर्षक अपने धर्षक ओज सहित प्रकट हुए हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष को पार करने मे पूर्ण सामर्थ्यवान हो वहाँ तुम वृत्रासुर का सहार करते हो । तुम्हारा तेज चकित करने वाला है जिससे द्युलोक स्थिर है ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रीतिकर मत्र के धारण करने के बाद उग्र बज्र को अपने तेज से धारण करते हो ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थो को तुम अपनी शक्ति से वश मे करते हो । अत समस्त शक्तियो को अपने अधीन करो ॥ ८ ॥

सूक्त (६४)

(ऋषि—कृष्ण । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् जगती)

आ यात्विन्द्र स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।

प्रत्यक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ वर्धाम ते
पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण
आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा
केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥
गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिष स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥
पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो श्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र
वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरीँरज्रान् रेजमानाँ अधारयद् द्यौः
क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद
उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ
मघवन् बोध्याभग ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामति दुरेवां यवेन क्षुध पुरुहूत विश्वाम् ।
वय राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायो ।
इन्द्रः पुरुस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो
वरिव कृणोतु ॥ ११ ॥

जो इन्द्र धन के स्वामी है, धर्म से त्वरावान है, वे हर्ष के निमित्त पदार्पण करें और वही अपने बल से शत्रुओ प्रत्येक प्रकार से नष्ट करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम अपने कर मे वज्र को धारण करते हो। तुम्हारे अश्व सब प्रकार से तुम्हारे वश मे है । तुम्हारे रथ मे आसीन होने का स्थान उत्कृष्ट है अत द्युलोक से से सुन्दर श्रेष्ठ पथ द्वारा पदार्पण करो और हम तुम्हारे सोम पान की कामना वाली शक्ति को प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥

हमारे इस यज्ञ स्थान मे परमपराक्रमी, महान, वज्र-धारी विकराल शत्रुओ को नष्ट करने मे समर्थ सत्यशील काम्य वर्षक इन्द्र को इन्द्र के अश्व लेकर आवे ॥ ३ ॥

हे ऋत्विज ! ज्ञानी, वली द्रोण पात्र से भली भाँति सुसगत होने वाले स्कभ को जल मे खीचो। मैं केनिपानो को बढाने के लिए तुम मे प्रविष्ट हूँ। तुम मुझे शक्ति प्रदान करो और भलीभाँति आश्रय दो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! इस स्तवन करने वाले को शुभाशीर्वाद दो एव उसे सुन्दर वनो मे प्रतिष्ठित करो। हे स्वामी इस मोसगृत मे पधार कर इस कुशासन पर आसीन होओ। तुम्हारे पात्र धारण शक्ति के कारण अना घृष्य हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जो अपने ज्ञान और कर्मानुसार देवयान आदि मार्गो से गमन करने की इच्छा रखते हैं जो सर्व साधारण को

कष्ट प्रदायक देवहुति आदि कर्मों को कराते हैं, परन्तु तुम्हारे अनुग्रह के आभाव मे वे यज्ञ रूप नौकापर आरूढ नहीं हो पाते अन साधारण कर्मों को करते हुए मृत्यलोक मे ही बने रहते हैं ॥ ६ ॥

जिन अश्वो को दुर्युज योजित करते है वे 'अपाक' रहे। जो दाता को अनेक खाद्य पदार्थों से युक्त है वे मेघ बने ॥ ७ ॥

सोम पान से हर्षोन्मत्त हो इन्द्र पर्वतो का धारण करते, अन्तरिक्ष के पदार्थों को कुपित करते और स्वर्ग लोक को क्रुन्दित करते है। द्यावा पृथ्वी को विक्रमण करते हुए उक्थो को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! मै तुम्हारे अकुश को धारण करता हूँ, तुम उसके द्वारा नख वाले पीडक प्राणियो को नष्ट करते हो। इस सवन मे तुम पूजनीय होकर सोम के सस्कारित होने पर धन के ज्ञाता हो। ९ ॥

हे अनेको द्वारा आह्वानीय इन्द्र। हम यजमान तुम्हारे द्वारा दी गई गौओ से निर्धनता को पार कर जांय और तुम्हारे प्रदत्त अन्न से हम अपने बन्धु बान्धवो की क्षुधा शमन करें। हम अपने बल से शत्रुओ पर विजय प्राप्त करें और अपने समान पुरुषो मे श्रेष्ठ पद प्राप्त कर धनवान हो ॥ १० ॥

पूर्व दिशा से आते हुए हिंसक शत्रु से इन्द्र हमारा रक्षण करे और हमे धन दे। पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशा को ओर से आते हुए हिसक शत्रुओ से वृहस्पति हमारी रक्षा करे ॥ ११ ॥

सूक्त (९५)

(ऋषि--गृत्समदः, सुदा । देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि,, शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिर तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिवद् विष्णुना सुत यथावशत् ।
स ई ममाद महि कम कर्तवे महामुरु सैन सश्चद् देवो देव सत्यमिन्द्र सत्य इन्दु ॥ १ ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥
त्व सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्व पुष्यसि वार्यं त त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धिय ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघासति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥

वे इन्द्र त्रिकद्रुक सोम यागो मे सोम पान करते और जौ आदि के मिश्रण से तृप्त होते हैं। विष्णु द्वारा संस्कारित सोम को अपने अधीन करते है क्यो कि वह सोम उन्हे हर्षोन्मत बनाता है। १ ॥

इन्द्र के बल तथा उनकी उपासना करो। वे सग्राम मे शत्रुओ का विनाश करते हैं। अन्य पुरुषो की धनुषो पर प्रत्यंचाएं न चढ पावें। यह प्रेरणा के श्रोत इन्द्र हमारी स्तुति को समझ गये हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने मेघ को चीर कर नदियो को दक्षिण की

और प्रवाहमान बनाया है। तुम समस्त वरणीय पदार्थों को पुष्टि प्रदान करते और शत्रुओ का सहार करते हो। हम तुम्हारा आलिगन करते है। अन्य पुरुषो की धनुषो पर प्रत्यचाऐ न चढ पावे ॥ ३ ॥

हे स्वामिन्! हमारे समस्त शत्रुओ की वृद्धियाँ नष्ट न हो। जो शत्रु हमे हिंसित करने की कामना करता है उस मरण साधन रूप वज्र का प्रहार करो। अपना धन हमे दो। अन्य पुरुषो की प्रत्यचाऐ उनके धनुषो पर न चढ पावे ॥ ४ ॥

सूक्त (९६)

(ऋषि—पूरण: प्रभृति । देवता—इन्द्र प्रभृति । *छन्द—त्रिष्टुप् जगती, अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति*)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्
तुभ्यमिमे सुताम ॥ १ ॥

तुभ्य सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वा गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवन जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इहा
पाहि सोमम् ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै
कृणोति ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा त दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुन हुवेम ॥ ५ ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र! तुम इस हवि रूप अन्न वाले यजमान के रथियो के रथ के रक्षक बनो। हे इन्द्र! सोमो को निष्पन्न किया जा चुका है अत अपने अश्वो को छोडकर यहा पधारो। अन्य यजमानो के यहाँ रमण न करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र! यह सोम तुम्हारे ही लिए सस्कारित हुए हैं एव यह स्तुतिया तुम्हारा ही आह्वान कर रही है। तुम सबको जानने वाले हो। हमारे यज्ञ मे पधार कर इस सोमरस का पान करो ॥ २ ॥

जो देवताओ की कामना करने वाला पुरुष सोम को अभिषुत करता है उसके स्तोत्रो को तुम ग्रहण कर लेते हो और सुन्दर वाणी द्वारा उसे तृप्त करते हो ॥ ३ ॥

जो व्यक्ति इस सोम को निष्पन्न नही करता वह

इन्द्र के प्रहार के योग्य होता है ब्रह्म द्वेषी और यज्ञ न करने वाले को इन्द्र नष्ट कर देते हैं ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! हम अश्व धेनु और अन्न के अभिलाषी तुम्हारे आश्रय के निमित्त नूतन सद्बुद्धि से युक्त होकर तुम्हारा आह्वान करते हैं । ५ ॥

हे रोगिन ! मैं तेरे जीवन के निमित्त हवि अर्पित करता हुआ तुझे क्षये आदि रोगो से मुक्त करता हूँ । हे इन्द्राग्नि ! यदि इसे राक्षसों ने बन्धन ग्रस्थ कर लिया हो तो उसके पाप दोष से इसे मुक्ति दिलाओ ।। ६ ।।

यह अवनीति को प्राप्त हुआ है तथा इसकी आयु क्षीण हो गई है तथा यह मृत्यु के निकट जा पहुँचा है। फिर भी मैं इसे पाप देवता निर्ऋति की गोद से वापिस लौटाता हूँ । इसे शतायुष्य बनाने के लिए मैंने इसको छुआ है ॥ ७ ॥

मैं इस रोगी को सहस्त्रो सूक्ष्म दृष्टियों सैकड़ो वीर्यों और शतायुष्य होने के लिए यज्ञ द्वारा मृत्यु से छीन लाया हूँ । इसे इन्द्र जीवन पर्यन्त पापों से पार लगाव ॥ ८ ॥

हे रोगी ! तू शतायुष्य होकर वृद्धि को प्राप्त हो । सौ हेमन्तो और बसन्तो तक जीवित रह। इन्द्र अग्नि सविता वृहस्पति तुझे सौ वर्ष तक जीवन यापन करने वाला बनावें । इस यज्ञ द्वारा मैं तुझे शतायु करके मृत्यु से छीन लाया हूँ ॥ ९ ॥

हे रोगिण ! तू वापिस आ। तू पुन नूतन जीवन धारण कर । इस यज्ञ द्वारा मैंने तेरी दर्शन शक्ति और दीर्घायु प्राप्त करली है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्नि संविदानो रक्षोहा बाधतामित. ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ।। ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं
वि वृहामसि ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

अग्नि देव ! राक्षसो का सहार करने वाले है। वे मत्र से सयुक्त हुए तेरे कुत्सित रोगो को नष्ट करें। वह रोग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है ॥ ११ ॥

जो दूषित रोग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है उसे अग्निदेव मत्र शक्ति से नष्ट करे ॥ १२ ॥

तेरे गिरते हुए गर्भ को जो नष्ट करने की इच्छा करता है हम उसको नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥

जिस रोग से तुम दम्पत्ति पीडित हो, जो रोग तेरी योनि और उरुओ मे घुमा हुआ है हम उसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

जो राक्षस पति, उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु का हनन करना चाहता है उसे हम सहार करते है ॥ १५ ॥

जो तुझे स्वप्न मे या अन्धकार मे प्राप्त होकर तेरी सतान का नष्ट करना चाहता है हम उसका संहार करते हैं ॥ १६ ॥

मैं तेरे नेत्र नासिका कान ठोडी आदि से शीर्षण्य और यक्ष्मादि रोगो को मस्तक और जीभ से बाहर निकालता हूँ ॥ १७ ॥

मैं तेरी हड्डियो से, नाडियो से, कन्धो और बाहुओ से तेरे क्षय रोग को विनष्ट करता हूँ ॥ १८ ॥

हे रोगिन ! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूँ। हृदय के निकटस्थ क्लो मे से हलीक्ष्य से, पित्ताधारो पार्श्वों प्लीहा यकृत तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोगको विनष्ट करता हूँ ॥ १९ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्त निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥
अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥
हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥
अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥
अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं
वि वृहामसि ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेप क्राम परश्चर ।
परो निऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥

अग्नि देव ! राक्षसो का सहार करने वाले हैं। वे मत्र से सयुक्त हुए तेरे कुत्सित रोगो को नष्ट कर। वह राग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है ॥ ११ ॥

जो दूषित रोग तेरे गर्भाशय मे व्याप्त हो रहा है उसे अग्निदेव मत्र शक्ति से नष्ट करे ॥ १२ ॥

तेरे गिरते हुए गर्भ को जो नष्ट करने की इच्छा करता है हम उसको नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥

जिस रोग से तुम दम्पत्ति पीडित हो, जो रोग तेरी योनि और उरुओ मे घुसा हुआ है हम उसे नष्ट करते है ॥ १४ ॥

जो राक्षस पति, उपपति या भाई बनकर आता हुआ तेरे गर्भस्थ शिशु का हनन करना चाहता है उसे हम सहार करते है ॥ १५ ॥

जो तुझे स्वप्न में या अन्धकार मे प्राप्त होकर तेरी सतान का नष्ट करना चाहता है हम उसका सहार करते हैं ॥ १६ ॥

मैं तेरे नेत्र नासिका कान ठोडी आदि से शीर्षण्य और यक्ष्मादि रोगो को मस्तक और जीभ से बाहर निकालता हूँ ॥ १७ ॥

मैं तेरी हड्डियो से, नाडियो से, कन्धो और बाहुओ से तेरे क्षय रोग को विनष्ट करता हूँ ॥ १८ ॥

हे रोगिन ! मैं तेरे हृदय से यक्ष्मा को निकालता हूँ। हृदय के निकटस्थ क्लो मे से हलीक्ष्ण से, पित्ताधारो पार्श्वों प्लीहा यकृत तथा उदर से भी तेरे यक्ष्मा रोगको विनष्ट करता हूँ ॥ १९ ॥

हे क्षयग्रस्त रोगिन ! तेरी आँतों, गुदा उदर दोनों कोखों प्लाशि तथा नाभि से तेरे क्षय रोग को बाहर निकाल कर दूर करता हूँ ॥ २० ॥

तेरे उस प्रदेश जानु पाँवों के ऊपर तथा आगे के भाग से कमर से, नीचे और गुह्य प्रदेश में तेरे व्याप्त हुए यक्ष्मा रोग को निकाल कर दूर करता हूँ ॥ २१ ॥

मज्जा, अस्थि, सूक्ष्म नाडियाँ, स्थूल नाडियाँ उंगलियां नख तथा तेरे शरीर की सब धातुओं से तेरे यक्ष्मा रोग को निकाल कर हटाता हूँ ॥ २२ ॥

हे रोगिनी ! तेरे सब अंगों सब रोम कूपों और सन्धि स्थलों में व्याप्त यक्ष्मा को हम पृथक करते हैं ॥ २३ ॥

हे रोग ! तू मन को भी अपने अधीन करने वाला है अतः तू दूर हो । इस जीवित प्राणी के मन से दूर होने को निश्चित से कह ॥ २४ ॥

सूक्त (९७)

(ऋषि—कलि । देवता—इन्द्र, । छन्द—प्रगाथः, बृहती)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥

हे स्तोताओ ! हमने इन्द्र को सोम से पुष्ट किया है । तुम भी हर्षित हो उन्हें अभिषुत अर्पित करो । उन इन्द्र को स्तुतियों द्वारा शोभित करो ॥ १ ॥

इन्द्र का वृक शत्रुओ को भगाने वाला है, वह मेढा का मथन करने वाला है। हे इन्द्र ! तुम अपनी उत्कृष्ट बुद्धि द्वारा इस यज्ञ मे पदार्पण कर हमारी स्तुतियो को सुनो ॥ २ ॥

यह किसने नही सुना कि इन्द्र ने वृत्र का सहार किया। इन्द्र सभी पराक्रमो से पूर्ण है ॥ ३ ॥

सूक्त (९८)

(ऋषि—शयु । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत:, प्रगाथ)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारव: ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वत: ॥ १ ॥
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिव: ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र स किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! हम स्तोता अन्न प्राप्ति वाले यज्ञ मे तुम्हारा ही आह्वान करते है। तुम साधु पुरुषो के रक्षक और वृष्टि वर्षक हो। जब कोई घिर जाता है तब तुम्हारा ही आह्वान किया जाता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे द्वारा उपसित होकर इस विजय की कामना वाले राजा के निमित्त अश्व रथ, धेनु आदि प्रदान करो हे इन्द्र ! तुम अपने कर मे वज्र धारण करने वाले हो ॥ २ ॥

सूक्त (९९)

(ऋषि—मेध्यातिथि: । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत: प्रगाथ)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायव: ।
समीचीनास ऋभव समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुमने पहले सोमपान किया था उसी भाँति सोमपान के लिए ऋभु देवता और रुद्र दवता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

सस्कारित मोम से हर्षोन्मत होने पर वे इन्द्र यजमान को धन और बल से सपन्न करते है। यह स्तोता उन इन्द्र के गौरव को ही पूर्ववत बखानते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (१००)

(ऋषि—नृमेध । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् मह ससृज्महे ।
उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥
वार्ण त्वा यव्याभिवर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वास चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे ।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥

जैसे जल के आकाक्षी जल मे जल को मिश्रित करते हैं, उसी भाँति हे इन्द्र ! तुम्हे चाहने वाले पुरुष तुम्हे सोमरूपी जलो से सयुक्त करते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रत्येक स्तुति पर अपनी वृद्धि की इच्छा करते हो अत यह मत्र तुम्हें जल की भांति प्रवृद्ध करते हैं ॥ २ ॥

युद्ध मे जाने वाले इन्द्र के स्तुति गान से मत्र द्वारा सयुक्त होने वाले इन्द्र के अश्व रथ मे योजित होते है ॥ ३ ॥

सूक्त (१०१)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अग्नि दूत वृणीमहे होतार विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।। ११ ।।
अग्निमग्नि हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाह पुरुप्रियम् ।। २ ।।
अग्ने देवां इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्य ।। ३ ।।

वे अग्नि सबके ज्ञाता और होता रूप हैं। वे यज्ञादि कर्मों को श्रेष्ठता प्रदान करते है। अत हम उन अग्नि देव का वरण करते हैं । १ ।।

हव्य वहन करने वाले, अनेको के प्रिय प्रजापति अग्नि को यजमान आहुति अर्पित करते हैं अत हम भी अग्नि को हवि प्रदान करते है। २ ।।

हे अग्ने ! ऋत्विज के लिये प्रज्वलित होते हुए तुम हमारे होता हो, अतः देवगणो को हमारे यज्ञ मे लाओ ।। ३ ।।

सूक्त (१०२)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शत· समग्निरिध्यते वृषा ।। १ ।।
वृषो अग्नि समिध्यतेऽश्वो न देववाहन ।
त हविष्मन्त ईडते ।। २ ।।
वृषण त्वा वय वृषन् वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यत बृहत् ।। ३ ।।

वे अग्नि देव स्तुतियो और नमस्कारो के योग्य हैं, वे काम्यवर्षक एवं दर्शन करने योग्य हैं। वे अपने धूएँ को तिरछा करते हुए प्रदीप्त होते हैं ।। १ ।।

देवताओ को वहन करने वाले अश्व के समान, वे बल वर्षक अग्नि प्रज्वलित होते हैं तब हवि दाता यजमान उन अग्नि की उपासना करते हैं ।। २ ।।

हे वृषन ! हे अग्ने ! हम हविवर्षक तुम फलवर्षक को भली भाँति प्रदीप्त करते हैं। अत तुम भली भाँति प्रज्वलित करो ॥ ३ ॥

सूक्त (१०३)

(ऋषि—सुदीतिपुरुमीढौ, शर्म । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती)

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभि: शीरशोचिषम् ।
अग्नि राये पुरुमीढ श्रुत नरोऽग्नि सुदीतये छर्दि: ॥ १ ॥
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतार त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठ बर्हिरासदे ॥ २ ॥
अच्छा हि त्वा सहस: सूनो अङ्गिर स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपात घृतकेशमीमहेऽग्नि यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥

हे मनुष्य ! अग्नि की गाथाओ द्वारा तू अन्न प्राप्ति के लिए अग्नि की स्तुति कर। वह अग्नि धन देने के लिए प्रसिद्ध दीप्त एव शोभनीय हैं तू उन्हे ही पूज ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हम होता तुम्हे आहूत करते हैं, तुम अपनी सभी शक्तियो सहित पधारो। प्रयता हविष्मती बर्हि तुम से सुसगत हो ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तुम अंगिरा गोत्रीय हो एव जल के पुत्र रूप हो। यह के श्रुच तुम्हारे सामने घूमते हैं। सर्वदा नूतन एव पराक्रमी अग्नि का यज्ञ मे हम भी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (१०४)

(ऋषि—मेध्यातिथि: नृमेध । देवता—इन्द्र । छन्द—प्रगाथ)

इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णा शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३ ॥
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तुम असीम वैभव से युक्त हो हमारी अग्नि के समान पवित्र वाणियाँ तुम्हें प्रवृद्ध करें। हे स्तोताओ ! तुम इन्द्र के निमित्त स्तोत्रो का पाठ करो ॥ १ ॥

जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त समुद्र वत यह अग्नि ऋषियो को हवियो से सहस्त्र गुणा वृद्धि का प्राप्त होते हैं। मैं इन अग्नि की महिमा का यथोचित वर्णन कर रहा हूँ। इन अग्नि का बल यज्ञो मे देखने योग्य होता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम हवि के योग्य हो। तुम हमको सभी यज्ञो मे सुशोभित करो। वह इन्द्र वृत्र के हनन कर्त्ता हैं। वह ऋचाओ के अनुकूल अपना रूप प्रकट करते हैं। वे इन्द्र हमारे सवनो को हवियो को और मन्त्रो को शोभित करे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुम धन दाता हो एव प्रभुता प्रदायक हो। तुम जल के पुत्र को हम प्रज्वलित करते हुए वरण करते हैं ॥ ४ ॥

सूक्त (१०५)

(ऋषि—नृमेध, पुरुहन्मा । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत प्रगाथ, बृहती)

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यत ॥ १ ॥
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २ ॥
इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ ॥
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ ४ ॥
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तुम अशस्ति के नाश करने वाले कल्याण प्रद, मरणात्मक युद्धो मे प्रतिस्पर्धा करने वाले हो। तुम स्वय सबसे त्वरा करते हो ॥ १ ॥

तुम्हारे त्वरावान बल के पीछे द्यावा पृथ्वी उसी प्रकार गमन करते हैं जैसे पुत्र के पीछे माता पिता पहुँचते हैं। जब तुम वृत्रासुर सहार मे व्यस्त थे तब उसको द्वेष वृत्तिया तुम्हे विनष्ट करने की इच्छा कर रही थी ॥ २ ॥

यहाँ से प्रेरित होने वाली रक्षक शक्तिया तुम्हे अप्रहित अजर, रथितम, अतूर्त, तुग्यवृध, प्रहेता, हेता और द्रुतकर्मा बना रही थी ॥ ३ ॥

मानवो के राजा सेनाओ को लाघने वाले, वृत्रासुर सहारक ज्येष्ठ और रथो द्वारा मंत्रो के सामने जाने वाले जो हैं, उनका स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥

हे पुरुहन्मन ! उन इन्द्र की सत्ता अतरिक्ष और स्वर्ग मे भी है। क्रीडाहेतु हाथ मे लिया हुआ उनका वज्र सूर्य के समान दर्शनीय है। इस यज्ञ मे तुम उन इन्द्र को ही सुप्रतिष्ठित करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१०६)

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १ ॥
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

तुम्हारा इन्द्रात्मक महान पराक्रम बुद्धि द्वारा वरणीय है। वह कर्म रूप वज्र को तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारा वीर्य है जल और पर्वत तुम्हे प्रेरित करते है। पृथ्वी तुम्हारे द्वारा ही अन्न की वृद्धि करती है । २ ॥

हे इन्द्र ! सूर्य, वरुण, यम और विष्णु तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। वायु का अनुगत बल तुम्हे प्रसन्न करता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१०७)

(ऋषि—वत्स, बृहद्दिवोऽथर्वा ब्रह्मा, कुत्स । देवता—इन्द्र सूर्यः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप, पंक्ति)

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १ ॥
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २ ॥
वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा ।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३ ॥

सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेन मदन्ति
विश्व ऊमा: ॥ ४ ॥
वावृधान शवसा भूय शत्रुर्दासाय भियस दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि स ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमा ।
स्वादो: स्वादीय स्वादुना सृजा समद सु मधु
मधूनाभि योधी ॥ ६ ॥
यदि चित्तु त्वा धना जयन्त रणेरणे अनुमदन्ति विप्रा: ।
ओजीय: शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्
दुरेवास कशोका ॥ ७ ॥
त्वया वय शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभि: स ते शिशामि
ब्रह्मणा वयासि ॥ ८ ॥
नि तद् दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत: मातर जिगत्नुमत इन्वत
कर्वराणि भूरि । ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मान समृभ्वाणमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भर्योजा. प्र सक्षति प्रतिमान
पृथिव्या: ॥ १० ॥

समुद्र के लिए जैसे नदियाँ झुककर चलती हैं, उसी भाँति इन कर्मशील इन्द्र के लिए समस्त प्रजायें नमन करती है ॥ १ ॥

द्यावा पृथ्वी को इन्द्र चर्म के समान आवृत कर लिया था, इन्द्र का यह महान पराक्रम था ॥ २ ॥

क्रोधवन्त वृत्र के सिर को इन्द्र ने अपने शतपर्वा एक रक्त वर्षक वज्र द्वारा छिन्न-भिन्न कर डाला था ॥ ३ ॥

यह इन्द्र पराक्रमी और धनवान है, समस्त भुवनो मे परम श्रेष्ठ है। उत्पन्न होते ही शत्रुओ का सहार करते है। इनके प्रकट होते ही इनकी रक्षक शक्तियाँ बलवान हो उठती हैं ॥ ४॥

स्थावर जगम जगत ब्रह्म मे लीन हो जाता है। बल द्वारा प्रवृद्ध शत्रु सेवको को कष्ट देता है। युद्धो मे वेतन भोगी सैनिक उन इन्द्र की ही याचना करते हैं ॥ ५ ॥

यह वीर जन्म, सस्कार और युद्ध की दीक्षा ग्रहण करने के कारण द्विजन्मा कहलाते है। उन वीरो को सुस्वादु पदार्थों से सपन्न करो ॥ ६ ॥

हे वीर! तुम प्रत्येक युद्ध मे धनो को जीतते हो। यदि ब्राह्मण तुम्हारा स्तवन करे तो पराक्रमी बनाओ। सुख के अवसर पर दुखदायी पुरुष तुम्हे प्राप्त न हो ॥ ७ ॥

तुम्हारे द्वारा ही युद्ध भूमि मे हम विपक्षियो का सहार कराते हैं। मैं अपने तप द्वारा सिद्ध हुए वचनो से तुम्हारे शस्त्रो को प्रेरित करना और पक्षी के समान वेगवान तुम्हारे बाणो को मन्त्रो के द्वारा तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

जिस ग्रह मे अन्न द्वारा पोषण हुआ है जिसे श्रेष्ठ प्राणियो ने धारण किया है, उस घर मे माता द्वारा शक्ति स्थापित हो, फिर इस गृह को समस्त शोभनीय पदार्थों से सपन्न करो ॥ ९ ॥

हे स्तोता! परम तेजस्वी, विचरणशील, श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र का स्तवन करो। यह पृथ्वी रूपी इन्द्र इस यज्ञ स्थान मे व्याप्त हो रहे हैं ॥ १० ॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिव कृणवदिन्द्राय शूषमग्रिय स्वर्षा ।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद् विश्वमर्णवत् तपस्वान् ।। ११ ।।
एवा महान् बृहद्दिवो अथर्वावोचत् स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चने शवसा वर्धयन्ति च ।। १२ ॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्यं उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नस्तमांसि विश्वातारीद् दुरतानि शुक्रः ।। १३ ।।
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।। १४ ।।
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ।। १५ ।।

यह नृप स्वर्ग के स्वामी इन्द्र के निमित्त स्तोत्र पाठ करता हुआ स्वर्ग की इच्छा करता है। वह इन्द्र मेघ के जल की वर्षा करते हुए संसार को जल से तुष्ट करते हैं ।। ११ ।।

महर्षि अथर्वा ने अपने को इन्द्र मानते हुए कहा – पाप रहित्त मातारिम्बरी इसे हर्षित करती हुई बल बृद्धि करती है ।। १२ ।।

यह रश्मिवत इन्द्रवत इन्द्र सब दिशाओ की ओर उठते हुए अपने प्रकाश से दिन को प्रकट करते हैं और सब अन्धकारो और पापो से पार होते हैं ।। १३ ।।

किरणो का पूजन योग्य समूह मित्र वरुण और अग्नि के चक्षु रूप से प्रकट हो रहा है। यह सूर्य ही प्राणियो के आत्मा

है और अपनी महिमा से द्यावा पृथ्वी और अन्तरिक्ष को सम्पन्न करते हैं ॥ १४ ॥

पति के पत्नी रूप के पीछे जाने के समान सूर्य भी इन उषाओ के पीछे गमन करते हैं। उस समय सज्जन पुरुष देव कार्य मे दिन को लगाते हुए सूर्य के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं ॥ १५ ॥

सूक्त (१०८)

(ऋषि—नृमेध । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

त्व न इन्द्रा भर ओजो नृम्ण शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीर पृतनाषहम् ॥ १ ॥

त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

यह शतकर्मा इन्द्र ! हमको धन बल और शत्रुओ को पराजित करने वाली सन्तान प्रदान करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम हमारे माता पिता हो, अत हम तुमसे सुख की याचना करते हैं ॥ २ ॥

हे इन्द्र तुम हविरूप अन्न की इच्छा करने वाले हो। मैं तुम्हारा स्तवन करता हूँ। मुझे वीरो से युक्त धन दो ॥ ३ ॥

सूक्त (१०९)

(ऋषि—गोतम । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति)

स्वादोरित्था विषूवतो मध्व पिबन्ति गौर्य ।

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ।। १ ।।
ता अस्य पृशनायुव सोम श्रीणन्ति पृश्नय· ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम ।। २ ।।
ता अस्य नमसा सह सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ।। ३ ।।

स्तोत्र रूप वाणियाँ विषुवत यज्ञ के स्वादिष्ट मधु इस भाँति पान करती हैं, जिसमे रात्रियो पर्यन्त इन्द्र से सुस होकर वह इन्द्र को आनन्दित करतो रहे। हे यजमान ! इ पश्चात तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ।। १ ।।

पृश्नियाँ इस सोम को पका रही हैं। इन्द्र की ग इन्द्र के वाणो और वज्र को प्रेरित करती है। इन रात्रि पश्चात् हे यजमान ! तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा

वाणियाँ हवि के द्वारा इन्द्र की उपासना करती हैं यजमान के महान व्रत इन्द्र से सयुक्त होते हैं। इन रात्रियो बाद हे यजमान ! तू अपने राज्य पर सुशोभित होगा ।। ३ ।।

सूक्त (११०)

(ऋषि--श्रुतकक्ष. सुकक्षो वा । देवता--इन्द्रः छन्द--गायत्री)

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारव. ।। १ ।।
यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ।। २ ।।

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञ मत्नत ।
तमिद् वर्धन्तु नो गिर. ॥ ३ ॥

सेवा के योग्य इस यज्ञ मे सस्कारित सोम से युक्त हमारी वाणिया स्तवन करती हुई इन्द्र की आराधना करें ॥ १ ॥

सब विभूतमयी सभाये जिन्हे प्राप्त होती है, उन इन्द्र को सोम के अभिषुत होने पर आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

इस ज्ञान प्रद यज्ञ को त्रिकद्रुको ने प्रारम्भ किया, उसे हमारी वाणियाँ प्रबृद्ध करें ॥ ३ ॥

सूक्त (१११)

त्व हि न (ऋषि - पर्वत । देवता—इन्द्र । छन्द—उष्णिक्)
अधा ते सुतोममिन्द्र चिष्णवि यद्वा घ त्रित् आप्त्ये ।
त्वां शश्मिमरत्सु मन्वसे समिन्दुभि ॥ १ ॥
स नो रास्शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
गाक्रमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥
पराजिद्रासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! त्रित, यज्ञ आपत्य और मरुत मे जो तुम प्रसन्न होते हो, उसका कारण जल मिश्रित सोम ही है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ समुद्र अथवा हमारे यज्ञ मे आनन्द प्राप्त करते हो, वह जल युक्त सोम से ही आनन्दित होते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम सोम के अभिपुतकर्ता की वृद्धि करने वाले हो, जिसके उक्थ्य में तुम रमण करते हो, वह जलमिश्रित सोम द्वारा ही करते हो ॥ ३ ॥

सूक्त (११२)

(ऋषि- सुकक्ष । देवता- इन्द्र. । छन्द—गायत्री)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥
यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।
उतो तद् सत्यमित् तव ॥ २ ॥
ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।
सर्वांस्तां इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम वृत्रासुर के संहारक हो। जिस क्षण तुम प्रकट होते हो, वह समय तुम्हारे ही अधीन है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम जिसे चाहते हो कि यह मृत्यु को प्राप्त न हो तो वह सत्य ही होता है ॥ २ ॥

जो सोम दूर अथवा निकट कही भी निष्पन्न होते हैं, उनके पास इन्द्र स्वय ही उपस्थित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

सूक्त (११३)

(ऋषि—भर्ग. । देवता—इन्द्रः । छन्द—प्रगाथ)

उभय शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिद वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥
त हि स्वराज वृषभ तमोजसे धिषणे निष्टतक्षुतु. ।
उतोपमाना प्रथमो नि षीदसि सोमकाम हि ते मनः ॥ २ ॥

इन्द्र दोनो लोको मे हितकर कर्म करने वाले है, वे इन्द्र हमारे वचन को यह मानते हुए सुनें कि इन्द्र देव सोम पानार्थ पधार रहे हैं ॥ १ ॥

वे इन्द्र कामनावर्षक और अपनी दीप्ति से दीप्तवान है।

आकाश पृथ्वी को तनू करते हैं। तुम उपमान को प्राप्त होते हो और सोम की कामना करते हो ॥ २ ॥

सूक्त (११४)

(ऋषि—सौभरि । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ ३ ॥
नकी रेवन्त सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनु समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम प्रकट होते ही समक्ति करते हो और संग्राम मे 'आपित्व' की इच्छा करते हो। तुम शत्रु रहित हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हे सुराशु पुष्ट करते है। तुम जब गर्जन शील होते हो तब पिता के समान आहूत किए जाते हो। तुम धनवान को मित्र भाव के निमित्त प्राप्त करते हो ॥ २ ॥

सूक्त (११५)

(ऋषि—वत्स । देवता—इन्द्र छन्द—गायत्री)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।
अहं सूर्यइवाजनि ॥ १ ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्मभिद् दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुत ॥ ३ ॥

मैं सूर्य की भाँति उत्पन्न हुआ हूँ और पिता ब्रह्मा की बुद्धि को मैंने ग्रहण कर लिया है ॥ १ ॥

मैं पुरातन स्तोत्र द्वारा वणियो को सुशोभित करता हुआ इन्द्र को पराक्रमी बनाता हूँ ।। २ ।।

हे इन्द्र ! जिन ऋषियो ने तुम्हारा स्तवन किया है अथवा जिन्होने तुम्हारी स्तुति नही की, इससे उदासीन रहते हुए मेरे स्तवन द्वारा प्रवृद्ध हो ।। ३ ।।

सूक्त (११६)

(ऋषि—मेध्यातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती)

मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणाइव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ।। १ ।।
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सुकृत् सुते महता शूर राधसानु स्तोम मुदीमहि ।। २ ।।

हे इन्द्र ! हम तुम्हारा ऋण न चुका सकने के कारण दुष्ट शत्रुवत न समझे जांय । तुम्हारे द्वारा त्याज्य पदार्थों को हम भी दावाग्नी के समान त्याज्य समझें ।। १ ।।

हे वृत्रहन ! हम तुम्हारो वृद्धि के द्वारा सुखी हो । हम अपने को नाश से रहित समझे ।। २ ।।

सूक्त (११७)

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा य से सुषाव हर्यश्वाद्रि ।
सोतुर्बाहुभ्या सुयतो नार्वा ।। १ ।।
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ।। २ ।।
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमा यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।

हे इन्द्र ! जो सोम पाषाण द्वारा अभिषुत किया है, वह तुम्हे आनन्दित करें। पाषाण सोम सस्कार करने वाले के हाथ मे स्थित है। हे इन्द्र ! तुम इस सोम का पान करो ।।१।।

हे हर्यश्ववान ! इन्द्र ! तुम अपने जिस शोभनीय मद से मेघो को विदीर्ण करते हो वह तुम्हे आनन्दित करें ।। २ ।।

हे इन्द्र ! जिसे कीर्ति की वम्मिष्ठ उपासना करते है, उस मन्त्र समूह वाली मेरी वाणी को यज्ञ मे स्वीकार करो ।। ३ ।।

सूक्त (११८)

(ऋषि– भर्ग, मेध्यातिथिः । देवता—इन्द्र । छन्द– बार्हतः प्रगाथ)

शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशस वसुविदमनु शूर चरामसि ।। १ ।।
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर ।। २ ।।
इन्द्रमिद् देवतातय इन्द्र प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे इन्द्र धनस्य सातये ।। ३ ।।
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दव ।। ४ ।।

हे इन्द्र ! मेरी प्रार्थना है कि मै तुम्हारे समस्त रक्षा रूप साधनो से कीर्ति और सौभाग्य प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारा भक्त बनूँ ।। १ ।।

हे इन्द्र ! तुम नगर वासियो को अश्व रूप हो और धन को असीम बनाते हो। तुम गौओ की वृद्धि करने वाले हो हिरण्यमय और अहिंसित दान वाले हो। मैं तुम्हारे आश्रय मे

जिन पदार्थों के लिए आया हूँ, उन पदार्थों को मुझे प्रदान करो ॥ २ ॥

हम इन्द्र के सेवन करने वाले सग्राम उपस्थित होने पर धन पाने के लिए इन्द्र का आह्वान करते है ॥ ३ ॥

इन्द्र ने सूर्य को तेजस्वी बनाया और द्यावा पृथ्वी को अपनी महिमा से विस्तृत किया । यह इन्द्र सब भुवनो मे आश्रित होते हैं । यह सोम इन्द्र के लिए सस्कारित किए जाते है ॥४॥

सूक्त (११९)

(ऋषि--आयु, श्रुष्टिगु । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत: प्रगाथ)

अस्ताव्रि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीऋतस्य बृहतीरनूषत् स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचु ।
अस्मे रयि पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दव: ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! मैंने पुरातन स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन किया है। अब तुम भी यज्ञ की पुरातन ऋचाओ द्वारा स्तुति करो । स्तोताओ की बुद्धि मन्त्रो से सपन्न हो गई है ॥ १ ॥

इस यजमान के लिए धन की वृद्धि और बल प्राप्त होता है। इन इन्द्र के लिए सोम सिद्ध होते है । शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा मन्त्रो की प्रशसा करते हैं। २ ॥

सूक्त (१२०)

(ऋषि--देवातिथि । देवता--इन्द्र । छन्द--बार्हत प्रगाथ)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारो दिशाओ मे स्थित मनुष्यो द्वारा आह्वान किए जाते हो । तुम पूर्ण रूप से शत्रुओ के विनाशक हो । तुम इस यजमान के लिए पदार्पण करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कण्व गोत्री ऋषि तुम्हे हवि अर्पित करते है । तुम रुम, रुशम और श्यावक मे एक साथ हर्ष प्रकट करते हो । तुम यहाँ पधारो ॥ २ ॥

सूक्त (१२१)

(ऋषि--देवातिथि । देवता--इन्द्र । छन्द--बार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हे बिना दुही गौओ के समान प्रेरित करते है तुम ससार के ईश्वर और स्वर्ग के द्रष्टा हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कोई पार्थिव और दिव्य वाणी तुम्हारे समकक्ष नही है । हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व और अन्न की कामना से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (१२२)

(ऋषि--शुन शेप । देवता-इन्द्र । छन्द--गायत्री)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

जिन पदार्थों के लिए आया हूँ, उन पदार्थों को मुझे प्रदान करो ॥ २ ॥

हम इन्द्र के सेवन करने वाले संग्राम उपस्थित होने पर धन पाने के लिए इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र ने सूर्य को तेजस्वी बनाया और द्यावा पृथ्वी को अपनी महिमा से विस्तृत किया। यह इन्द्र सब भुवनों में आश्रित होते हैं। यह सोम इन्द्र के लिए संस्कारित किए जाते है ॥४॥

सूक्त (११९)

(ऋषि—आयु, श्रुष्टिगु । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत प्रगाथ)

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ १ ॥
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥

हे ऋत्विजो ! मैंने पुरातन स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन किया है। अब तुम भी यज्ञ की पुरातन ऋचाओं द्वारा स्तुति करो। स्तोताओं की बुद्धि मन्त्रों से सम्पन्न हो गई है ॥ १ ॥

इस यजमान के लिए धन की वृद्धि और बल प्राप्त होता है। इन इन्द्र के लिए सोम सिद्ध होते है। शीघ्रता करने वाले ब्राह्मण पूजा मन्त्रों की प्रशंसा करते हैं। २ ॥

सूक्त (१२०)

(ऋषि—देवातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हत प्रगाथ)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारो दिशाओ मे स्थित मनुष्यो द्वारा आह्वान किए जाते हो । तुम पूर्ण रूप से शत्रुओ के विनाशक हो । तुम इस यजमान के लिए पदार्पण करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कण्व गोत्रो ऋषि तुम्हे हवि अर्पित करते है । तुम रुम, रुशम और श्यावक मे एक साथ हर्ष प्रकट करते हो । तुम यहाँ पधारो ॥ २ ॥

सूक्त (१२१)

(ऋषि—देवातिथि । देवता—इन्द्र । छन्द—बार्हतः प्रगाथः)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥

हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हे बिना दुही गौओ के समान प्रेरित करते हैं तुम ससार के ईश्वर और स्वर्ग के द्रष्टा हो ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! कोई पार्थिव और दिव्य वाणी तुम्हारे समकक्ष नही है । हे इन्द्र ! तुम गौ, अश्व और अन्न की कामना से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २ ॥

सूक्त (१२२)

(ऋषि—शुनःशेपः । देवता-इन्द्र । छन्द—गायत्री)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥

आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णविय्रा ।
ऋणोरक्ष न चक्र्यो ॥ २ ॥

आ यद् दुव. शतक्रतवा काम जरितृणाम् ।
ऋणोरक्ष न शचीभिः ॥ ३ ॥

हम यज्ञ मे इन्द्र के पदार्पण करने पर अन्न की विभिन्न विभूतियो से सपन्न होते हुये सुख प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा का आकाक्षी स्तोताओ के अनुग्रह से चलने वाले रथ के दोनो पहियो के अक्ष के समान दृढ हो हो जाता है ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारा आराधक तुम्हारी शक्ति को प्राप्त करता हुआ चलने वाले रथ के अक्ष के समान दृढ होता है ॥ ३ ॥

सूक्त (१२३)

(ऋषि—कुत्स । देवता—सूर्य । छन्द—त्रिष्टुप्)

तत् सूर्यस्य देवत्व तन्महित्व मध्या कर्तोविंतत स जभार ।
यदेदयुक्त हरित सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाज कृष्णमन्यद्धरित स भरन्ति ॥ २ ॥

वे सूर्य अपनी महिमा से किरणो को अपने मे आवृत कर लेते हैं तो व्याप्त समस्त कर्मों को समेट लेते है और तब अन्धकार को चहुँ ओर से आवृत करती हुई पृथ्वी वस्त्र को अर्पण करती है ॥ १ ॥

मैं मित्रावरुण की महिमा को बखानता हूँ । वे सूर्य रूप से स्वर्ग मे अपना रूप निर्मित करते हैं उनका तेज दीप्यमान

है, इनका द्वितीय तेज काले वर्ण का है, उसे सूर्य किरणें भरण करती है ॥ २ ॥

सूक्त (१२४)

(ऋषि—वामदेव, भुवन । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥
इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ ४ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्व मभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ ॥

सर्वदा वृद्धि करने वाले वे मित्र किस रक्षा साधन द्वारा हमारी रक्षा करेंगे। वह रक्षात्मक वृत्ति किस प्रकार सपन्न होगी ॥ १ ॥

हे इन्द्र! आनन्द प्रद हवियो में सोम रूप अन्न का कौन सा भाग उत्कृष्ट है जिससे प्रसन्न होकर तुम धनो को अपने उपासको मे विभक्त कर देते हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र! तुम हम स्तोताओ के सखा रूप हो। तुम हमारे समक्ष सैकडों बार आविर्भूत हुए हो ॥ ३ ॥

इस यज्ञ को ऋत्विज और सब देवगणो सहित इन्द्र सम्पन्न करें। सूर्यात्मक इन्द्र हमारे शरीर और सन्तति को पराक्रमी बनाऐं। ४।

देवत्व की रक्षा हेतु जिन देवगणो ने राक्षसो का सहार किया वे इन्द्र सूर्यो और मरुद्गणो सहित हमारे शरीरो की रक्षा करे ॥ ५।

वे देव अपने पराक्रम से सूर्य को सबके समक्ष प्रकट करते है। उन्होने पृथ्वी को हवि युक्त किया है। हम देवताओ के सेवक उन्ही के द्वारा अन्न प्राप्त करे और वीरो से सुसगत रहते हुए शतायुष्य हो ॥ ६ ॥

सूक्त (१२५)

(ऋषि- सुकीर्ति । देवता—इन्द्र, अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो आभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ।। १ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यव चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं
न जग्मु ॥ २ ॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषण
वाजयन्त· ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिनाना शुभस्पती इन्द्र कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथु काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिब शचीभि सरस्वती त्वा

मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥
इन्द्र सुत्रामा स्ववाँ अत्रोभि सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभय नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतय स्याम । ।
ससुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेष सनुतर्युयोतु
तस्य वय सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तुम चारो दिशाओ से हमारे शत्रुओ को रोको जिससे हम तुम्हारे द्वारा दिए हुए सुख को भोग सकें ।

हे अग्ने ! जैसे जौ सपन्न कृषक बहुत से यवो को सयुक्त कर काटते है वैसे ही हवि से सयुक्त हुई कुशाओ का सेवन करो ॥ २ ॥

युद्धो मे हमको अन्न नही मिला फसलो के समय भी हमको आवश्यकतानुसार अन्न प्राप्त नही हुआ, अत सखा इन्द्र की कामना करते हुए हम अश्व गौ और अन्न की याचना करते है ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! नमुचि राक्षस से युद्ध होते समय तुमने हर्षोन्मत्तकारी सोम का पान कर इन्द्र को रक्षा की ॥ ४ ॥

हे अश्विद्वय ! तुमने अपने शत्रु विनाशक कौशल से इन्द्र की उसी भाँति रक्षा की है जिस भाँति माता पिता अपने बालक का पालक करते है। हे इन्द्र ! तुमने शोभनीय सोम का पान किया है । तुम्हे सरस्वती अपनी विभूतिया स सीचे ॥ ५ ॥

रक्षक एव ऐश्वर्यवान इन्द्र अपने रक्षा साधनो से हमको सुख प्रदान करें। यह पराक्रमी इन्द्र हमारे शत्रुओ का विनाश कर हमे अभयता प्रदान करें। हम सुन्दर धनो से सपन्न हो । ६ ॥

रक्षक इन्द्र दूर से हमारे शत्रुओ को भगावें। उन यज्ञ के योग्य इन्द्र की कृपा बुद्धि मे स्थित हुए हम उनकी कल्याणमय भावना को सदा प्राप्त करते रहें ॥ ७ ॥

सूक्त (१२६)

(ऋषि—वृषाकपिरिन्द्राणी च। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्र देवममंसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत्।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ ९ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १० ॥

वृषाकपिदेव ने इन्द्र को देवता के समान समझा। वे वृषाकपि पुष्टियो के पालक है और मेरे मित्र हैं अत मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृषाकपि से अधिक द्रुतगामी हो। तुम शत्रुओ को पीडित करने मे पूर्ण समर्थ हो। जहाँ सोम-पान का साधन नही है वहाँ तुम उपस्थित नही होते अत इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है। २ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपि ने तुम्हे किस कारण से हरित वर्ण का मृग बनाया है। जो तुम इन्हे पुष्टि दायक अन्न प्रदान करते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम जिन वृषाकपि का पोषण करते हो क्या इसके समान कुत्ता अगडाई लेता है, क्या वाराह की कामना वाला कान पर जमाई लेता है ? इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥

रक्षक इन्द्र दूर से हमारे शत्रुओं को भगावें। उन यज्ञ के योग्य इन्द्र की कृपा बुद्धि मे स्थित हुए हम उनकी कल्याणमय भावना को सदा प्राप्त करते रहे ॥ ७ ॥

सूक्त (१२६)

(ऋषि—वृषाकपिरिन्द्राणी च । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ३ ॥
यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ५ ॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ६ ॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपि
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ ९ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १० ॥

वृषाकपिदेव ने इन्द्र को देवता के समान समझा। वे वृषाकपि पुष्टियो के पालक है और मेरे मित्र हैं अत मैं इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तुम वृषाकपि से अधिक द्रुतगामी हो। तुम शत्रुओ को पीडित करने मे पूर्ण समर्थ हो। जहाँ सोम-पान का साधन नही है वहाँ तुम उपस्थित नही होते। अत इन्द्र सबसे उत्कृष्ट हैं। २ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपि ने तुम्हे किस कारण से हरित वर्ण का मृग बनाया है। जो तुम इन्हे पुष्टि दायक अन्न प्रदान करते हो। इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुम जिन वृषाकपि का पोषण करते हो क्या इसके समान कुत्ता अंगडाई लेता है, क्या वाराह की कामना वाला कान पर जमाई लेता है ? इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ

कपि ने मेरे प्रेमियो को तनू किया और व्यक्ता ने दोष-युक्त किया। दुष्कर्म मे स्थापित होना सुगम नही होता। मैं इसके शिर को शब्द युक्त करता हूँ। इन्द्र सबसे महान है ॥ ५ ॥

मेरी पत्नी ने तो सयाशुतरा है और न सुभसत्तरा है और प्रत च्य वीयसी तथा सक्थियो को बैठाने वाली भी नही है, इन्द्र परमोत्कृष्ट हैं॥ ६ ॥

हे अम्ब ! मेरा सिर कटि सक्थि पक्षी के समान फडक रहे हैं। जैसा होना है वैसा हो। इन्द्र परमोत्कृष्ट है ॥ ७ ॥

हे शूरपत्नी ! तू सुन्दर भुजा सुन्दर उँगली पृथुस्तु एव पृथु जाँघ वाली है। तू क्यो हमे वृषाकपि के समक्ष हिंसित करती है। इन्द्र परमोत्कृष्ट है ॥ ८ ॥

यह नहुष अपने शरीर को नष्ट करने की इच्छा लेकर मुझे वीर-रहित समझता है। परन्तु मैं वीर सपन्न पति से युक्त हूँ। मेरे पति मरुद्‌गणो के मित्र इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ९ ॥

यज्ञ मे पुरुष के साथ नारी होत्र रूप से बैठती है। वह इस प्रकार यज्ञ की रचियित्री है, वह वीर पत्नी इन्द्राणी स्तवन योग्य है क्यो कि इन्द्र सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १० ॥

इन्द्राणीमासु दारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपर चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रिय देवेषु गच्छति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १२ ॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।

घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रिय काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर । ३ ॥
उक्ष्णो हिमे पचदश साकं पचन्ति विशतम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १४ ॥
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मायस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति
भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥
न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १६ ॥
न सेशे यस्य रोमश निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥
अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ १८ ॥
अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकश
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर. ॥ १९ ॥
धन्व च यत् कृन्तत्रं च कति स्वित् ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ २० ॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तर ॥ २१ ॥
यदुद्ञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।

पवस्य पुल्वघो मृग कमग जनयोपनो
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ २२ ॥

पशुर्ह नाम मानवी साक ससूव विंशतिम् ।
भद्र भल त्वस्या अभूद् यस्या उदरमामयद्
विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥ २३ ।

मैं इन्द्र पत्नी को परम सौभाग्यशालिनी समझता हूँ क्यो कि इनका पति न तो मृत्यु को प्राप्त होता है और न वृद्ध ही होता है। अन्य नारियो के पति को मरणशील व्यक्ति हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्राणि ! मैं अपने सखा वृषाकपि के अतिरिक्त अन्यत्र कही नही जाता। इनकी हवन की सामिग्री जल से सस्कारित होती है । वे मुझे इन सब देवताओ मे सबसे ज्यादा प्यारे हैं। मै इन्द्र सब देवताओ से उत्कृष्ट हूँ ॥ १२ ॥

हे वृषाकपिरूप सूर्य की पत्नी ! तू सुपुत्रो से सम्पन्न है और तेरे पास धन भी बहुत है ॥ ३ ॥

मुझ महान के पन्द्रह साक बीस को शुद्ध करते हैं। मैं उनको खाता हूँ। मेरी कुक्षिया पूर्ण हैं। इन्द्र देवता सब देवताओ मे श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तेज सींग वाले बैलो के गौओ मे शब्द करने के समान जिनके हृदय मे तुम्हारा मन्थ सुख देता है, वही मनुष्य सुखदाता है क्यो कि इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

सक्थियो मे कपृत लटकाने वाला यश प्राप्त नही करता। बैठने की इच्छा वाले जिनका शरीर अगडाई लेता है, वह सहनशील होता है। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

जिसका चोला आलस्य करता है, वह असमर्थ होता है

और जिमका कपृत् स'क्थयो मे लटकता है वह सामर्थ्य वाला होता है। इन्द्र सर्व श्रेष्ठ है। १७॥

हे इन्द्र! वृषाकपि ने अपने पास क्षीण हुए शत्रु धन को प्राप्त किया और असि, चूना, नवीन, चरु को ग्रहण किया, वह इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

मैं काम करने वाले पुरुष की खोज करता हूँ। मैं निष्पन्न मदिरा को पी रहा हूँ। इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है ॥१६॥

मरुस्थल और आकाश की दूरी कितनी है। हे वृषाकपे! तुम पास के स्थान से घरो मे आया करो ॥ २० ॥

हे वृषाकपे! तुम उदय होते ही स्वप्न को नष्ट कर देते हो और छिपते भी हो। तुम ही ससार मे सर्वश्रेष्ठ हो। इस लिये जल्दी उदय हो जाओ। फिर हम ससार की भलाई में सुदर कार्यों की योजना तैयार करे॥ २१ ॥

हे सूर्य देव! तुम उत्तर मे रहते हुये महलो की प्रदक्षिणा करते हुये छिपते हो। तब लोग अपने अपने घरो मे अधकार को देखकर चोक जाते हैं और कहते है कि सूर्य देव कहाँ गये? वे प्राणियो को मोहित करने वाले सूर्य सर्वश्रेष्ठ है॥ २२ ॥

मानवी पशु ने बोम का अद्भव किया जिसका पेट रोगी था उसके लिये बुरा हुआ इन्द्र सब मे महान् है॥ २३ ॥

सूक्त (१२७)

इद जना उप श्रुत नराशस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्त्रा नवतिं च कौरम आ रुषमेषु दद्महे ॥ १ ॥
उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश।
वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृश. ॥ २ ॥

एषा इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥
वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।
नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४ ॥
प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते ।
अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५ ॥
प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्
देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६ ॥
राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति ।
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७ ॥
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन् ।
कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८ ॥
कतरत् त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् ।
जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥
अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम् ।
जनः स भद्रमेधते राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः ॥ ११ ॥
इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

हे नराशंस, कौरम ! (स्तो)ताओं के बारे में सुनो कि हम साठ सौ (र)शम प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

जिसके देह रूपी रथ के बीच ऊँट हाँकने वाले है, वह आकाश को छूते हुये ही डन करते है ।। २ ।।

अन्न प्राप्ति के लिये मैं सौ मिष्क तीन सौ अश्व व एक हजार गायें और दस मालाये देता हूँ ।। ३ ।।

हे प्रार्थना करने वालो ! जैसे पके हूये फलो से लदें पेड पर बैठा हुआ पक्षी मधुर शब्द करता है वैसे तुम भी करो । हाथ मे लिगे हुये छुरे के समान, कार्य के समाप्त होने पर भी तुम्हारी जीभ न रुके ।। ४ ।।

यह मनीषी स्तुति करने वाले वीर्यवान बैलो के समान हैं इनके घरो मे सुपुत्र, गायें आदि हैं ।। ५ ।।

हे स्तोता ! जिस प्रकार की वाण से मनुष्य अपनी रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी इस मधुर वाणी से अपनी रक्षा कर । तू गायो और धन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को ले ।। ६ ।।

यदि यह देवता पाजा के मनुष्यो का अतिक्रमण करे तो वैश्वानर की सुखदायी स्तुति करनी चाहिये ।। ७ ।

देवता मगल रने वाला है, आसन को बाँटता है । इस प्रकार वढाया हुआ कौरव्य पति अपनी पत्नि से कहता है ।। ८ ।।

राजा परिक्षित के राज्य मे पत्नि अपने पति से पूछती है कि दही मथन मे निकला हुआ मक्खन कितना लाऊँ ।।९।।

पेट रूपी विल को पका हुआ जो प्राप्त होता है । राजा परीक्षित के राज्य मे इस प्रकार मनुष्य सुखी थे ।। १० ।।

स्तुति करने वाले मनुष्य से इन्द्र बोले – उठ, खडा हो । मनुष्यो मे घूम । तू मेरे अनुसार कार्य करने वाला हो । तेरा दुश्मन तेरे पास अपना सब कुछ छोड दे । ११ ।।

यहाँ मनुष्य और घोडे उत्पन्न हो। गायें बच्चे दें। सैकडो असख्य दक्षिणाओ के देने वाले पूपा यहाँ उपस्थित हो ॥ १० ॥

हे इन्द्र! गाये नष्ट न हो। इसका पालन अहिंसात्मक ढग से हो। दुश्मन और चोर का भी इन पर कोई असर न पडे ॥ १३ ॥

हे इन्द्र! तुम हमको सूक्त द्वारा प्रसन्न करते हो। हम तुम्हे सुखदायी वाणी से प्रसन्न करते है। तुम हमारी वाणियो का ऊपर से सुनो। हम कभी नाश को प्राप्त न हो ॥ १४ ॥

सूक्त (१२८)

य सभेयो विदथ्य. सुत्वा यज्वाथ पूरुष ।
सूर्यं चामू रिशादसस्तद् देवा. प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखाय दुधूर्षति ।
ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥
यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषि ।
तद् प्रा अब्रवीदु तद् गन्धर्व काम्य वच ॥ ३ ॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः ।
धीराणां शश्वतामह तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥
ये च देवा अयजन्ताथो ये च परादिदि. ।
सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो वि रप्शते ॥ ५ ॥
यो नाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यव ।
अब्रह्मा ब्रह्मण पुत्रस्तोता कल्पेषु समिता ॥ ६ ॥
य आक्ताक्ष सुभ्यक्त सुमणि सुहिरण्यव ।
सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु समिता ॥ ७ ॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्ययः ।
अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्यय ।
सुयम्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु समिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।
अनाशुरश्च्यामी तोता कल्पेषु समिता ॥ १० ॥

दान करने वाला, यज्ञ करने वाला, सभ्य आदमी सूर्य लोक को पार कर दूसरे लोको मे जाता है। देवताओ ने यह बात पहले ही जान ली थी ॥ १ ॥

मित्र का दूधूर्षिक, जामि से विस्तारक, अप्रचेता, ज्येष्ठ अधराक कहता है। २ ॥

जिस ब्राह्मण का पुत्र सुफा होता है, वह ब्राह्मण अभीष्ट वचन को कहने मे समर्थ है, वह गधव कहाता है। ३ ॥

जो वैश्य देवताओ को हवि प्रदान नही करता, वह शाश्वत धीरो का अपक् होता है। ऐसा सुनते है ॥ ४ ॥

जो स्तुति करने वाले यज्ञ एव दान करने वाले है वे सूर्य की तरह ही स्वर्ग मे जाते है। इन्द्र श्रेष्ठ है। ५ ॥

जो अनभक्त, अनताक्ष अमणिव, अहिरण्यव तथा अब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र स्तुति करने वालो मे सम्मित है ॥६॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुहिरण्यव, सुमणि, सुब्रह्मा है वह ब्रह्मपुत्र तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ ७ ॥

अप्राण, वेशन्ता, रेवा, अप्रतिदिश्य, अयम्भा, कन्या, कल्याणी तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्राणा, वेशन्ता रेवा, सुप्रतिदिश्य, सुयम्भा, कन्या, कल्याणी तोता कालो मे है ॥ ९ ॥

परिवृता, महिषी, स्वस्तया, युधिगम, अनासुर और आयामी तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या युधिगम ।
श्वाशरश्चायामी तोता कल्पेष सम्मिता ॥ ११ ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथा. ।
विरूप सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।
त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥

यः पर्वतान् व्यदधाद् यो अपो व्यगाहथा ।
इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन् ।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥

ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवाना बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

वावाता, महिषी स्वस्त्या युधिगम्, श्वासुर और मायामी तोता कल्पो मे सम्मित है ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तुमने दाशराज के पुत्र को विगाहित किया था, और तुम सबके लिये रूप रहित हुये थे । तुम यक्ष के साथ कल्पित होते हो ॥ १२ ॥

हे वर्षा करने वाले देवता इन्द्र ! तुम सूर्य के रूप मे अक्षु को झुकाते हो और रोहिण को विस्तृत मुख वाला करते हो, तुमने ही वृत्र का सर काटा था ॥ १३ ॥

जिन्होने पर्वतो को अडिग किया और जल को बहाया, जो वृत्रहन हैं, उन इन्द्र को नमस्कार है ॥ १४ ॥

हर्यश्वो की पीठ पर तेज गति को प्राप्त हुये इन्द्र के सम्बन्ध मे उच्चैश्रवा ने कहा--हे अश्व ! तेरा कल्याण हो । तू माला धारण करने वाले इन्द्र को चढाता है ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! सफेद घोडा तुम्हारे दक्षिण का ओर जुडते है। उन पूर्वाश्रो पर चढने वाले तुम देवताओ द्वारा नमस्कार के योग्य तथा महिमा सम्पन्न हो ॥ १६ ॥

सूक्त (१२६)

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥
प्रतोप प्राति सुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥
हरिक्नके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधु पुत्र हिरण्ययम् ॥ ५ ॥
क्वाहतं परास्य ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्त्र. शिंशपा ॥ ७ ॥
परि त्रय ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥
शृङ्ग धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाह ॥ ११ ॥
स इच्छक सघाघते ॥ १२ ॥
सघाघते गोमीद्या गोगतीरति ॥ १३ ॥
पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्प बद्ध वयो इति ॥ १५ ॥
बद्ध वो अघा इति ॥ १६ ॥
अजागार केविका ॥ १७ ॥
अश्वस्य वारो गोशपद्य के ॥ १८ ॥
श्येनीपती सा ॥ १९ ॥
अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥

यह अश्वा आती है ॥ १ ॥
सुत्वा प्रतीप का देना है ॥ २ ॥
इनमे से एक हरिनिक्का है ॥ ३ ॥
हे हरिनिक्के ! तेरी क्या इच्छा है ! ॥ ४ ॥
साधु पुत्रको हिरण्य ॥ ५ ॥
परास्य अहिंसात्मक रूप से कहा है ॥ ६ ॥
जिस स्थान पर यह तीन शिशपा है ॥ ७ ॥
सब ओर तीन हैं ॥ ८ ॥
साँप ॥ ९ ॥
सींगो को घमन्त करते बैठे हैं ॥ १० ॥
यह दिन तुम्हारा सबसे बडा अश्व हो ॥ ११ ॥
वह प्रार्थना करने वाले का सधाघन करने वाला है ॥ १२ ॥
गोमीद्या गोगतियो के लिये सघाघ करता है ॥ १३ ॥
पुरुष और पृथ्वी तुमको पूजते हैं ॥ १४ ॥
हे वृद्ध पुरुष ! यह तेरा अनाज हैं ॥ १५ ॥
हे वृद्ध ! तेरी अघा है ॥ १६ ॥
केविका चमकें नही ॥ १७ ॥
गोशपद्यक मे अश्व का आक्रमण है ॥ १८ ॥
वह श्येनीपति है ॥ १९ ॥
वह उपजीविका अनामय है ॥ २० ॥

सूक्त (१३०)

को अर्य बहुलिमा इषूनि ॥ १ ॥
को असिद्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पय. ॥ ३ ॥

क: कार्ष्ण्यां. पय ॥ ४ ॥
एत पृच्छ कुह पृच्छ ॥ ५ ॥
कुहाक पक्वक पृच्छ ॥ ६ ॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ॥ ७ ॥
अकुप्यन्त कुपायकु ॥ ८ ॥
आमणको मणत्सकः ॥ ९ ॥
देव त्वप्रतिसूर्य ॥ १० ॥
एनश्चिपक्तिका हविः ॥ ११ ॥
प्रदुद्र_वोमघाप्रति ॥ १२ ॥
शृङ्ग उत्पन्न ॥ १३ ॥
मा त्वाभि सखानो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥
इरावेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥
अथो इयन्निति ॥ १ ॥
अथो श्वा अस्थिरो भवन् ॥ १९ ॥
उय यकांशलोककः ॥ २० ॥

बहुत से तीरो को अपने अधिकार मे कौन रखता है ॥ १ ॥
असिद्यापय कौन सा है ॥ २ ॥
अर्जुन्यापय कौन सा है ॥ ३ ॥
कार्ष्णेयपय कौन सा है ॥ ४ ॥
इससे पूछो, कुह से पूछो ॥ ५ ॥
कुहांकपक्वक से पूछ ॥ ६ ॥
पति के समान मैं पृथ्वीयो से युक्त हुआ ॥ ७ ॥
कुपायकु नाराज हो गया है ॥ ८ ॥

आमणक मणत्मक ॥ ९ ॥
हे सूरज देवता ! ॥ १० ॥
एनश्चिप क्त वाली यज्ञ सामिग्री ॥ ११ ।
प्रदद्रु दो मघाप्रति ॥ १२ ॥
श्रङ्ग पैदा ॥ १३ ॥
मेरा दोस्त तुझे और मुझे मिले ॥ १४ ॥
वशा के पुत्र को मिलते हैं ॥ १५ ॥
हे इरावेदुमय दत ! ॥ १६ ॥
इसके बाद यह ऐसे है ॥ १७ ॥
फिर वह इस प्रकार है ॥ १८ ॥
फिर ज्वा अस्थिर होता है ॥ १९ ॥
उग्र यक्षाशलोकका ॥ २० ॥

सूक्त (१३१)

आमिनोनिति भद्यते ॥ १ ॥
तस्य अनु निभञ्जनम् ॥ २ ॥
वरणो याति वस्वभिः ॥ ३ ॥
शतं वा भारती शव ॥ ४ ॥
शतमाश्वा हिरण्ययाः । शत रथ्या हिरण्ययाः ।
शत कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ॥ ५ ॥
अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
शफेनइव ओहते ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव गृह्यन्ति ॥ ९ ॥
इद मह्य मदूरिति ॥ १० ॥
ते वृक्षाः सह तिष्ठति ॥ ११ ॥

पाक बलिः ॥ १२ ॥
शक बलि ॥ १३ ॥
अश्वत्थ खदिरो धवः ॥ १४ ॥
अरदु ारम ॥ १५ ।
शयो हतइव ॥ १६ ॥
व्याप पूरुष ॥ १७ ॥
अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥
अत्यर्धच परस्वलः ॥ १९ ॥
दौव हस्तिनो दृती ॥ २० ॥

अ मिनोनिति कहते हैं ॥ १ ॥
उसके बाद निभजन है ॥ २ ।
रात के साथ वरुण जाते हैं ॥ ३ ॥
वाणा के अनगिनत वल ॥ ४ ॥
सो सोने के घोडे सौ सोने के रथ सो स्वर्णिम कुथ्या और सो स्वर्णिम निष्क हैं ॥ ५ ।
अहल कुश वर्तक ॥ ६ ॥
शफ द्वारा वहन करता है ॥ ७ ॥
आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
वनिष्ठा नाव ली जाती है ॥ ९ ॥
यह मुझे प्रसन्न करता है ॥ १० ॥
वह वृक्षो मे बैठा हुआ है ॥ ११ ॥
पक्व वलि ॥ १२ ॥
शक वलि ॥ १३ ॥
पीपल, खदिर घो ॥ १४ ॥
आराम को पा ॥ १५ ॥
सोने वाला मरे हुये आदमी के समान है ॥ १६ ॥

पुरुष रमा हुआ है ॥ १७ ॥
मैं पूषा का दोहन करता हूँ ॥ १८ ॥
परस्वान हिरण को लाँघ कर अर्घ चर्च प्रवृत हो ॥ १९ ॥
हाथी की दातों को दुह ॥ २० ॥

सूक्त (१३२)

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुक निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥
उग्र वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभि हनत् ॥ ९ ॥
यदीय हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागार पुनः पुन ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशव ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥
फिर एक राम तुरई ॥ १ ॥
राम तुरई, खोदने वाला ॥ २ ॥
कडी जमीन को खोदने वाला ॥ ३ ॥
वायु को चलाता है ॥ ४ ॥

कुलाय करता है ॥ ५ ॥
फैला हुआ उग्र की सेवा करता है ॥ ६ ॥
न फैलने वाले को सेवा नही करता ॥ ७ ॥
कौनसा कर्करी को इनमे से लिखता है ? ॥ ८ ॥
वाद्य यन्त्र को इनमे से कौन मारता है ॥ ९ ॥
यह हिंसित करती है तो कैसे हिंसित करती है ? ॥१०॥
देवी ने मारा, बडी बुरी तरह मारा ॥ ११ ॥
निवास के सब ओर जल्दी-जल्दी ॥ १२ ॥
ऊँट के तीन नाम हैं ॥ १३ ॥
एक मृग ने यह कहा ॥ १४ ॥
दो बालक है ॥ १५ ॥
नोलशिख दो वाहन हैं ॥ १६ ॥

सूक्त (१३३)

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुष ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्त. पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ३ ॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ४ ॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ५ ॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोमति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

पुरुष रमा हुआ है ॥ १७ ॥
मैं पूषा का दोहन करता हूँ ॥ १८ ॥
परस्वान हिरण को लाँघ कर अर्धर्च प्रवृत हो ॥ १९ ॥
हाथी की दातो को दुह ॥ २० ॥

सूक्त (१३२)

आदलाबुकमेककम् ॥ १ ॥
अलाबुक निखातकम् ॥ २ ॥
कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥
तद् वात उन्मथायति ॥ ४ ॥
कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥
उग्रं वनिषदाततम् ॥ ६ ॥
न वनिषदनाततम् ॥ ७ ॥
क एषां कर्करी लिखत् ॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभिं हनत् ॥ ९ ॥
यदीय हनत् कथं हनत् ॥ १० ॥
देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥
पर्यागारं पुनः पुनः ॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि ॥ १३ ॥
हिरण्य इत्येके अब्रवीत् ॥ १४ ॥
द्वौ वा ये शिशव ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डवाहनः ॥ १६ ॥
फिर एक राम तुरई ॥ १ ॥
राम तुरई, खोदने वाला ॥ २ ॥
कडी जमीन को खोदने वाला ॥ ३ ॥
वायु को चलाता है ॥ ४ ॥

कुलाय करता है ॥ ५ ॥
फैला हुआ उग्र की सेवा करता है ॥ ६ ॥
न फैलने वाले को सेना नही करता ॥ ७ ॥
कौनसा कर्करी को इनमे से लिखता है ? ॥ ८ ।
वाद्य यन्त्र को इनमे से कौन मारता है । ९ ॥
यह हिंसित करती है तो कैसे हिंसित करती है ? ॥१०॥
देवी ने मारा, बडी बुरी तरह मारा ॥ ११ ॥
निवास के सब आर जल्दी-जल्दी ॥ १२ ॥
ऊँट के तीन नाम हैं ॥ १३ ॥
एक मृग ने यह कहा ॥ १४ ॥
दो बालक है ॥ १५ ॥
नीलशिखण्डी वाहन है ॥ १६ ॥

सूक्त (१३३)

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुष ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्त. पुरुषानृते ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ३ ॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ४ ॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ५ ॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोमति ह्रदे ।
न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ।

हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है वह वैसा नही है। दो किरण फैली हुई हैं, पुरुष उनका पिशन करता है। १ ॥

हे मनुष्य ! तू जिम अमत्य से छूटा है, तेरी माता की दो किरणें है। हे कुमारिके ! तू जैसा समझती है वह वसा नही है ॥ २ ॥

हे नीच वाली ! तू दोनो कानो से पकड कर देती नही, हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है नही है ।३ ॥

सोने के लिये तू जाती है। हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह नही हैं ॥ ४ ॥

तू श्लधिक्षणका, श्लक्षणा मे श्लक्षणु भवगूहन करती है। हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती, वह वसा नही है ॥ ५ ॥

अवश्लक्षण के समान टूटे हुये दांत लोम से पुक्ल तालाव मे है। हे कुमारिके ! तू उसे जैसा समझती है, वह वैसा नही है ॥ ६ ॥

सूक्त (१३४)

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् - अरालागुदभर्त्सथ ॥ १ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् - वत्सा पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्- स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग् - आष्टे लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥
इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्—अक्लिली पुच्छिलीयते ॥ ६ ॥

यहाँ चारो दिशाओ के अराल से उत्भर्सन करो ॥ १ ॥

मनुष्य बनने की इच्छा से बेटा बैठे हैं ॥ २ ॥
स्थालीपाक दुखी हो जाता है ॥ ३ ॥

वह बहुत लीन होता है ॥ ४ ॥

लाहन् मे लीशाथी उपजीवन करती है ॥ ५ ॥

पूव, पशच्चिम उत्तर में इस प्रकार अश्लिलली पूँछ वाली होती है ॥ ६ ॥

सूक्त (१३५)

भुगित्यभिगत शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्ठित ।
दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोऽथामो दैव ॥ १ ॥
कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।
उत्तमा जनिमा जन्यानुत्तमा जनीन् वर्त्मन्यात् ॥ २ ॥
अलाबूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।
पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो
जरितरोऽथामो दव ॥ ३ ॥
वी मे देवा अक्र सताध्वर्या क्षिप्र प्रचर ।
सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखदसि ॥ ४ ॥
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोऽथामो देव
होता विष्टीमन जरितरोऽथामो दैव ॥ ५ ॥
आदित्या ह जरितरङ्गिरोभ्यो दक्षिणमनयन् ।
ता ह जरित प्रत्यायस्तामु ह जरित प्रत्यायन् ॥ ६ ॥
ता ह जरितर्नं प्रत्यगृभ्णन्तामु ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णः ।
अहानेतरस न वि चेतनानि यज्ञानेतरस त पुरोगवाम ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठ ।
उतेमाशु मान पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इद राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिर ।
इद राधो विभु प्रभु इद राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुर तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत् ॥ १० ।
त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्य ।
विप्राय स्तुवते वसुर्वनि दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते ।
श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहु ॥ १२ ॥
अरगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया ।
इरामह प्रशसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥

"भुक," "अभिगत," 'शल" "अपक्रान्त,,, "फल" अभीष्ठित है। हे प्रार्थना करने वालो ! फिर तुम वाद्य यन्त्र को बजाने वाले दो दण्डो से खेलो ॥ १ ॥

पाँव को जूते में, धान को कोठी मे और उत्तमा जानिमा जन्य तथा उत्तमा जानियो को मार्ग मे रखे ॥ २ ॥

हे स्तोता ! पृषातक, लौकी, पीपल, ढाक, वट, अवट श्वस, स्वापर्णशिफ, बिजली, और गोशफ के वाद बलसे खेल ॥ ३ ॥

हे अध्वर्यो, ! इन चमकते हुए देवताओ के सामने शीघ्र ही मन्त्रो को पढो। तुम गायो के लिये सत्य रूप हो ॥ ४ ॥

पत्नी पूजा करती हुई दिखायी देती है। इसके बाद तुम डरो पर काबू पाने की कामना करो ॥ ५ ॥

हे स्तोता ! अङ्गिराओ से दक्षिणा लाये थे, उसे वह लाये थे। वह उसे लाये थे ॥ ६ ॥

हे स्तोता ! उसको उन्होने ग्रहण किया। जो तुमने ग्रहण किया। चेतनो को, अज्ञानेत रस को और यज्ञानेतरसको नहीं विशिष्ठ चेतनो को हम पाते हैं ॥ ७ ॥

तुम सफेद और आशुयन्वा पद वाली ऋचाओ से जवानी प्राप्त करते हो। इन्हे आदर जल्दी पूरा करता है ॥ ८ ॥

हे आंगिरस ! आदित्य, वसु रुद्र सब तुझपर अनुग्रह करते हैं। तू इस पैसे को ले । यह धन विशाल, वृहत् विभु और बड़प्पन से भी सम्पन्न है । ९ ।।

देवता तुझे प्राण, ताकत, चैतन्यता देते हुए प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होते रहे ।। १० ।।

हे इन्द्र ! तुम इस लोक, परलोक, दोनो से पार करने वालो के लिये शर्मरी से हवि वहन करो ।। जिसे अनाज प्राप्त होना कठिन है, उस स्तोता ब्राह्मण को बल प्रदान करो ।। ११ ।।

हे इन्द्र ! बिना पर वाले कबूतर के लिये तुम पके हुये पीलु, अखरोट और बहुत सा जल प्रकट करो ।। १२ ।।

चमडे की रस्सी से बँधा हुआ अंगर बारम्बार शब्द करता हुआ पृथ्वी की कामना करता है तथा पृथ्वी विहीन स्थान का अपसेध करता है ।। १३ ।

सूक्त (१३६)

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् ।
मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥

यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् ।
विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्वेव गर्दभौ ।। २ ।।

यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धूकेव पद्यते ।
वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ।। ३ ।।

यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।
सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ।। ४ ।।

महानग्न्य तृप्नद्वि मोक्रदस्थानासरन् । । ५

शवित्तकानना त्वचमशक सवतु पद्मम ॥ ५ ॥

महानग्न्यु लूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।
यथा तव वनस्पते निरघ्नान्त तथैवेति ॥ ६ ॥

महानग्न्यूप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुव ।
यथैव ते वनस्पते पिप्पति तथैवे'त ॥ ७ ॥

महानग्न्यूप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः ।
यथा वयो विदाह्या स्वर्गे नमवदह्यते ।' ८ ॥

महानग्न्युप ब्रूते स्वसावेशित पस ।
इत्थ फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाक शम्यया परि धावति ।
अथ न विद्म यो मृग शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥ १० ॥

इम पाप का नाश करने वाली का क्रुधु क्षीण होगया, इसके मुष्क शकुल के समान गोशफ मे प्रकम्पित होते हैं ॥ १ ॥

जब स्थूल पस द्वारा मुष्को का अणु मे प्रहार किया गया, तब रेत मे गधो के बढने के समान, आच्छादिका मे मुष्क प्रवृद्ध होते है ॥ २ ॥

जो "कर्कधूका" सदृश अवषदन करने वाली है और जो अल्प से भी अल्प है वासन्तिक तेज के समान अवात के लिये विरपत्त मे गमन करते है ॥ ३ ॥

जब सुन्दर गाय मे प्रवेश हुऐ देवता खुशी होते है तब अक्षिभू के ममान नारी अलायी जाती है ॥ ४ ॥

महान अग्नि ऊपर खडे हुओ को उत्क्रमण न करता हुआ तृप्ति को प्राप्त होता है । हम चमकते हुओ को शावित कानन प्राप्त हो ॥ ५ ॥

महान अग्नि उलूखल को लाघती हुई कहने लगी—हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं वैसे ही हो ॥ ६ ॥

महान अग्नि ने कहा—तू भस्म होकर भी बार-बार पैदा होता है। हे वनस्पते ! जिस भाँति तू पूर्ण होता है, वैसे ही हो ॥ ७ ॥

महान अग्नि ने कहा—तू नष्ट होकर भी विकसित हो जाता है। दुखी अवस्था होकर स्वर्ग मे हवि के समान दुही जाती है ॥ ८ ॥

महान् अग्नि का कथन है कि यह पस भले पकार बढा दिया गया है। हम फल वाले पेड के सूप मे सूद को प्रविष्ट करते हैं ॥ ६ ।

कुक शब्द वाले पर महान् अग्नि दौडते है और हमे यह ज्ञात है कि वह हिरण के समान शिर के द्वारा धाणिका को हरते है ॥ १० ॥

महानग्नी महालग्न धावन्तमनु धावति ।
इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्धयौदनम् ॥ ११ ॥

सुदेवस्त्वा महा नग्नीर्बबाधते महत साधु खोदनम् ।
कुस पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

वशा दग्धारमिमांगुरि प्रसृजतोऽग्र त परे ।
महान् वं भद्रो यभ मामद्धयौदनम् ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महथ साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मा कु धावति ॥ १४ ॥

महान् वं भद्रो विल्वो महान् भद्र उदुम्बर ।
महाँ अभिक्त बाधते महत साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

य कुमारी पिङ्गलिका वसन्त पीवरी लभेत् ।
तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठ रोदन्त शुदमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

महान् अग्नि महानग्न के पीछे दौडते हैं। इसकी इन्द्रियों का रक्षक हो। इस चावल को खा॥ ११ ॥

महान् अग्नि उत्पीडन करने वाला, बड बडो को कुरेदता है। यह स्थूल या कृष सभी को मिटा देता है ॥ १२ ॥

वशा ने दग्ध उंगली की रचना की। अन्य उग्रत को रचते हैं। यह बहुत कल्याणकारी है। इस चावल को खा ॥ १३ ॥

यह महान् अग्नि विशिष्ट दु खदायक है। बडो को मिटा डालता है। पिगलि कुमारी काम के बाद भाग जाती है। १४ ॥

बिल्व और उदुम्बर दोनो ही बडे एव भद्र हैं। जो महान् ओर से पीडित करता है वह बड बडो को कुरेदता है ॥ १५ ॥

कुमारी पिंगल यदि बसन्त को प्राप्त करे तो तैल-कुण्ड मे से अगूँठा के समान कुरेदती हुई इसका उद्धार करे। ॥ १६ ॥

सूक्त (१३७)

(ऋषि—शिरिम्बिठि, बुध, वामदेव, ययाति, तिरश्ची द्युतानो वा, सुकक्षः । देवता—अलक्ष्मीनाशनम्, विश्वदेवा ऋत्विक्स्तुतिर्वा, सोम पवमान, इन्द्र, मरुत इन्द्रो बृहस्पतिश्च। छन्द—अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री)

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकी ।
हता इन्द्रस्य शत्रव सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध
इह सोमपीतये ॥ २ ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् ।
वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः ।
सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो
वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत् तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो
भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र
शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र नाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥

इन्द्र स दामने कृत ओ जिष्ठ स मदे हितः ।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्य ॥ १३ ॥

गिरा वज्रो न सम्भृत सबलो अनपच्युत ।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृत ॥ १४ ॥

जब प्राचीन मण्ड्रधारिणी हृदय प्रदेश को प्राप्त हुई, तब इन्द्र के सब दुश्मन मर गये । १ ।

तुम कपृथ् को स्वीकार करो, मनुष्य कपृथ है । तुम अनाज प्राप्ति के लिये प्रेरणा करो । रक्षा के लिए पुत्र को उत्पत्ति करो और सोम पान इन्द्र को बुलाओ ।। २ ॥

इन्द्र के आरोहण के लिए मैं जल्दी चलने वाले घोड़े का पूजन करा चुका हूँ । वे इन्द्र हमे सुरभित्रान करे और हमको महान् बनाते हुए हमारे जीवन को भी उत्कृष्ट करे ।। ३ ॥

हर्ष प्रद सोम इन्द्र के लिए सस्कारित चुके । छन्ने से सोम का रस टपक रहा है । हे सोमो ! तुम्हारा बल देवताओ को प्रसन्न करें ॥ ४ ॥

इन्द्र के लिए सोम का शोधन किया जाता है । ससार के मालिक वाचास्पति अपने गुण से सुखी होते है ।। ५ ॥

यह सैकडो धारो वाला गमनशील सोम सस्कारित किया जा रहा है । वह धनेश्वर सोम हरेक स्तोत्र में इन्द्र का मित्र होता है ।। ६ ॥

दश सौ किरणो से आकृष्ट करने वाले सूर्य पृथ्वी पर आकार अपने ओज से खड़े हुए और अपनी शक्ति से पृथ्वी को

हिंसित करने लगे। तब इन्द्र ने अपनी ताकत से उन्हे वहाँ से हटाकर पृथ्वी की रक्षा की और अपने बल से ही जलवती शक्तियों को उन्होने पृथ्वी पर स्थापित किया ॥ ७ ॥

कडा विचारशील शुक्र को अंशुमती के पास घूमते देखा है। सूर्य की तरह वह भी आकाश मे रहते हैं मैं उनका आश्रित हूँ। वह फल की वर्षा करने वाली लड़ाई मे तुम्हारा साथ दे ॥ ८ ॥

फिर अपने शरीर को शुक्र ने छोटा करके अंशुमती के क्रोड में प्रतिष्ठित किया, बृहस्पति की मदद से इन्द्र ने देव-सत्ता न मानने वाली जनता को मार दिया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तुमने आकाश और पृथ्वी को छुआ और उन्हे प्राप्त कर लिया। तुम सात अशत्रुओ से पैदा होकर उनके दुश्मन हो जाते हो। तुमने विरुद्ध वाले भुवनो से लडाई की ॥ १० ॥

हे वज्रिन ! तुमने बलासुर को वज्र से मारा। तुमने उसे अपने हिंसात्मक साधनो से दूर कर दिया और गायें प्राप्त कर ली ॥ ११ ॥

विशालकाय वृत्र को नष्ट करने के कारण हम इन्द्र की प्रशंसा करते हैं। वह अभीष्ट वर्षक इन्द्र सबसे महान हो ॥ १२ ॥

पापियो को काबू मे करने के लिए बलवान इन्द्र को रस्सी के समान किया। वह हर्षप्रद यज्ञ मे प्रतिष्ठित होते है। वह इन्द्र सुन्दर, प्रसिद्ध एवं महान् हैं ॥ १३ ॥

वह इन्द्र पर्वत की तरह बली हैं, वह कभी पापी नही होते। वह महान यजमानो के लिए दुश्मन के धन को प्राप्त कराते हैं ॥ १४ ॥

सूक्त (१३८)

(ऋषि—वत्स । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव ।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद् भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

कण्वा इन्द्र यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत् आयुधम् ॥ ३ ॥

इन्द्र महान् है, यह वर्षा के जल से युक्त बादल के समान वत्स के स्तोम द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम सत्य बोलने वाली जनता का पालन करो। उस प्रजा को अग्नियाँ पवित्र करती हैं और यज्ञ वाहक अग्नि से ब्राह्मण उस प्रजा की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

इन्द्र को कण्व के स्तोमों द्वारा यज्ञ साधन रूप मे किया और उसी को जामि आयुध कहती है ॥ ३ ॥

सूक्त (१३९)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती, गायत्री, ककुप्)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥ २ ॥

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः ।

एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अय वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अय सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्र चिकेतथ' ॥ ४ ॥
यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! इसके बच्चे के विचरणार्थ एव मदद के लिये इसे सियार रहित घर दो और इसके दुश्मनो को दूर करो ॥ १ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! अन्तरिक्ष और स्वर्ग मे जो पैसा है निषाद पचम पुरुषो मे जो धन है, उसे हममे प्रतिष्ठित करो ॥ २ ॥

हे अश्वनी कुमारो ! ब्राह्मण तुम्हारे कार्यो का परिमर्शन करते हैं उस सत्र कर्म को तुम कण्व कृत ही समझो ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! यह सामिग्री धन से पूर्ण है, यह स्तोम घर्म द्वारा सिंचता है, यह सोम मधुर है। तुम इसी सोम के द्वारा आवरक शत्रु के जानने वाले हो ॥ ४ ॥

हे अश्विद्वय ! जल, दवाइयों और वनस्पतियो मे जो कर्म निहित है, उससे मुझे युक्त करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१४०)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहती, अनुष्टुप, त्रिष्टुप,)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देव भिषज्यथः ।
अय वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं
हि गच्छथः ॥ १ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोम मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥
आ नन रघुवर्तनि रथ तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्यवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद् वा कक्षीवां उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वा दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद् वां वैन्य. सादनेष्वेवेदतो अश्विना
चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम तेज चलने और चिकित्सा के कार्य मे प्रवीण हो । तुम्हारा यह वत्स बुद्धियो द्वारा बीघा नही जाता । तुम यज्ञ के पास गमन करते हो ॥ १ ॥

अपनी प्राथना-योग्य बुद्धियो के द्वारा मुनियो ने अश्विनी कुमारो के स्तोत्र को जान लिया। अत. मधुर सोम को अथर्व मे सिंचित करो ॥ २ ॥

हे अश्विनो कुमारो ! तुम तेज चलने वाले रथ पर चढने वाले हो, तुम्हारे लिए की जाने वाली प्रार्थना व्योम के समान अडिग रहे । ३ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! हम उक्थो द्वारा तुम्हारी शरण लेते हैं। यह कण्व की कृपा है कि हम आवाज के द्वारा तुम्हारी सेवा कर रहे है ॥ ४ ॥

हे अश्विद्वय ! कक्षीवान, दीर्घतमा और व्यश्व मुनियो ने तुम्हे आहुति दी है। वेन का वत्स पृथु तुम्हारे सब भवनो मे है, अत तुम चैतन्य होओ ॥ ५ ॥

सूक्त (१४१)

(ऋषि—शशकर्ण । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्, जगती, बृहती)

यात छर्दिष्पा उत न परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।

र्वतिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना
भवथ समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु
तिष्ठथ ॥ २ ॥
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ ४ ॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छदिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम हमारी रक्षा करने वालो के रूप मे आओ। तुम हमारे घर की रक्षा करते हुए मिलो। हमारे शरीर के पुत्र, पौत्रादि के रक्षक रूप मे प्राप्त होओ और ससार की रक्षा करने वाले होकर मिलो ॥ १ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम इन्द्र के रथ मे साथ ही बैठकर चलते हो। तुम हवा के साथ रहते हो। तुम आदित्य और ऋभुओ के प्रेमी हो। तुम विष्णु के विक्रमणो मे भी पूर्ण हो ॥ २ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम यजमानो को जल्दी से प्राप्त होते हो। तुम अपनी महान् रक्षा करने वाली शक्ति से लडाई मे दुश्मन को वशमे करते हो। अन्न पाने के लिये मैं तुम्हे आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! यह हव्य तुम्हारे लिये भलाई का है। यह सोम तुर्वश, यदु और कण्व के हैं। तुम यहाँ जरूर आओ ॥ ४ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! दूर की या पास की दवाई को अपने दानी मन द्वारा विशिष्ट शक्ति के लिये दो और बच्चे के लिये घर प्रदान करो ॥ ५ ॥

सूक्त (१४२)

(ऋषि - शशकर्ण. । देवता—अश्विनौ । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री ।

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतारानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥
यन्नू न धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

मैं अश्विनीकुमारो को ज्ञान और मति के साथ रहने वाला मानता हूँ । हे मेधे ! तुम मेरी बुद्धि को चमकाओ और पुरुषो को धन दो ॥ १ ॥

हे स्तोताओ ! तुम सवेरे ही अश्विद्वय को प्रबोधित करो । हे सत्य रूप देवो, तुम उन्हे प्रशसनीय करो । हे होता ! तुम उनके यश को सब ओर फैलाओ ॥ २ ॥

हे अश्विनी कुमारो के रथ ! तू अपने तेज से ऊषा से

मिलता हुआ सूर्य के साथ चमकता है वह-रथ घोडो द्वारा रास्ते को जाता है ॥ ३ ॥

जब किरणे पान की हुई के समान होती हैं, तब गायो को रोनो से दुहा जाता है। उस समय हे प्रश्विद्वय ऋत्वियो को वाणी तुम्हारी प्रार्थना करती है ॥ ४ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! महान् यश, पुरुषो पर काबू पाने वाली शक्ति और कल्याण को प्राप्त करने के लिये सुन्दर मति द्वारा मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अश्विनी कुमारो ! तुम अपने पालन करने वालो के लिये अपनी बुद्धियो द्वारा विराजमान होते हो और तुम कल्याणकारी कार्यों द्वारा प्रशसा के योग्य होते हो ॥ ६ ॥

सूक्त (१४३)

(ऋषि—पुरुर्म ढाजमीढौ वामदेव, 'मेध्य' तिथि.। देवता—अश्विनो। छन्द त्रिष्टुप्)

त वा रथ वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सगति गो ।
य सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहस पुरुतम वसूयुम् ॥ १ ॥
युव श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता
वनथ शचीभि ।
युवोर्वपुरभि पृक्ष. सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो
रथे वाम ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वाकः ।
ऋतस्य व वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो
अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेम यज्ञ नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुन· सोम्यस्य दधथो रत्न विधते जनाय ॥ ४ ॥

आ नो यात दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्त स यद् ददे नाभि.
पूर्व्या वाम ।। ५ ।।
नू नो रयि पुरुवीर बृहन्त दस्रा मिमाथानुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीढासो
अग्मन् ।। ६ ।।
इहेह यद् वा समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यत जरितार युव ह श्रितः कामो
नासत्या युवद्रिक् । ७ ।।
मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो
अन्वेन चरेम । ८ ।।
पनाय्य तदश्विना कृत वा वृषभो दिवो रजस पृथिव्या ।
सहस्र शसा उत ये गविष्टौ सर्वा इत् ता उप
याता पिबध्यै ।। ९ ।।

हे अश्विनी कुमारो ! हम तुम्हारे वेगवान् रथ का आज आह्वान करते है। तुम्हारा वह रथ ऊँचे नीचे स्थानो मे जाता तथा सूर्य का वहन करता है। वह वाणी का वहनकर्त्ता, वसुओ को प्राप्त कराने वाला तथा गौओ से सुसगत होने वाला है। मैं उसी रथ को आहूत करता हूँ ।। १ ।।

हे अश्विद्वय ! तुम लक्ष्मी के अधिष्ठात्री देवता हो, तुम उसे अपनी शक्तियो द्वारा सेवन करते हो और उसे आकाश से पतित नही होने देते। रथ में तुम्हे वहन करने वाले विशाल अश्व और अन्न तुम्हारे शरीर से सदा मिले रहते है ।। २ ।।

कौन हविर्दाता रक्षा प्राप्ति के लिये और सस्कारित सोम को पीने के लिये तुम्हे आहूत कर रहा है, कौन तुम्हारी

सेवा कर रहा है ? यज्ञ देवी इन्द्र को नमस्कार है। अश्विनी-कुमारो को यहाँ लाने वाले के लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा इस यज्ञ स्थान मे आगमन करो। तुम सोम के मधुर रस का पान करते हुये इस सेवक पुरुष को रत्न धन प्रदान करो। ४ ॥

हे अश्विद्वय ! तुम अपने स्वर्णिम रथ के द्वारा आकाश से पृथिवी पर आगमन करो। अन्य पूजक तुम्हे रोक न सके, मैं तुम्हारे निमित्त स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥

हे अश्विद्वय ! स्तोता मनुष्य स्तुति के साथ ही आजमीढ होते हैं। इस स्तोता यजमान को वीर्य द्वारा आविर्भूत होने वाले पुत्र पौत्रादि से युक्त धन दोनो लोको मे दो ॥ ६ ॥

हे अश्विद्वय ! इन्हे ऐसी सुबुद्धि दो, जिससे यह यजमान परस्पर समान मति वाले हो। इनकी अभिलाषा तुम पर ही निर्भर रहे और तुम इस स्तोता के रक्षक होओ ॥ ७ ॥

हमारे लिये आकाश मधुमय हो, अन्तरिक्ष मधुमय हो ओषधिया भी मधुमती हो और क्षेत्रपति भी मधुमय हो। हम अमृतत्व को प्राप्त हुये उसके अनुगामी होते हुये घूमे ॥ ८ ॥

तुम्हारा स्तोत्र कर्म आकाश और पृथिवी मे फलो का वर्षक है तुम सोम पान करके गो पूजा वाले सैकडो स्तोत्रो को प्राप्त होते हो ॥ ९ ॥

❀ इति विंश काण्ड समाप्तम् ❀

॥ इति अथर्ववेद समाप्तम् ॥

मुद्रक श्री प्रिन्टिग प्रेस, मथुरा।